दो सूर्यों का सामना

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

दो सूर्यों का सामना

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 2020 प्रतियाँ 5,000

मूल्य : 100/–

ISBN 978-93-86952-77-6

प्रकाशक :
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत– श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड
गंगाशहर, बीकानेर 334401 (राज.)
दूरभाष : 0151-2270261, 3292177, 0151-2270359
visit us : www.sadhumargi.com

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003 (राज.)

सूर्य नगरी में 'सूर्य'

जैन धर्म में एक ऐसी घटना घटी है जिसमें दो वासुदेवों का साक्षात् मिलन न होते हुए भी मिलन माना गया है। यह मिलन माना गया है कृष्ण वासुदेव और पद्मनाथ वासुदेव का। वस्तुतः यह उनका साक्षात् मिलन नहीं था। दोनों के शंखनाद को ही उनके मिलन की संज्ञा दे दी गयी है। हालांकि इस प्रकार के मिलन को भी आश्चर्य माना गया है क्योंकि जैन धर्म की मान्यतानुसार इनका मिलन संभव है ही नहीं। जैन शास्त्रों की मान्यता है कि दो तीर्थंकर, दो चक्रवर्ती, दो वासुदेव, दो बलदेव और दो प्रतिवासुदेव कभी एक साथ नहीं होते।

यदि व्यवहार में भी देखें तो कभी ऐसा अवसर नहीं आता जब दो सूर्य या दो चन्द्र एक साथ दिखते हों। इन दोनों के आमने-सामने आने की घटना कभी सुनी या देखी भी नहीं गयी। कलियुग में भी जुलाई, 2019 के पहले तक ऐसा नहीं देखा गया। लेकिन जुलाई, 2019 में ऐसा हुआ। यह मिलन हुआ राजस्थान के जोधपुर शहर में। जोधपुर यानी सूर्य नगरी। इस सूर्य नगरी में एक और सूर्य का आगमन हुआ था। दूसरे सूर्य को लोक व्यवहार में आचार्य रामलाल जी म. सा. के नाम से जाना जाता है। संसार के प्राणियों के लिए आचार्य श्री की भूमिका भी सूर्य से कम नहीं है।

जिस तरह नभ में स्थित सूर्य संसार को प्रकाशित करता है, उसी तरह आचार्य श्री रामलाल जी भी पृथ्वी पर रहने वाले लोगों के अंतर्मन को प्रकाशित करते हैं। ऊपर वाला सूर्य बाहरी अंधकार को समाप्त करता है तो जोधपुर में विराजित सूर्य सम आचार्य रामलाल जी भीतर (हृदय में) उजियारा फैलाते हैं। सूर्य की किरणें शारीरिक ऊर्जा और उष्मा प्रदान करती हैं तो चतुर्विध संघ का नेतृत्व करने वाले आचार्य प्रवर की वाणी सूर्य की किरणों के समान लोगों के अंतर्मन को प्रकाशित कर उर्जित और उष्मित करती है।

सूर्य नगरी में आचार्य श्री रामलाल जी म.सा. की उपस्थिति की साक्षी बने लाखों लोग। इनमें से बहुत सारे लोगों ने इनकी वाणी का लाभ

लेकर अपने अंतर्मन को प्रकाशित किया। इस प्रकाश ने बहुतों को सही राह दिखायी जिससे वे लोग सही दिशा में कदम बढ़ा सके।

ऊपर का सूर्य पूरे संसार को प्रकाशित तो करता है लेकिन यह भी सच्चाई है कि जिस समय वह धरती के एक हिस्से को प्रकाशित कर रहा होता है, उसी समय दूसरा हिस्सा अंधकार में डूबा रहता है। इसी तरह जब धरती के सूर्य आचार्य रामलाल जी जोधपुर में लोगों के अंतर्मन में ज्ञान का प्रकाश फैला रहे थे उस समय बहुत से लोग अपनी मजबूरी वश या अंतराय कर्मों की वजह से उससे वंचित थे। उन वंचित लोगों तक भी उनकी वाणी को पहुंचाने के लिए उस दौरान फरमाये गए व्याख्यानों को हम संकलित करके लाए हैं। इस संकलन का नाम है 'दो सूर्यों का सामना'।

दो सूर्यों का सामना पढ़िए और अपने परिचितों को पढ़ाइए। पढ़िए ही नहीं वरन् इसमें कही गयी बातों पर चितंन-मनन कीजिए और अपने जीवन में उतारिए। जो भी ऐसा करेगा, उसका जीवन ऊर्ध्वगामी बनेगा। वह अपना आत्म कल्याण करेगा। वह मोक्ष की दिशा में गति करेगा। वह बार-बार जन्म-मृत्यु के बंधन से छुटकारा पा सकता है।

इसके प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्य श्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्य श्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमें बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हे चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**दो सूर्यों का सामना**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

अर्थ सहयोगी

कुशलराज गौतम चंद कोठारी
ब्यावर–चेन्नई

॥ सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें॥

अनुक्रमणिका

1.	साथी हमारे साथ है	7
2.	खोल हिये की आंख	14
3.	उपेक्षा की अपेक्षा क्यों?	23
4.	पंचाक्षरी मंत्र	34
5.	साधना की सुरम्यता	46
6.	आंख में अंजन	56
7.	कठिनाई में शहनाई की गूंज	69
8.	रणभेरी बाज रही	83
9.	उठो! बढ़ो और बढ़ते रहो...	92
10.	सदा सुखदाई गोद धर्म की	99
11.	ज्वाला जला सकी ना ज्योति	120
12.	यह है अन्तर का राज	139
13.	प्रवाह नहीं पराक्रम	159
14.	सजे आत्म सुसाज	182
15.	ऐसी हो अन्तर की आवाज	197

1

साथी हमारे साथ है

शांति जिन एक मुज विनति...।

आगमों में आए हुए सूत्र सुख का स्रोत हैं। किसी भी सूत्र को निचोड़ लें तो उसमें से सुख ही सुख टपकेगा बशर्ते कि हम निचोड़ना जानें। एक छोटा-सा सूत्र है– 'विजहित्तु पुव्वसंजोगं।' पूर्व संयोग का त्याग। एक छोटा-सा सूत्र भी आत्मसात् हो जाए तो हमारे जीवन की दशा बदल सकती है। दिशा बदल सकती है– निश्चित बदलेगी। हमारी जो धारणाएं होती हैं, पूर्व की जो ग्रंथियां बनी हुई होती हैं उन्हीं के आधार पर व्यक्ति विचार करता है। सोचता है। और उनके आधार पर जब वह विचार करता है, सोचता है तो कहीं-न-कहीं पहले का असर वर्तमान में जुड़ जाता है। वह देखना, वह जानना पूर्णतया निर्दोष नहीं हो सकता। एक छोटा-सा सूत्र यदि आचरित हो जाए, जीवन उस दिशा की ओर मुड़ जाए तो पूरी दशा बदल जाएगी। रोहिणेय चोर जिसका वर्णन आगमिक धरातल पर मिलता है, ने जैसे ही पूर्व संयोगों का त्याग किया वह साधु बन गया। जंबू कुमार के चारित्र में हम प्रभव का वृत्तांत सुनते हैं। पूर्व संयोग का त्याग एक झटके से होता है। कोई सोचे की मैं धीरे-धीरे त्याग करूं, किंतु धीरे-धीरे वह त्याग करेगा तब तक वापस ऐसी झपकी लगेगी कि वह त्याग की बात धरी की धरी रह जाएगी। एकदम सटीक निर्णय, तत्काल निर्णय। और ऐसा यदि होता है तो वह सुखी हो सकता है।

एक सूत्र आया है कि 'अणभिभूए पभू निरालंबणयाए'। मिला-जुला है दोनों सूत्रों का अर्थ किंतु फिर भी फर्क है। जो निरावलंबी होता है, स्वावलंबी होता है वह किसी से अभिभूत नहीं होता। पराजित नहीं होता। कोई भी परीषह उसको पराजित करने में समर्थ नहीं है। स्वावलंबन, यानी अपना आलंबन। दूसरे किसी का कोई आलंबन नहीं। इसमें पूर्व के संयोग का

भी संबंध रहा हुआ है। पूर्व की ग्रंथियाँ यदि हमारी बनी रहेंगी तो हम उतने स्वावलंबी नहीं हो पाएंगे। स्वावलंबी बनने के लिए हमें उन ग्रंथियों का त्याग करना पड़ेगा। उनसे मुक्त होना होगा। साधना स्वावलंबन से होती है। भगवान् महावीर पर उपसर्ग आया। शक्रेंद्र भगवान् के चरणों में उपस्थित होते हैं। निवेदन करते हैं कि भगवान् ये अज्ञानी लोग आपके माहात्म्य को नहीं जान पा रहे हैं। नहीं समझ रहे हैं। आपके विराट व्यक्तित्व से अपरिचित हैं इसलिए आपके साथ ये ऐसे बर्ताव कर बैठते हैं। भगवान् आप अनुमति दीजिए कि मैं आपकी सेवा में रहूं और कोई-भी अज्ञानी उपसर्ग करे तो मैं उसे रोक दूं। उपसर्ग करने न दूं। भगवान् महावीर कहते हैं कि शक्र! तुम्हारी भावना प्रशस्त है। किंतु जितने भी तीर्थंकर हुए हैं वे स्वावलंबी हुए हैं। स्वावलंबन का ही आश्रय लेते हैं। वे किसी के आश्रित होकर साधना नहीं करते। कितनी बड़ी बात है!

हम चाहते हैं कि कोई ऐसा साथी मिल जाए, कहीं पर भी खतरे की घंटी बज जाए तो कोई सुरक्षक मिल जाए जो सुरक्षा करने में समर्थ हो। किंतु भगवान् पर उपसर्ग आने के बावजूद वे कहते हैं कि हमारा साथी हमारे साथ है। वह है स्वावलंबन की साधना। इसकी बारीकी में हमको चलना है। इसकी बारीकी में प्रवेश करते हैं। सूक्ष्मता में प्रवेश कर हमारी मानसिक शक्ति, हमारी मनःस्थिति, हमारे मन की जांच करेंगे तो हमारे मन में ऐसे संस्कार जमे मिलेंगे कि जब कभी कोई विपत्ति आने की हो, कोई असुविधा की बात हो तो हम इधर-उधर देखने लग जाते हैं कि कोई सुरक्षा करने वाला हो। ऐसा सोचना अर्थात् अपने मन को कमजोर करना है। अपने मन में कमजोरी नहीं आवे, इसलिए भगवान् कहते हैं कि स्वावलंबन की साधना होनी चाहिए। स्वावलंबी को कहीं से कहीं तक ताकने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह अपने पर निर्भर है। दूसरों पर निर्भर नहीं है। और जब दूसरों पर निर्भर नहीं है तो वह आकांक्षा ही क्यों करेगा? जब हम दूसरों पर निर्भर होते हैं तो हमारे भीतर आकांक्षा जगती है कि वह मेरा सहयोगी बन जाए। वह मुझे सहयोग दे दे। पर मुझे किसी से किसी प्रकार के कोई सहयोग की अपेक्षा है ही नहीं। जो करना है मुझे स्वयं करना है, और वह स्वयं से ही करता है। ऐसा स्वावलंबन साधना के क्षेत्र में होना चाहिए। एक पानी की गिलास भी लेनी है, एक पानी का पात्र भी लेना है उसको स्वयं लेना चाहिए। किसी की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

आचार्य पूज्य गुरुदेव के जीवन को नजदीक से देखा हो तो स्वावलंबन की साधना में उनकी सदा तत्परता रहती थी। पाट पर विराज रहे हैं। सामने की आलमारी में पुस्तक-किताबें वगैरह रखी हुई हैं। पास में संत बैठे हुए हैं। उन संतों को आदेश देने के बजाय, उन संतों को कहने के बजाय, वे स्वयं उठते हैं और आलमारी में से अपनी पुस्तक वगैरह जो लेना है, ले लेते हैं। कई बार संतों ने निवेदन भी किया कि भगवन्! हम बैठे हैं। आप खड़े होते हैं तो हमें खड़े होना ही है। आप हमें फरमा देते हम ही आपको पुस्तक दे देते। यदि कोई अन्य व्यक्ति भी खड़े होंगे तो उनमें क्या भाव रहेंगे कि देखो संत बैठे हुए हैं। ये क्या है? गुरुदेव फरमाते– भाई! मैं भी तुम्हारा भाई हूं। मुझे भी थोड़ा करने दो। नहीं तो मैं आलसी-प्रमादी बन जाऊंगा और ये प्रमाद उचित नहीं होता है साधना में। बात एकदम छोटी-सी है। वैसे देखें तो कोई मूल्य नहीं रखती। किंतु गहराई में जाने पर इसका मूल्य बहुत बड़ा हो जाता है। यदि हम दूसरों के सहयोग की अपेक्षा और आकांक्षा लेकर चलेंगे तो जगह-जगह पर हमारी मनःस्थिति उसकी अपेक्षा करेगी। आकांक्षा करेगी।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि निरावलंबनता से लाभ क्या होता है? निरालंबणस्स य आययट्ठिया जोगा भवंति, सएणं लाभेणं संतुस्सइ, परलाभं नो आसाएइ...। वह दूसरे की ओर नहीं देखता है। दूसरों की तरफ ताकता नहीं है। अपने लाभ में संतुष्ट। अपने कार्य से जो प्राप्त होता है उसी से संतुष्ट होता है। दूसरों की तरफ वह देखने वाला नहीं होता है और अपने आप में संतुष्ट रहने वाला होता है। अपने आप में तृप्ति। स्वयं में तृप्ति बहुत मूल्यवान है। बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि बहुत कुछ हो जाए किंतु तृप्ति न मिले तो जो हुआ है वह भी कोई महत्त्व नहीं रखता है। इसलिए स्वावलंबन की बात कही गई है। आगमकार यहां दो रूपों में कथन कर रहे हैं। एक अर्थ है कि जो स्वावलंबी होता है वह सारे परीषहों और उपसर्गों को सहने में समर्थ होता है। दूसरा अर्थ 'अणभिभूए' जो किसी भी व्यवहार से/परीषह से अभिभूत नहीं होता। कोई भी परीषह उसको पराजित करने में समर्थ नहीं होता। वह व्यक्ति, वह साधक स्वावलंबी होने में समर्थ होता है। दोनों तरफ से बात कही गई है। क्षुधा (भूख) का परीषह, प्यास का परीषह, अन्य अनेक प्रकार के परीषह बताए गए हैं। 22 प्रकार के परीषह हैं। इन परीषहों पर जो साधक विजय प्राप्त कर लेता है वह

स्वावलंबी होता है। और दूसरे शब्दों में कहें कि जो स्वावलंबी हो जाता है वह इन परीषहों पर विजय प्राप्त करने वाला होता है। वह किसी की अपेक्षा नहीं रखता। उसे किसी की कोई चाह नहीं होती। वह नहीं चाहता कि कोई आकर मेरा कार्य पूरा कर दे। वह अपने कार्य को स्वयं संपन्न करने में तत्पर रहता है।

दूसरों पर आश्रित व्यक्ति कभी सुखी नहीं हो सकता। जब व्यक्ति किसी के आश्रित रहता है तब उसकी मनःस्थिति सापेक्ष बनी रहती है। वह किसी-न-किसी का आश्रय चाहेगा। आश्रय हटते ही उसे बहुत असुविधा लगने लगेगी। उस समय वह स्वयं को अनाथ जैसा महसूस करने लगेगा। हम आश्रित रहते हैं तब तक हम सुखी होते हैं और पशु-पक्षियों की तरफ देखें। एक बार हमने देखा कि कबूतरी स्वयं ही अपने बच्चों को घोंसलों से धक्का देकर नीचे गिराती है। देखकर हम आश्चर्य करने लगे कि ऐसा क्यों किया जा रहा है? समाधान मिला कि वह गिरा नहीं रही है। अपने बच्चों को स्वावलंबी बना रही है। जब तक वे दूसरे पर आश्रित बने रहेंगे, कबूतर और कबूतरी पर ही आश्रित बने रहेंगे कि वे ला-लाकर अन्न के दाने उनके मुंह में देते रहेंगे तब तक वे अपने आप में भय से मुक्त नहीं होंगे। उनके पंख काम नहीं करेंगे। उनके पंखों को काम कराना है इसलिए वह धक्का देकर नीचे गिराती है। नीचे गिराने से उसके भीतर की शक्ति जागृत होगी और उसके पंख खुलेंगे। वे पंख फड़फड़ाकर बचने का प्रयत्न करेंगे इससे वे उड़ने की शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। ये पक्षियों के भीतर देखा गया है। अब आप देखिए कि उनको वे स्वावलंबी बनाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं और स्वावलंबी बनाते हैं। बहुत स्पष्ट है कि स्वावलंबी बने बिना हम जीवन में न तो सफलता प्राप्त कर सकते हैं और न ही सुख की प्राप्ति कर सकते हैं।

आचार्य देव ने उस बात को जाना था। समझा था इसीलिए वे परावलंबी नहीं रहे। किसी का सहयोग मिल गया तो ले लिया वह कोई बात नहीं है। किंतु हमारी मनःस्थिति वैसी नहीं बननी चाहिए कि कोई आकर मेरा कार्य पूरा कर दे। किसी ने यदि सहयोग दिया तो वह मंजूर है। वह स्वीकार है। किंतु मन वैसा नहीं बना रहना चाहिए कि ऐसा ही हो।

एक बार की घटना है जब मैं उदयपुर में था। श्री मोहनलाल जी, श्री श्रीमाल, ब्यावर वाले एकदम हांफते-हांफते आए और उन्होंने एक पत्र सामने रखा। मैंने पत्र उठाया, देखा और वापस उसको आसन के नीचे रख दिया! वे

बोले कि महाराज! देखो तो सही। मैंने कहा, क्या देखना है। पत्र को लिफाफा देखकर ही भांप लेते हैं। वे बोले, इसमें लिखा है कि 25 लाख रुपये में सौदा हो गया। रिमोट कंट्रोल से उड़ा दिया जाएगा। मैंने कहा, धैर्य रखो। विचलित मत होओ। वे बोले, नहीं हम सुरक्षाकर्मी रखेंगे। ऐसा करेंगे वैसा करेंगे। मैंने कहा– क्या हो जाएगा? सुरक्षाकर्मी रह भी जाएंगे तो क्या हो जाएगा? राजीव गांधी के साथ में कितने सुरक्षाकर्मी थे? इंदिरा गांधी के साथ में कितने सुरक्षाकर्मी थे? 'जिनके पास सुरक्षाकर्मी होते हैं क्या उनकी मौत नहीं होती है? क्या उन पर कोई वार नहीं होता है? जेड सुरक्षा से बढ़कर सुरक्षा राजीव गांधी के साथ थी फिर भी उसमें सुराख हो गया। हो गया या नहीं हुआ? उसमें छेद हो गया या नहीं हो गया? मौत यदि आ जाती है तो हजारों के बीच में रहे हुए व्यक्ति को भी वह अपना शिकार बना लेती है।' उससे बचना संभव नहीं है। फिर भय किसका? फिर क्यों उसमें किसी सुरक्षा की आकांक्षा करें। पहले के राजा, पहले के अधिकारी केवल सुरक्षा के घेरे में नहीं रहते थे बल्कि रात्रि में भेस बदलकर जनता के हाल-चाल देखने का प्रयत्न करते थे। यह कि वस्तुतः, जनता सुखी है या नहीं है? जनता को किसी प्रकार का दुःख-दर्द तो नहीं हो रहा है? अधिकारिवर्ग से भी उन्हें सताया तो नहीं जा रहा है? यह देखना वे अपना कर्तव्य मानते थे और वे देखते भी थे। हकीकत में यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। एक प्रकार से यों कहे कि जिन्होंने पूरी जनता को अपनी संतान के रूप में माना है वे उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखेंगे। वे नहीं चाहेंगे कि मेरी जनता में किसी प्रकार से कोई कठिनाई की स्थिति बने। राजनेताओं की बात अलग है। ये राजाओं की बात थी और वे अधिकांशतः स्वावलंबन का पाठ पढ़े हुए होते थे। यदि हम देखेंगे बारीकी से तो देखें स्वावलंबन में जो सुख है वह परावलंबी नहीं पा सकता। कहा भी है 'पराधीन सपनेहु सुख नाही' पराधीनता में तो स्वप्न में भी कभी सुख मिलने वाला नहीं है।

मुमुक्षु-बहिनें आपके सामने मौजूद हैं और वे भी भगवान् महावीर के पथ पर आरूढ़ होने को कटिबद्ध हैं। उनको कौन-सा पाठ पढ़ना चाहिए? पूर्व के सारे संयोगों का त्याग करना। बाहर का त्याग तो हो रहा है– माता-पिता, परिवार, धन, कुटुंब, कबीला– उन सब का त्याग हो रहा है। किंतु भीतर की ग्रंथियां यदि बनी रहेगी, पूर्व के संस्कारों को यदि हमने अपने भीतर में बनाए रखा– उन संस्कारों को हमने नहीं छोड़ा तो आगमकारों के अनुसार

वस्त्र परिवर्तन हो जाएगा किंतु आत्मा का परिवर्तन नहीं होगा। आत्मा का परिवर्तन बहुत जरूरी है। अन्यथा परिवर्तन तो हमने बहुत किए हैं– हर जन्म में नया शरीर धारण किया है। ये परिवर्तन हर जन्मों में हमने किया है और इससे हमारा कार्य कितना सफल हुआ? जब तक आत्मा का परिवर्तन नहीं किया जाएगा, उसके संस्कारों को नहीं बदला जाएगा, उसके भीतर जो संयोग के बीज पड़े हुए हैं, जर्म्स पड़े हुए हैं उनको नहीं हटाया जाएगा– तब तक स्वावलंबन की साधना– वह बहुत ही सफलता पूर्वक करने में हम समर्थ नहीं हो सकते। साधु, घर-गृहस्थी का त्याग क्यों करता है? ताकि स्वावलंबी होकर वह साधना के क्षेत्र में आगे बढ़े। किसी प्रकार की रुकावटें, बाधाएं उसके सामने खड़ी नहीं हो।

किसी के शरीर में बीमारी आ गई है तो क्या करोगे? इलाज करा सकते हो, पैसे खर्च कर सकते हो। बढ़िया से बढ़िया डॉक्टर से इलाज करवा सकते हो। मुंबई, कोलकाता या फिर विदेशों से भी डॉक्टर को बुला सकते हो। किंतु क्या डॉक्टर आने से बीमारी दूर हो जाएगी? क्या डॉक्टर का डर लगता है बीमारी को कि उस डॉक्टर को देखते ही बीमारी भाग जाएगी। ऐसा होता नहीं है। एक नहीं, अनेक डॉक्टर आ जाते हैं फिर भी बीमारी दूर नहीं होती है। हमारे सामने एक ज्वलंत उदाहरण है अनाथी मुनि का। डॉक्टर पर डॉक्टर आए। माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नी सारे लोग एक पांव पर खड़े हैं कि चिकित्सा करानी है। तिजोरियों के द्वार खोल दिए। पैसा पानी की तरह बहाने लगे। पैसा कितना भी लगे, कोई चिंता नहीं किंतु डॉक्टर साहब बीमारी दूर हो जानी चाहिए। डॉक्टर्स अपना प्रयत्न भी करते हैं किंतु बीमारी का मूल जो हमारे भीतर में छिपा हुआ है! बीमारी का बीज जो हमारे भीतर में रहा हुआ है। जब तक वह नहीं निकलेगा, तब तक बीमारी दूर नहीं होगी। उसे जब तक नहीं हटाया जाएगा, तब तक ऊपर-ऊपर से ठीक हो जाए किंतु बीमारी पूरी तरह से अलग नहीं हो पाएगी। हट नहीं पाएगी। अनाथी मुनि की वेदना भयंकर है। वे अनुभव कर रहे हैं। किंतु कोई भी उपाय, कोई भी दवा कारगर नहीं हो पा रही है। उन्हीं का चिंतन, उनकी बीमारी को दूर करने वाला बन गया। इसलिए जब तक हमारे भीतर बीमारी रहेगी, बीमारी के बीज रहेंगे कोई उसको दूर करने में समर्थ नहीं है। यदि कोई सोच ले कि मेरे कारण से कोई सुखी, कोई दुःखी है तो यह सोचना भी सही नहीं है। अनाथी मुनि जैसे बाहर के आलम्बन को छोड़ अपना ही आलम्बन लेते है और सुखी हो जाते हैं।

बन्धुओ! विषय पर ध्यान दें। हृदय में ग्रंथि बनी रहती है तो वह ग्रंथि सुख को लील लेती है। हम भी अपने जीवन में कोई पुरानी ग्रंथियां हों तो उनको छोड़ें। उनको छोड़ने से हमारे भीतर में शक्ति व ऊर्जा जागृत हो जाएगी। और वह जागृत होगी तो हम निरावलंबी बन सकेंगे और हम अपने आप में संतुष्ट रहेंगे। हम किसी के साथ कोई अपेक्षा नहीं रखें। हमें किसी से कोई चाह नहीं रहेगी। दूसरों का सुख देखकर वहां हम दुःखी नहीं होंगे कि वह कितना धनी है। वह कितना ज्ञानी है। किसी को देखकर मन में ईर्ष्या की भावना नहीं बने। हम अपने हाल में अपने को मस्त रखें। इससे हमारी ग्रंथियां दूर होंगी और हम सुखी बनेंगे। इस प्रकार विचार करेंगे तो हम स्वावलंबी बन अपने जीवन को धन्य बना पाएंगे।

19 अगस्त, 2019

2

खोल हिये की आंख

जिन्होंने भी सर्प को चलते हुए देखा है वे भली-भांति जानते हैं कि सर्प की चाल कैसी है? सर्प टेढ़ा-मेढ़ा चलता है। गुरुदेव फरमाया करते थे कि 'साधु सलिला बादली चले भुजंग की चाल' भुजंग जैसे चलता है—टेढ़ा-मेढ़ा। वैसे ही साधु की चाल टेढ़ी-मेढ़ी होती है। एक गांव इधर, एक गांव उधर। आज इस गांव तो कल उस गांव। उसको हर इलाके को स्पर्शते हुए चलते रहना होता है। सलिला यानी नदी भी एकदम सीधी नहीं चलती और बादल भी किधर से किधर, कहीं-से-कहीं निकल जाते हैं। कहीं बह जाते हैं। कहीं बरस जाते हैं। कहा है—चले भुजंग की चाल। किंतु एक बात ध्यान रखना और ध्यान में होगी आपके भी कि जब सर्प बिल में घुसता है तब एकदम सीधा हो जाता है। साधु भले ही टेढ़ा-मेढ़ा चल रहा हो, पर उसका लक्ष्य सुनिश्चित है। सुस्थिर है, उस मायने से साधु की गति सुस्थिर है। वह टेढ़ा-मेढ़ा चलकर भी टेढ़ा-मेढ़ा चल रहा नहीं होता। क्योंकि भटकने वाले की गति टेढ़ी-मेढ़ी होती है! लक्ष्य की ओर गति सीधी होती है। सर्प की तरह मुनि भी एकांत, एक दृष्टि को लेकर चलता है। जो उसका लक्ष्य है उसी के अनुरूप वह चलता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी महाराज साहब के जीवन का एक प्रसंग है। घटना देशनोक की है। रात्रि का समय है। आचार्य पूज्य गुरुदेव विराजे हुए हैं। ध्यान मुद्रा में नहीं हैं, फिर भी गंभीर मुद्रा है। एक संत ने पूछ लिया कि गुरुदेव! कोई खास बात है? आप क्या विचार कर रहे हैं? गुरुदेव ने उत्तर दिया कि भाई! मैं यह सोच रहा हूं कि मैंने दीक्षा क्यों ली? मैंने किसलिए यह साधु जीवन स्वीकार किया? 'जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे' मैंने साधुता को स्वीकार किस उद्देश्य से किया इस पर मैं विचार कर रहा हूं। वर्षों बीत गए, साधना की ऊंचाइयां प्राप्त कर ली और इसी के बल पर

साधना की ऊंचाइयां प्राप्त हुईं। दीक्षा लेने के उद्देश्य को वे भूले नहीं। उस पर उनकी दृष्टि टिकी हुई थी और जिस साधक की दृष्टि टिकी रहती है, वह चाहे गुजरात जाए, चाहे पंजाब जाए, चाहे हरियाणा-राजस्थान जाए। कहीं पर भी जाए, उसका लक्ष्य स्थिर है कि मुझे जाना कहां पर है। वह किसी भी क्षेत्र को स्पर्श करे, उसका सारा चलना, उसकी आंखें अपने लक्ष्य की ओर हैं कि मुझे उस लक्ष्य को प्राप्त करना है।

'जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे' मैंने नग्नत्व को, साधुता को स्वीकार किसलिए किया? नग्नत्व यानी मैंने अपना सारा आवरण हटा दिया। मन पर कोई आवरण नहीं रखा। शरीर का आवरण हटाना कोई बड़ी बात नहीं है। कई लोग शरीर से आवरण हटा देने वाले को ही नग्न मानते हैं। बच्चा जन्म लेता है तो शरीर पर आवरण नहीं होता है। पहले बच्चों को निरावरण रखा जाता था, महीनों तक, वर्षों तक। आज की तरह जल्दी ही उसे वस्त्र नहीं पहनाये जाते थे। कुल मिलाकर शरीर का आवरण हटाना कोई बड़ी बात नहीं है। मन के आवरण को हटाया जाए तो मन के भीतर पड़ी गुत्थियां सुलझ जाएंगी। मन में गांठें बनी रहती हैं तो शरीर का नग्नत्व कोई मायने नहीं रखता। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों माता के गर्भ में जाकर फिर शरीर धारण करेगा। चोला धारण कर लेगा। इसलिए सबसे बड़ी बात मन के नग्नत्व की है। मन में पड़ी हुई ग्रंथियों, उलझनों को दूर करने की जरूरत रहेगी। उनको दूर करने के लिए सामान्य व्यक्ति हिम्मत नहीं कर पाता।

मैं अपने मन की बात कैसे प्रकट कर दूं? कैसे व्यक्त कर दूं? ध्यान में रहे कि जो दीक्षार्थी अभी दीक्षा के लिए तैयार हैं उनको मुख्य रूप से सोचने की आवश्यकता है कि हम इस मार्ग पर चल रहे हैं। यह मार्ग यदि आपने पसंद कर लिया और उसके अनुसार आप इसमें रम गये तो यह मार्ग इतना सुन्दर, इतना सलोना है कि इस पर गति करने में कहीं कोई रुकावट नहीं आएगी। किंतु मन की गांठें नहीं खुलीं तो हजारों रुकावटें आएंगी। जगह-जगह पर रुकावटें आएंगी। श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है–

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ॥

संकल्प और विकल्प में यदि उलझे रहे तो यह सफेद पोशाक हमें शांति-समाधि नहीं दिला पाएगी। यह हमें सर्टिफिकेट नहीं दिला पाएगी। क्योंकि जब

तक हमारे मन की परतें नहीं खुलेंगी, परतें नहीं हटेंगी, मन का आवरण नहीं हटेगा, मन को हमने हलका नहीं बनाया तब तक आत्मा को हलका नहीं बनाया जा सकता। मन का हलकापन यानी मन के द्वंद्व का हट जाना। मन बहुत से द्वंद्वों में उलझा रहता है कि यह करूं, वह करूं। यह नहीं करूं, वह नहीं करूं। कभी मन में यह विचार आता है कि ऐसा कर लूं, वैसा कर लूं। कभी मन होता है कि साधु बन जाता हूं! क्या है संसार में? फिर सोचता है कि थोड़े दिन देख लेता हूं। कुछ समय और देख लेता हूं। थोड़ा देखने के लिए गए तो क्या होगा? जो डूबा, वह तो बच गया और जो नहीं डूबा वह गीला होकर ही रह गया।

कबीर जी की एक बात है कि जो डूबा वो तर गया। जो संयम में डूबा होता है वह तर जाता है। और जो ऊपर-ऊपर रहता है वह केवल पानी के छींटे लगाता है और होता कुछ भी नहीं है। हमें स्वयं को संयम में डुबोना होता है।

मैं यह कहना चाहूंगा इन मुमुक्षु-आत्माओं को कि इनको गाड़ी का एक पहिया बनना है। संघ रूपी रथ, संघ रूपी गाड़ी जितना विस्तार पाती रहती है उसको उतने ही पहियों की जरूरत होती जाती है। पहिया क्यों बनना है? क्योंकि पहियों के ऊपर जो स्टेयरिंग होता है उसको गाड़ी का ड्राइवर जिधर भी मोड़ता है, वह पहिया भी उधर मुड़ता हुआ चला जाता है। जिधर उसको मोड़ना है, जिधर उसको ढालना है। ड्राइवर स्टेयरिंग को जिस ओर घुमाता है पहिया उधर घूम जाता है। वैसी ही हमारी भावनाएं होनी चाहिए। हमारे विचार होने चाहिए कि जिधर स्टेयरिंग घूमेगा उधर घूमना है। हम एक बार भी यह नहीं कहेंगे कि इधर नहीं घूमूं या उधर नहीं घूमूं। सेना को आदेश हो गया कि घूमो तो घूमना है। एनसीसी वाले बालक, युवक को कहें कि सावधान, वह क्या हो गया? विश्राम, क्या हो जाएगा? एक बार कह दिया तो वापस कुछ दूसरा विचार नहीं है। कोई विकल्प नहीं है, कोई तर्क नहीं है। कुछ भी नहीं है। न इधर देखना है, न उधर देखना है। यह नहीं कि मेरे को कहा जा रहा है या दूसरों को भी कहा जा रहा है। केवल मेरे को ही कहा जा रहा है तो मेरे को ही क्यों कहा जा रहा? ऐसा कोई विकल्प मन में आना ही नहीं चाहिए। ड्राइवर पहिये सहित गाड़ी को मंजिल तक पहुंचाने वाला होता है अन्यथा पहिया कहीं भी चला जाता। एक बात और है, पहिये में यदि पंचर पड़ गया तो उसकी चिंता कौन करेगा? पहिया चिंता करेगा या ड्राइवर चिंता करेगा?

जो हम बोल रहे हैं, अब तक मुंह से बोल रहे हैं– अब वह ध्वनि हमारे जीवन से निकले।

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।

यह गीत, केवल शब्दों से ही नहीं निकले और यह मत समझ लेना कि ये गीत मुमुक्षु-आत्माओं के लिए ही है। यदि हम कल्याण चाहते हैं, यदि हम तिरना चाहते हैं संसार सागर से, तो प्रत्येक साधक को, प्रत्येक संघ सदस्य को ऐसा ही लक्ष्य बनाना चाहिए। किंतु ये कार्य कभी भी कायर व्यक्ति नहीं कर सकता। कायर का कलेजा कांपता है। कायर व्यक्ति पहले अपना सोचेगा। अपना बचाव करेगा। वह चाहेगा कि तीर दूसरे पर लगे और मैं बच जाऊं! और जो वीर है वह तीर से बचने की कोशिश करेगा या सीने पर लेने की कोशिश करेगा?

वीरां ने लागे वचन ताजणां, कायर ने लागे नहीं कोय...।

सेना में भर्ती के समय एक व्यक्ति का माप-नाप, तोल वगैरह हो रहा था। सीना देखा जा रहा था। हाइट देखी जा रही थी। इंटरव्यू चल रहा था। वहां पर किसी ने कहा कि अब पीछे घूमो और तुम्हारी पीठ दिखाओ तो वह व्यक्ति बोला कि मैं पीठ दिखाने के लिए सेना में भर्ती नहीं हो रहा हूं। क्या बोला? (जोर देते हुए) क्या बोला? और आज मुमुक्षु बहिनें आप पीठ दिखाकर निकल रही हो। घर से पीठ दिखाकर निकल रही हो। संसार से निकल रही हो। 'जे य कंते पिए भोए, लद्धे विप्पिट्ठि कुव्वई' जितने भी स्वाधीन भोग थे उन सबको अब आप पीठ कर चुकी हो। छोड़ चुकी हो। घर में खाने की कमी नहीं है, पीने की कमी नहीं है, वस्त्रों की कमी नहीं है, आभूषणों की कमी नहीं है। रहने के लिए साजो-सामान की कमी नहीं है। इन सबको पीठ दिखाकर निकल रही हैं। तो जिधर पीठ कर दी अब उधर वापस मुंह नहीं होना चाहिए। सांप, केंचुली/कांचली को त्यागकर ऐसा जाता है कि वापस पीछे नहीं देखता। वापस उस पर नजर नहीं डालता कि मेरी कांचली कहां गई? कांचली को छोड़ने से उसे ऐसा लगता है कि आज मैं मुक्त हो गया! उसको बड़ा आनन्द आता है। वैसा ही आनन्द एक पिंजरे से आजाद होने वाले पक्षी को होता है। अरिष्टनेमि भगवान् के एक इशारे से, उनके भाव से जब पिंजरे और बाड़े खोल दिए गए तो पशु और पक्षी कितने आनन्द से जाने लगे! दौड़ने-उड़ने लगे। वैसा ही आनन्द इस संयमी जीवन का है। आज इस पिंजरे

से निकल रहे हैं। पिंजरे में काजू मिलेंगे। पिंजरे में किशमिश मिलेगी। पिंजरे में दाख मिलेगी। पिंजरे में बादाम मिलेंगे किंतु हे तोते! भूलकर भी लालच से, लोभ से, वापस उसी पिंजरे में मत घुसना। सावधान रहना। पिंजरा तो पिंजरा है। जो खुले आकाश में सुख है वह सुख उसमें नहीं है।

भाई रे सुणज्यो, संसारी ने सुख सपने नाहि रे...।

क्या सुना, क्या समझ में आया? लड़खड़ा रहे हो अभी। बोली निकलने में लड़खड़ा रही है तो जीवन जीने के समय क्या होगा? ये मुमुक्षु-आत्माएं हिम्मत से निकली हैं। वीरता से निकली हैं। वैसी वीरता का मौका यदि आ गया तो हमारे हाथ-पांव कांपने तो नहीं लग जाएंगे?

जय जयन्त बनें हम, हिम्मत हम धारें अंतर्भाव से,
हिम्मत से जयवन्त बने हैं, तीर्थंकर भगवान,
हिम्मत से जो कदम बढ़ाए, पूरे मन अरमान जी॥ जय...

हिम्मत से कदम नहीं बढ़ा पा रहे हो पर हिम्मत से गा तो सकते हो।

सेठ धन्ना जी, शालिभद्र के बढ़े हिम्मत से पांव,
जम्बू कुंवर की कथा बताती, पाए सुधर्मा छांव जी॥ जय...
उदयसागर जी श्रीलाल जी आचारज गुणवान,
हिम्मत से बढ़ पाए आगे, कर हिम्मत पहचान जी॥ जय...

क्या किया था आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज ने? वे हमारे आचार्य बने। इसी जोधपुर के थे आज जिनका हम गुणगान कर रहे हैं। खूंटों की पोल, जोधपुर में उनकी बारात सजकर गई और...

गिरी पाग वैरागी बन गये, उदयसागर तोरण से फिर गये।
तिरण-तारण की जहाज, नाना गुरुवर की॥ सब बोलो...

गौतम जी! ईर्ष्या के भाव मत लाना।

हम कहते हैं कि मोहनलाल जी का ही नाम क्यों आता है? अकेले मोहनलाल जी की आवाज ही आप सबसे अधिक होती थी। उनकी आवाज का मुकाबला नहीं हो सका। यह मोहनलाल जी गाया करते थे। एक आवाज आती है कि मोहनलाल जी को तो लोग पूछते हैं ऐसा क्या है? उनकी आवाज बुलंद थी परन्तु आवाज से नहीं काम से आदमी की पूछ होती है। नाम की पूछ नहीं होती है। नाम तो गौतम बहुतों के हैं उनकी पूछ होती है क्या? महावीर नाम के भी बहुत व्यक्ति हुए हैं। क्या उन सभी नामधारियों

की पूछ हुई? किसी के नाम से पूजा हुई है? महावीर होता है महानता से। महावीर की वीरता और धीरता महान् थी। इसलिए हुए महान्। महावीर अपने आत्मीय गुणों और वीरता-धीरता से महान् हुए।

देखो, कितने लोग हैं यहां पर ब्यावर के, फिर भी आपने अपना परिचय क्या दिया? बंधुओ! परिचय यह दिया कि बिना डंडे के हम चलने वाले नहीं हैं। हमको कोई धक्का लगावे तो हम चलने वाले हैं। बिना धक्का लगाए हमारी गाड़ी चलती नहीं है। युग कहां से कहां चला गया? हमारी पसंद बीएमडब्ल्यू गाड़ी की है। पसंद बीएमडब्ल्यू की है और हम अभी भी डीजल वाली गाड़ी में बैठे हुए हैं। जिसका इंजन ठण्डा हो जाये तो धक्का लगाना पड़े। कहां चला गया युग और हम कहां हैं? यही दशा रहेगी तो हम युग के साथ कैसे चल पाएंगे? एक तरफ कहते हैं युग के साथ चलना चाहिए पर कैसे चलेंगे? बढ़ने वाले बढ़ जाते हैं! सदा बढ़ते रहेंगे और देखने वाले देखते रह जाते हैं। डिवाइडरों के पीछे खड़े देख रहे हैं! जब खड़े हैं दर्शक दीर्घा में और लड्डू, घेवर और रबड़ी तो खाने वाले खा जाएंगे।

अभी गुलाब जी बोल रहे थे कि चातुर्मास के रूप में लड्डू और घेवर मिला। गुरुदेव ने दीक्षा दे रबड़ी लगा दी। घेवर और लड्डू बांट दिए गए हैं। गुलाब जी ने रबड़ी-घेवर इतनी खा ली क्या कि इनका गला ही चिपक गया है। आज संघ की तरफ से जीमण बनाया गया होगा। लगता है घेवर और रबड़ी बनाई हो। इन्होंने कुछ ज्यादा ही खा ली होगी। कई लोगों की आदत होती है फ्री में मिले तो जमकर खाओ। वैसे ही आज रसोई यदि संघ की तरफ से बनाई गई है तो खाओ आज तो जी भर। और रबड़ी ने गला बैठा दिया। रबड़ी इनको मिली या न मिली हो, जोधपुर वालों को रबड़ी मिली या नहीं मिली। अभी तो ले जाने वाले रबड़ी ले जा रहे हैं। रबड़ी, घेवर ले जा रहे हैं पराये लोग। लेकिन पराया आनन्द नहीं देता। पराये बेटे को गोद लेने से इतना सुख नहीं मिलता जितना स्वयं के बेटे को गोद में लेने से मिलता है। जन्म देने वाली माँ का संतान के प्रति जो प्यार बरसता है उतना प्यार पराये बेटे को गोद में लेने पर नहीं बरस सकेगा। पराई माँ उस तरह का प्यार कभी भी नहीं दे सकती जितना जन्म देने वाली माँ देती है। जो अनुभव जन्म देने वाली माँ कर सकती है वैसा गोद लेने वाली माँ नहीं कर सकती। जो माँ संतान को पैदा करती है वह केवल संतान को ही पैदा नहीं करती है, उसके भीतर मातृत्व का भी जन्म होता है। माँ तभी माँ होती है जब उसके

भीतर संतान के साथ मातृत्व भी पैदा होता है। औरतें तो बहुत हैं। बिना माँ बने वह औरत होती है। माँ बनने वाली सौभाग्यशालिनी होती है। जिसकी कोख से कोई संतान पैदा हो जाती है वहां मातृत्व जन्म लेता है। जब तक मातृत्व का जन्म नहीं होता वह माँ नहीं कहलाएगी। वह औरत, बहू या पत्नी कहलाती है। हमारे भीतर भी वही शौर्य है जो आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज साहब, आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज साहब के जीवन में था। एक की शादी हो गई और एक शादी के लिए तैयार थे किंतु जैसे ही उनको मौका मिला, एक झटका लगा, उन्होंने कहा, यह जीवन बर्बाद करने के लिए नहीं आबाद करने के लिए है। मुझे अपने मनुष्य जीवन को सार्थक करना है।

मैं इन बहिनों के पारिवारिक परिचय को पढ़ रहा था तो देखा कि वोनिशा जी के भतीजों और भांजों के नाम सम्यक्, सार्थक, सिद्धार्थ आदि हैं। सारे स, स, स, यानी सकारात्मक हैं। वे कब सार्थक करेंगे नाम को? हम सकारात्मक चलेंगे तो सही दिशा में चलेंगे। आज मुमुक्षु-बहिनें आई थीं तो मैंने कहा कि केले का पेड़ बढ़ता है। उसमें फल लग जाते हैं। फल लगने के बाद जैसे ही केले का घेरा पकने को होता है उसको निकाल लिया जाता है। और जैसे ही निकाला जाता है वह पेड़ भी गिर जाता है। किंतु नीचे से कोंपलें निकलती हैं जिससे दूसरा एक नया पेड़ खड़ा हो जाता है। आप जिस परिवार से जा रहे हो, निकल रही हो तो ऐसे बीज वहां छोड़कर आना कि वहां वापस अंकुरण हो जाए। और पेड़ उग जाए।

रामदेव जी ने कुछ कहा था। जोधपुर वालो! बताओ क्या कहा था रामदेव जी ने? कोई मौके की बात पूछे तब याद होना चाहिए ना? रामदेव जी ने कहा था कि जब मैं यहां पर समाधि लूं तो इस समाधि को खोदना मत कोई भी। इसको हटाना मत। यह नहीं हटाओगे तो पीढ़ी दर पीढ़ी पीर जागेंगे पर खोदने वाले खोदे बिना रह नहीं सके। विश्लेषक नहीं माने। खोदकर ही चैन लिया। उस समाधि को खोदकर देख लिया तो वापस कोई पीर नहीं हुआ। आज तक उनके पीछे कोई पीर नहीं हुआ। हमारे पीछे पीर दिखने चाहिए या नहीं? (प्रत्युत्तर– दिखने चाहिए) फिर खड़े हो जाओ। वाह! वाह! क्या बात है? खड़े हो गए हैं।

प्रण वीरां रो शृंगार, कायर कांई लेसी...।

अपनी हिम्मत को कभी भी कम मत आंको। हमारे भीतर वह हिम्मत है जो सेठ धन्ना जी में थी। वे चल पड़े तो चल पड़े। भगतसिंह बन्दा चल पड़ा

तो चल ही पड़ा। पीछे देखने का काम ही नहीं। 'मेरा रंग दे बसन्ती चोला, मेरा रंग दे बसंती चोला' बस चले हैं तो चले हैं। ये हिम्मत होनी चाहिए। लोग क्या कहेंगे? घर वाले क्या कहेंगे? समाज वाले क्या कहेंगे? जो यह सब सोचता रहता है उसकी जंजीर कभी खुलने वाली नहीं। जंजीरों को तो झटका देना पड़ता है? कब टूटती हैं? कब टूटेगी जंजीरें? (हाथ का एक्शन) ऐसे हिलाया और तोड़ा। एक झटका, एक धक्का और दो (सभा– संसार को छोड़ दो) धक्का देना है तो कषायों को, क्रोध को धक्का दें। अहंकार को धकेलें। आसक्ति और ममता व मूर्च्छा को दूर धकेलें। उन्हें धक्का दें। उनको धक्का देने में समर्थ होंगे तो जंजीर तोड़ पायेंगे। जंजीरें टूट सकेंगी। जैसे इन बहनों ने मोह की जंजीरें तोड़ी।

कृष्ण पंचमी भद्र मास की, दीक्षा हो रही तीन,
सूर्य नगर का नूर सवाया, हो गए हैं लवलीन जी। जय जयवंत...

मुमुक्षु-बहिनें वैसे तो परिचय की मोहताज नहीं हैं। इन्हें परिचय की चाह नहीं है। आपने समारोह आदि में इनका परिचय जान लिया होगा फिर भी संक्षिप्त में बता देता हूं।

सोनू जी रांका का जन्म– 9 अगस्त, 1987 को 'क्रांति दिवस' के दिन मुंबई में हुआ। उस दिन क्रांति फूट रही थी, 'यह दिवस क्रांति का आया है'। इन्होंने एम.ए. हिन्दी साहित्य में किया है। नवरतन देवी-पारसमल जी की लाडली हैं।

वोनिशा जी, छत्तीसगढ़ के थान खमरिया (बेमेतरा) चौपड़ा परिवार की लाडली हैं। इन्होंने अभी 12वीं का अध्ययन किया है। इनका जन्म 10 दिसम्बर, 1992 को हुआ। शशि देवी और राजेश जी चौपड़ा माता-पिता हैं। सिद्धार्थ भाई है। सिद्धार्थ किसको कहते हैं? जिसने अपने प्रयोजन को सिद्ध कर लिया। सिद्धार्थ जी! अब आपको संसार में बसना या निकलना है? आपको डूबना है या तिरना है? हिम्मत की कीमत है। यह आप विचार कर लेना, सोच लेना।

तीसरी हैं शेफाली जी सिंघवी! विनीता बाई और लाल जी सिंघवी इनके माता-पिता हैं। ये बोल गईं कि रतलाम चातुर्मास में इनकी बहिन ने दीक्षा ली थी। भावना उस समय भी थी। किंतु जब तक आड़े कांकरें आए हुए हों तब तक पानी की धार कुएं में नहीं आ पाती। पानी कुएं में नहीं आ पाता है। जब कांकरें हटा दिए जाते हैं तो पानी की धार कुएं में निकल आती

है। इनकी भावना थी मुझे चुपचाप दीक्षा लेनी है। न कुछ साज सजाना है, न कुछ करना। जैसे पहले इनकी बहन ने दीक्षा ली वैसे ही दीक्षा लेनी है। तदनुसार इनकी दीक्षा घोषित नहीं थी।

दीक्षा कार्यक्रम का एक चरण पूरा हो गया है। दूसरी विधि नामकरण है। नाम से नई पहचान हो जाती है। एक बात सभी निश्चित जान लीजिए, नाम संयम नहीं है। नाम केवल पहचान के लिए है। मोक्ष में नाम की कोई जरूरत नहीं रहेगी। पर संयम के बिना मोक्ष होना भी नहीं है। आज सिद्ध बनेंगे चाहे कल जिसका सिद्धि में जाने का मन है दरवाजा यही है। साधुता के बिना सिद्धि मिलने वाली नहीं है। नहीं है, नहीं है और नहीं है। समझ लेना दरवाजा खटखटाना है। आज खटखटाओ चाहे कल, जब जाने की इच्छा हो जाए इस दरवाजे को खटखटाना पड़ेगा। कौन-से दरवाजे को?

मैं जिनको आज पहचान देने जा रहा हूं, परिवार वाले सोनू के नाम से जानते हैं। ये परिवार के लिए सोना और चांदी जो भी रहे होंगे, किंतु सुख और शांति के लिए संयमी बने हैं और उसे ये प्राप्त करें इसलिए इनका नाम महासती श्री सुखदाश्री जी म.सा. रखा जा रहा है। सुखदा यानी सुख देने वाली। सुख देने के लिए निकली हैं। ये स्वयं दुःख कितना भी सहन कर लें किंतु दूसरों को दुःख नहीं देना। दुनिया को सुख देना। सुख बांटना है। सुख प्राप्त करके बांटेंगे क्योंकि जिसमें पैर रखे हैं यह संयम सुख की खान है। हम सुख की खदान में चले गए हैं।

सुखदा श्री जी सुख बांटती रहे तो वोनिशा जी ताकती थोड़ी न रहेंगी! इनकी नई पहचान हम करेंगे नवदीक्षिता महासती वरदाश्री जी म.सा.! वरद वर देने वाले। लोग मांगते हैं ना, क्या? वरदान मांगते हैं। वर का एक अर्थ होता है– श्रेष्ठ। वरदा यानी श्रेष्ठ। सुन्दर शोभन दान देने वाले। ज्ञान-दर्शन-चारित्र ही वह श्रेष्ठदान है। उसे ये लुटायेंगी।

शेफाली जी संयम के मार्ग पर बढ़ी हैं और संयम के बहुत सारे नाम हैं। ये इस संयमी जीवन में आकर सबको शुभ और लाभ का वितरण करेंगी इसलिए इनका नाम नवदीक्षिता महासती श्री शुभदाश्री जी म.सा.!

दीक्षा का तीसरा चरण है केशलुंचन का। वो शासन दीपिका महासती मंजुलाश्री जी म.सा. संपन्न करेंगी।

20 अगस्त, 2019

3

उपेक्षा की अपेक्षा क्यों?

शांति जिन एक मुज विनति...।

धर्म का मुख्य उद्घोष है– संक्लेश के परिणामों को दूर करना। संक्लेश को बढ़ने नहीं देना। यह धर्म का परिणाम है, कार्य है। संक्लेश किससे बढ़ता है? संक्लेश बढ़ने का स्पष्ट कारण है– कषाय। प्रश्न होगा कि कषाय तो दुनिया में सभी में है तो फिर क्या सभी संक्लेशित होते रहेंगे? इस पर कुछ चर्चा करनी होगी।

एक आदमी कषाय करके फिर छोड़ देने वाला होता है और एक कषाय को बार-बार आलोकित करने वाला होता है। जो बात बीत गई है, उसको बार-बार अपने मन में घोटते रहेंगे तो संक्लेश पैदा होगा। जैसे मिट्टी पर पानी गिरा, पानी सूख गया और मिट्टी भी वापस सूख गई। अब गीली नहीं रही। किंतु गीली मिट्टी पर यदि बार-बार गमनागमन होता है, पानी गिरी मिट्टी पर गमनागमन होता है तो वह कीचड़ बन जाएगा। मिट्टी अलग है, पानी अलग है। मिट्टी पर पानी गिरा, उस पर धूप पड़ी और पानी सूख गया। पर लोगों का आवागमन उस पर होता रहे तो कीचड़ बन जाएगा।

वैसे ही हमारे मन में कषाय आये और निकल गये तो कोई बात नहीं है। किंतु बार-बार हम उस पर विचार करते रहते हैं। बार-बार उसी बात को घोटते रहेंगे तो उससे जो कीचड़ बनता है उसी को अध्यात्म की भाषा में संक्लेश कहा गया है। वही संक्लेश हमको संक्लेशित करता है। दुःखी करता है। धर्म उस संक्लेश को दूर करता है। धर्म की परिभाषा में यदि हम जाएंगे, जीएंगे तो इसका मतलब है कि 'जो पहले हो चुका है, उसको छोड़ दो। उसका विचार मत करो।' विचार करने से भी क्या हो जाएगा? यदि किसी ने तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव किया और उसको दिमाग में लेकर बैठे रहोगे तो

बैठे रहो। उस समय जो द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव था, वे सारे बदल गए। अब यदि हमारे भीतर में वही बात बनी रहेगी तो हमारा विकास नहीं होगा। हमारा उत्थान नहीं होगा और हम संक्लेशित होते रहेंगे।

संक्लेश के और भी कई कारण होते हैं। जैसे व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, सम्मान चाहता है। उस प्रतिष्ठा, सम्मान में कोई रुकावट आती है तो फिर उसका मन संक्लेशित होने लगता है। महासती श्री हंस कंवर जी म.सा., एक ठाणे से महाराष्ट्र से विचरण करते हुए मालवा पधारीं। कई क्षेत्र ऐसे होते हैं जहां पर साध्वी-साधु अकेले विहार कर रहे हैं। साध्वी अकेले या दो से विहार कर रही है। या कोई क्या कर रहा है उससे उनको कोई लेना-देना नहीं है। आ गए, गोचरी हो गई। गोचरी कर ली। मन हो गया तो दर्शन करने के लिए व्याख्यान में चले गए। इससे आगे उनको कुछ भी लेना-देना नहीं है। मेवाड़, मालवा में या इधर के क्षेत्रों में कुछ लोग इसी मानसिकता के होते हैं। कुछ लोग जो सजग हैं वे एकल विहारी के प्रति जैसा रुझान रखना चाहिए, वैसा रख नहीं पाते। वर्तमान में एकल विहार निषिद्ध है। एकल विहारी साधु आठ गुणों से संपन्न अणगार होना चाहिए और साध्वी के लिए तो एकल विहार है ही नहीं। जो साधु ज्ञान और श्रद्धा से संपन्न हो। परीषह सहन करने में समर्थ हो। शांत भाव रखता हो और समभाव में रमण करने वाला हो तो वह कर्मों की विशेष निर्जरा करने के लिए एकल विहार स्वीकार करता है। गुस्से में आकर, लड़ाई-झगड़ा करके, संक्लेशित होकर कोई एकल विहार स्वीकार करे तो वह कर्मों की निर्जरा के लिए नहीं है। वह कर्म बन्ध का स्थान है। विशेष निर्जरा के लिए एकल विहार को स्वीकार करने वाला हो तो उसे अनुमति दी जाती थी।

आचारांग सूत्र में दो प्रकार का एकल विहार बताया गया है। पहला कर्मों की विशेष निर्जरा के लिए। और दूसरा, क्रोध-अहंकार के कारण। कर्मों की विशेष निर्जरा के लिए जो एकल विहार स्वीकार किया जाता है उसको प्रशस्त-शुभ कहा है। अच्छा कहा गया है। वह स्वीकार किया जाना चाहिए। उसको अनुमति देने की बात की गई है। किंतु कषायों की बदौलत जो एकल विहार स्वीकार किया गया उसको अशुभ कहा गया। उसके लिए कहा गया कि जो महान् चंडी होता है, क्रोधी होता है, जिसमें अहंकार होता है वही ऐसा अशुभ एकल विहार स्वीकार करता है। वह एकल विहार कर्मों का बंध कराने वाला होता है– कर्मों की निर्जरा कराने वाला नहीं। एक बात मैंने कल

भी कही थी। पहले भी कई बार बोली थी और आज भी दोहराना चाहता हूं कि साधु हो, श्रावक हो या सम्यक-दृष्टि, उनको एक बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि मैं जो भी करूं कर्मों की निर्जरा का लक्ष्य रखते हुए करूं। मेरी जो भी क्रिया हो वह कर्मों की निर्जरा के लिए होनी चाहिए। मुझे अब वापस भारी नहीं होना है। मेरे पर पहले का जो भार रहा हुआ है उस भार से भी मुझे हलका होना है।

हम देखते होंगे या देखे होंगे कभी ऐसे व्यक्ति को कि जितनी शक्ति नहीं है उससे अधिक सामान उठाकर वह जा रहा होता है। किंतु वह स्वस्थ रूप से नहीं चल पाता है। वह अच्छे रूप से नहीं चल पाता है। उसको हांपनी आ रही है। परेशानी हो रही है। किंतु क्या करे, चलना पड़ रहा है। उस पर प्रैशर है इसलिए चलना पड़ रहा है। पर्युषण-पर्व आ रहा है, अवसर हुआ तो सुनेंगे। बीच में ही मुझे उस वृद्ध की बात याद आ गई कि वह वृद्ध व्यक्ति लकड़ी लेकर चल रहा है और ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर घर में ले जाकर रख रहा है। यहां दो प्रकार की बात सामने आएगी। हम क्या सोचते हैं वह बात अलग है। एक बात यह होगी कि ऐसे वृद्ध पुरुष होते हैं जो निकम्मे रहना नहीं चाहते हैं। मतलब कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने जीवन में बहुत ज्यादा सक्रिय रहे हों। उनको यदि कह दें कि चुपचाप बैठ जाओ तो वे बीमार पड़ जाएंगे। कोई व्यक्ति यदि जीवन में एकदम निवृत्त हो जाएगा तो वह एकदम निराशा में आ जाएगा। बीमार हो जाएगा। उसे लगता है कार्य करना है। कार्य करते रहना बुरा नहीं है।

श्रद्धेय श्री इन्द्रचन्द जी म.सा. फरमाया करते थे कि मैं जिस दिन काम करना छोड़ दूंगा, उस दिन जड़ हो जाऊंगा। श्री पदम मुनिजी म.सा. दीक्षित हो गए। उनके दीक्षित होने का मूल कारण यह सोचना था कि बाबाजी म.सा. इतना काम करते हैं। मैं दीक्षा लेकर उनके काम को हलका करूंगा। दीक्षा लेने के बाद वे म.सा. को कहते रहते कि ये काम मत करो, वो मत करो और उन्होंने बहुत सारे काम छुड़वा दिए। इससे उनका चलना-फिरना बंद जैसा हो गया। तब म.सा. कहते कि 'ओ छोरो मने जड़ बणा दियो' यह ठीक है कि आदमी को पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। यदि वो वृद्ध इसी प्रकार से पुरुषार्थ कर रहा है कि घर में बैठे-बैठे क्या करूं और एक-एक ईंट उठाकर घर में ला रहा है तो वह ठीक है। दूसरी बात, यदि घर वाले कहें कि बैठे क्या हो घर में इससे अच्छा एक-एक ईंट धीरे-धीरे ले आओ तो उनके कहने से उसका लाने

का मन तो नहीं है किंतु लाना पड़ रहा है। इससे मन दुःखी होगा। दोनों कार्य में कितना अंतर हुआ? क्रिया एक समान है। क्रिया में कोई फर्क नहीं है किंतु क्रिया में फर्क नहीं होते हुए भी उसके परिणाम में फर्क आ जाएगा। एक का परिणाम मन की प्रसन्नता होगी और दूसरे का परिणाम मन का संक्लेश। कर्मों का बंध होगा। इसलिए हम क्या कर रहे हैं यह बात उस समय मत सोचना। यह सोचो कि मैं किस निमित्त से कर रहा हूं। दुःखी होकर कोई कार्य कर रहे हैं, तनाव में कर रहे हैं, खिन्न होकर कर रहे हैं, लाचारी से कर रहे हैं या अपने मन से कर रहे हैं?

एक बीमार व्यक्ति को कहते हैं कि तुम्हें थोड़ा-थोड़ा घूमना है। वह नहीं चाहता है घूमना फिर भी उसको घुमाया जाता है। किंतु उसमें भी फर्क पड़ जाता है। एक तो उसको अनुनय-विनय करके कहें कि डॉक्टर साहब ने कहा है इसलिए आपको घूमना है। और एक उसको कहें कि नहीं, तुमको घूमना पड़ेगा। डॉक्टर ने कहा है घूमना ही पड़ेगा। दोनों की प्रतिक्रिया अलग-अलग होगी। मुद्दा एक ही है कि बीमार को घुमाना है। बीमार को थोड़ा चलाना है। लेकिन एक क्या कह रहा है और दूसरा क्या कह रहा है? एक में हिटलरी आदेश है कि चलना पड़ेगा, उठो! मैं नहीं मानता कि तुम्हारे पैरों में कोई दर्द है। डॉक्टर ने कहा है तुमको घूमना ही पड़ेगा। और एक में समझदारी है। वह व्यक्ति कहेगा कि देखो, डॉक्टर ने तुम्हें घूमने के लिए कहा है। तुम यहां से थोड़ा चलो और अगर थोड़ा चलने के बाद आगे नहीं चल पाओ तो वहां पर तुम्हारे बैठने के लिए हम कोई दूसरा साधन रख देंगे। तुम थक जाओ तो वहां पर बैठ जाना। एक में व्यक्ति का मन हो जाएगा कि मैं थोड़ा चलूं। बीमार का मन हो जाएगा कि मैं थोड़ा चलूं और पहले वाली बात में उसको लाचारी में चलना तो पड़ेगा किंतु थोड़ा चलने के बाद उसका मन हो जाएगा कि मैं नहीं चल पा रहा हूं। क्योंकि मन से नहीं चल रहा है। मन तैयार नहीं है। दूसरे में विनय से समझाने, बोलने पर उसके दिमाग में बात जम गई और वह चल रहा है। क्योंकि दिमाग में वह बात भी चल रही है। पहले मन नहीं कर रहा था, उसको भय था कि यहां से यहां थोड़ी दूर तक चलूंगा तो तकलीफ हो जाएगी। चल नहीं पाऊंगा। आगे नहीं बढ़ पाऊंगा। पर चला तो लगा चल सकता हूं। ये चलना कैसे हुआ? यह चलना मन से हो गया। बस यही बात मैं बता रहा था कि वह वृद्ध एक-एक ईंट लाकर घर में रख रहा है। हालांकि उसकी शक्ति कम रही होगी फिर भी वह पुरुषार्थ कर रहा है तो अच्छी बात

है। किंतु जब प्रैशर में आकर, खिन्न होकर, लाचार होकर वह कार्य करता है तो वह कार्य कर्मों का बंध कराने वाला होता है।

महासती श्री हंस कंवर जी की बात मैं बता रहा था। वे अकेली थीं। अकेला रहना ठीक नहीं है। पर कारण क्या है जानना चाहिए। सबको एक घाट पर पानी नहीं पिलाना चाहिए। सारे पदार्थ एक तराजू पर नहीं तोले जा सकते। अनाज तोलने का तराजू अलग होता है, सोना-चांदी तोलने का तराजू अलग होता है। एक क्विंटल जितना भार जिस कांटे पर तोला जाता है, उस पर 5-10 ग्राम या 100 ग्राम सोना तोला जाएगा तो उचित नहीं है। वहां सही तोल मालूम नहीं पड़ेगा। जैसे अनाज और सोना-चांदी के कांटे अलग-अलग होते हैं, वैसे ही हमारी दृष्टि केवल कार्य पर न होकर कारण पर भी होनी चाहिए कि यह एकल विहारी, अकेला क्यों विहार कर रहा है? कुछ जगहों पर महासती जी को उपेक्षा भी मिली जिससे उन्हें बड़ी दुविधा हो गई। वे परेशान हो गईं कि मैं किधर आ गई? लोग मुझे तवज्जुह नहीं देते हैं। मेरे दुःख-दर्द को समझने वाला कोई नहीं है। मेरी उपेक्षा की जा रही है। उपेक्षा की आग, उपेक्षा की आंच है तो बहुत बढ़िया। यदि सह ले तो सोना-कुंदन बन जाए और नहीं तो दुःख ही दुःख है। हर कदम पर दुःख है। बहुत से लोग अपेक्षा जरूर करते हैं किंतु उपेक्षा सहन नहीं कर पाते। उपेक्षा सहन नहीं कर पाना बहुत बड़ी कमजोरी हो सकती है और कमजोरी है। यह उपेक्षा, आंच महासती जी को भी नहीं सुहाई और पहुंचते-पहुंचते पहुंच गई पीपलिया मंडी। क्या करोगे उस समय? बोलो, क्या करोगे? क्या कारण पूछोगे? वे रो पड़ी जब जमनालाल जी ने पूछा महासती जी क्या तकलीफ है? अकेले क्यों हैं? कोई तकलीफ हो तो उसका इलाज करवायेंगे। सांत्वना पाकर वे कहने लगीं श्रावक जी! हम तीन सतियां जी थीं। एक का कालधर्म हो गया। दूसरी सती जी गृहस्थ बन गई और मैं अकेली रह गई। मैं चाहती हूं कि कोई अच्छा साथ मिले तो मैं उनके साथ रहकर संयम की पालना करूं किंतु मेरे उद्देश्य को कोई सुनने-समझने को तैयार नहीं है। मुझे अकेला (एकल विहारी) मानकर मेरा उपहास किया जा रहा है। मैंने बहुत सहा, बहुत सहा किंतु अब सहन करने जैसी स्थिति बन नहीं पा रही है।

जमनालाल जी ने उनसे बात की और पूछा, क्या किसी के भी साथ निभाने के लिए तैयार हो? क्या आपकी मंशा संयम जीवन पालन करने की है? महासती जी बोली कि क्यों नहीं, अगर मंशा नहीं होती तो मैं इतना

सहन क्यों करती? मुझे संयम से प्यार है। जमनालाल जी ने गुरुदेव को पत्र लिखा। आचार्य देव असंग्रहित को संग्रहित करने वाले थे और गुरुदेव की ये दिली इच्छा रहती थी और हमने भी बहुत बार अनुभव किया कि यदि कोई संयम पालन के लिए तत्पर है और उसमें उसको कोई कठिनाई आ रही है तो उसे सहयोग देते थे। जमनालाल जी के समाचार गुरुदेव को मिले कि ऐसी-ऐसी स्थिति है। आचार्य देव ने विचार किया और जमनालाल जी को पत्र का उत्तर दिलवाया कि आप महासती जी को एक बहिन और एक भाई के साथ जावरा विराजित श्री तेजकंवर जी म.सा. के पास पहुंचा दीजिए। वे वहां रहेंगी, साध्वियां जी भी अनुभव कर लेंगी और प्रत्यक्ष मिलने पर आलोचना प्रायश्चित्त के साथ यथा योग्य किया जा सकता है। ये समाचार मिलते ही महासती जी आश्वस्त हो गईं। वे जावरा पधारीं और उसके बाद 23 वर्षों तक शासन में रहते हुए उन्होंने संयम की आराधना की।

ये है किसी के संक्लेश को मिटाना। वे अकेली रह संक्लेशित हो रही थीं। हालांकि किसी का उपहास हमें नहीं करना चाहिए। यदि हम किसी की अपेक्षा पूरी कर सकें तो बहुत अच्छी बात है। यदि हम किसी की अपेक्षा पूरी न कर सकें तो किसी की उपेक्षा करने का अधिकार भी नहीं है। हमें उपेक्षा करनी ही है तो हम क्या करें? उपेक्षा करनी है तो एक मार्ग है। हमारे मन में उठने वाली इच्छाओं की उपेक्षा करो। ये खा लूं, वो खा लूं, ये काम कर लूं, वो काम कर लूं। नित नई अपेक्षाएं, इच्छाएं जो हमारे भीतर में पैदा होती रहती हैं उनकी उपेक्षा करो। उनकी जितनी उपेक्षा की जाएगी, अपनी लालसाओं की जितनी उपेक्षा की जाएगी हम साधना में उतना ही आगे बढ़ पाएंगे। व्यक्ति अपनी लालसाओं की, आकांक्षाओं की, अपेक्षाओं की तो उपेक्षा कर नहीं पाता है और अन्य व्यक्तियों की उपेक्षा करने लग जाता है। 'उपेक्षा, धर्म का अंग नहीं है। उसकी अपेक्षा क्यों? धर्म कहता है कि वात्सल्य भाव रखो। सम्यक् दृष्टि के आठ आचारों में एक आचार है 'वात्सल्य'।

हम कहने में कहते जरूर हैं कि भगवान् महावीर ने कहा है कि घृणा पाप से करो, पापी से नहीं। नफरत पाप से करो पापी से नहीं। ऐसा जन-रव दृष्टिगत होता है। लेकिन हमारा व्यवहार क्या पाप से घृणा करने वाला होता है? हम पाप से घृणा करते हैं या पापी से घृणा करने लग जाते हैं? यदि भगवान् महावीर के चारित्र को उठाकर देखें तो अर्जुनमाली कैसी स्थिति में भगवान् के पास पहुंचा? उसके कितने निंदनीय कार्य थे? हमारी दृष्टि में

तो महापापी, घोर पाप करने वाला अधर्मी है। पता नहीं उसके लिए कैसे-कैसे शब्द प्रयोग करेंगे? महावीर के पास पहुंचा तो भगवान् ने दीक्षा दे दी। भगवान् ने दीक्षा दे दी, यह गहरे विचार की बात है। यह सामान्य बात नहीं है। व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन हो सकता है। हो सकता है या नहीं हो सकता है? (प्रत्युत्तर– हो सकता है) लोहा, सोना बन सकता है या नहीं? (प्रत्युत्तर– बन सकता है) कैसे बनाएंगे, बताओ? (प्रत्युत्तर– पारस पत्थर से) कहां मिलता है? यहां मिलता है जोधपुर में? जोधपुर में पारस पत्थर है क्या? अगर वह पत्थर मिल गया तो ये टेंट के खंभे सुरक्षित रहने मुश्किल हैं। लोहा भी सोना बन सकता है। जहर भी अमृत बन सकता है। पारा, मर्करी होती है ना, वह जहर है। यदि वह आदमी के शरीर में चला जाए तो शरीर फाड़कर निकल जाए ऐसा सुना गया है। किंतु चिकित्सीय परिशोधन होने पर वह अमृत का काम करने वाला हो जाता है। मकरध्वज आयुर्वेद की महत्त्वपूर्ण औषधि है जिस पर वैद्यों को बड़ा गर्व है। यह औषधि दे दी जाए तो मृत्यु के मुख में गए हुए को भी एक बार जीवन देने वाली होती है ऐसा वैद्य मानते हैं। उसका जो मूल घटक है वह पारद है। वह अमृत बन गया। किंतु कब? जब उस पारे को शोध लिया गया। उसका परिशोधन कर लेने पर उसके भीतर का जहरीला भाग समाप्त हो गया और उसमें वह अमृत पैदा हो गया जिससे बहुत-सी बीमारियों में उसका उपयोग होने लगा। किसी भी चीज को बदला जा सकता है। जैसे चीज बदली जा सकती है वैसे ही इनसान को भी बदला जा सकता है। किंतु परिवर्तन की चाह व्यक्ति के भीतर होनी जरूरी है। उमंग उसके भीतर होनी जरूरी है। हम देख रहे हैं कि अर्जुनमाली बदल गया। वह एकदम बदल गया। हम यहां दो रूप उसके देखें, एक तो वह रूप जिस समय छः पुरुष अर्जुन को बांधकर उसकी पत्नी के साथ कुकृत्य कर रहे थे। उस समय उसको कितनी उत्तेजना आ रही थी और दूसरा रूप जब वह साधु बना, तब लोगों ने उसके साथ गाली-गलौच किया उसे उत्तेजित किया किंतु उसको कोई फर्क नहीं पड़ा। कई लोग यहां तक कहते हैं कि 'सौ-सौ चूहे खाकर बिल्ली हज करने के लिए जा रही है' वाह! भाई, वाह! ये बहुत अच्छी साधु की पोशाक पहनी है। इससे तुम्हारे सारे पाप धुल जाएंगे, बेटा! मेरे शब्द अलग हो सकते हैं किंतु भाव वही है। लगभग इन्हीं भावों के आधार पर, इसी प्रकार की कई बातें अर्जुनमाली को सुनाई जा रही थी पर अब उसमें क्रोध का उफान नहीं। उसे उत्तेजना नहीं आ रही

है। गजब हो गया। क्या है भगवान् महावीर के पास कि एक घूंट पिलाया और उससे इतना बदलाव आ गया। अभी आपको बताया गया कि दूध से दही बनाने के लिए जावण डाल दिया जाता है और वह जावण दूध को बदलकर दही बना देता है। यही भगवान् की वाणी में है जो हमें दूध से दही में बदल देती है। यह हमारे भीतर के अमंगल को समाप्त करके हमें मांगलिक बना देती है।

कल तीन मुमुक्षु-बहिनों ने दीक्षा ली। दीक्षा लेने के पहले कौन उनको नमस्कार कर रहा था? और करेमि भंते का पाठ होने के बाद कई लोगों ने किए होंगे वंदन-नमस्कार। क्या बदल गया? बहुत कुछ बदल गया। (जोर देते हुए) बहुत कुछ बदल गया। हमने बदलाव पहले नहीं देखा। हमें ये बदलाव पहले नहीं लगा था। बहुत बार हमें जल्दी में बदलाव मालूम नहीं पड़ता है। हमारी हाइट कितनी थी और अब वह कितनी बढ़ गई? बहुत दिनों के बाद एक दिन लगता है मेरी हाइट इतनी बढ़ गई। जब हमने माता की कोख से जन्म लिया तब हमारी लंबाई कितनी थी? क्या हमारे पास ये माप है कि कौन-सी तारीख को, कौन-से महीने जनवरी, फरवरी में मेरी हाइट कितनी बढ़ी। है कोई रिकार्ड, आपने कुछ अनुभव किया। 2-4 साल या 5-6 साल में लगा कि मैं इतना लंबा हो गया। जो बदलाव आता है कभी मालूम पड़ जाता है और कभी मालूम नहीं पड़ता है। उन महासती जी ने संयमी चर्या में अपने आपको लगा दिया। साध्वी तो थी ही, किंतु संयोग वियोग में बदल गए। संयोगों का वियोग में बदलना हाथ की बात नहीं है। मरते हुए को रोका नहीं जा सकता कि रुक जा, तू मेरे साथ चलना ताकि मैं भी संयम की साधना अच्छे से करूंगी। ऐसा नहीं होता है। मरने वाला तो जाएगा। रोका नहीं जा सकता है। गृहस्थ में जाने वाले को तो फिर भी समझाया जा सकता है, किंतु किसी के कर्म योग ही वैसे हो गए, कोई कर्म योग का झोंका ही आ गया तो उसे बचा पाना भी बड़ा मुश्किल होता है। उससे बच पाना भी बड़ा कठिन होता है। कुछ नहीं कह सकते हैं। कितने साल दीक्षा पाल ली। कोई कहते हैं कि 20 साल/22 साल दीक्षा पाल ली। दीक्षा 20 साल पाल ली तो बहुत अच्छी बात है। किंतु जब झोंका आया तो वह इतना प्रबल था जैसे हम बोलते हैं ना अमुक समय अमुक तूफान आ गया, अमुक समय भी अमुक तूफान आ गया। ये तूफान आते हैं। जैसे कुछ समय पहले सुनामी तूफान आया था। तूफान बड़े-बड़े पेड़ों को उखाड़ देते हैं। उखाड़ देते हैं या

नहीं उखाड़ देते हैं? कोई कहे इतना बड़ा पेड़ था कैसे उखड़ा? कोई छोटा-सा पौधा थोड़ी न था जो हवा में उड़ जाता! यह बात है मोह-कर्म की। उसकी आंधी कभी इतनी प्रबल हो जाती है कि उस प्रबलता के कारण वह उस आंधी में अपने पैरों को टिकाए रखने में समर्थ नहीं हो पाता और अघटित-घटित हो जाता है। हम क्यों दूर जाएं, भगवान् महावीर का ही शिष्य और पूर्व के रिश्ते में एक रिश्ता है भाणेज का और एक है जंवाई का। जमाली वर्षों तक भगवान् महावीर के पास संयम की आराधना करता रहा और एक ऐसा निमित्त बना कि विचार उलट गए। गृहस्थ नहीं बना किंतु भगवान् से विमुख हो गया। कर्मों की गति विचित्र है–

कर्मों के खेल निराले हैं, ऋषि मुनि भी इनसे हारे हैं

हम आ जाते हैं दशवैकालिक सूत्र/उत्तराध्ययन सूत्र पर। रथनेमि चरम शरीरी थे किंतु हवा के झोंके ने उनको विचलित कर दिया। मोह की हवा के झोंके ने एक बार उनको भी विचलित कर दिया। यह बात अलग है कि वे संभल गये। इसलिए भगवान् ने कहा साधु को बहुत सावधान रहना चाहिए। हर वक्त सजग रहना चाहिए। एक-एक क्षण उसको बड़ी सावधानी से गुजारना चाहिए। एक पांव फिसला नहीं कि वह कितने गहरे गर्त में चला जाएगा पता नहीं पड़ेगा। इसलिए सावधानी की बात बताई है। वे महासती जी भी दृढ़ रहीं, वियोग होने के बाद भी आत्महित के लिए सोचा कि कहीं संयोग मिल जाए। जिसमें ऐसी आंतरिक अपेक्षा होती है, स्वयं की वैसी तमन्ना होती है तो कोई-न-कोई रास्ता मिल जाता है।

आचार्य देव ने उनकी भावनाओं को समझा और संयम में उनको सहयोग दिया। न केवल उन्हें बल्कि और कइयों को संयम पथ पर आरूढ़ किया और संयम में सहयोग भी दिया। आचार्य प्रवर की ऐसी वृत्ति रही कि लंबी उम्र में भी किन्हीं की दीक्षा लेने की भावना बनी तो आचार्य देव के पास जो भी सेवा भावी संत रहे उन्होंने संयम में सहयोग दिया।

संयम पथ पर बढ़ने वाले को रोकने के लिए कई तैयार हो जाते हैं लेकिन वही यदि रुक जाये, बाद में यदि उसकी बिगड़ जाये तो उसका साथ देने वाले कौन होंगे? सही पूछें तो कौन किसके साथ है इस जगत् में? जीते जी के सारे साथी हैं। कोई खिलाने वाला हो तो उसके मित्रों की पार्टी बहुत ज्यादा हो जाएगी। किंतु कठिनाई के क्षणों में कितने मित्र होते हैं जो सहयोग

देने वाले बनेंगे? हवा फैल जाए बाजार में कि अमुक पार्टी अस्थिर है। क्या है? (प्रत्युत्तर– अस्थिर है) मतलब कि वह कब हाथ खड़े कर दे, कोई पता नहीं है। मदनलाल जी से कहें कि मुझे दो करोड़ रुपयों की जरूरत है, हालत खराब हो रही है। अब क्या करेंगे? अस्थिर को स्थिर करेंगे या फिर कहेंगे कि भाई, अभी तो मंदी का बाजार है मेरे पास भी पैसे नहीं हैं। कितने क्या बदलेंगे बताओ? पहले बहुत से पैसे हमने उस पार्टी को दिए हैं किंतु अब जान रहे हो कि भरोसा नहीं है कि वापस आ पाएंगे या नहीं, फिर क्या करेंगे?

डूबती नाव में कौन बैठना चाहेगा। लगता है नाव डूब रही है। डूब रही हो ऐसी नाव में कौन बैठेगा? वैसे ही डूबते हुए को सहारा देकर कौन उबारेगा। उसको बचाना कोई नहीं चाहता बल्कि पहले से हमारे पैसे दिए हुए होंगे तो कहेंगे कि भाई निकाल दे। जो करना है कर। जो भी इधर-उधर करना है, हिसाब-किताब करना है वह कर। लेकिन मेरे पैसे निपटा दे। वह कठिनाई में है या कठिनाई में नहीं भी है किंतु मेरा पैसा डूब नहीं जाए। आदमी डूबे तो भले ही डूबे किंतु पैसे नहीं डूबने चाहिए। वह भले ही मेरा कितना ही घनिष्ठ मित्र रहा होगा किंतु मित्र के पीछे अपने पैसे डुबो दूं क्या? भाई के पीछे अपने पैसे डुबो दूं क्या? भाई बड़ा है या पैसा? मित्र बड़ा है या पैसे बड़े हैं?

पइसो प्यारो रे,
दुनिया ने लागे मोहनगारो रे...।

किसी के पास पैसा है उसको तो कहते हैं कि पधारो-सा, पधारो-सा। बाहर से पधार रहा है तो उसको द्वार तक लेने जाते हैं और फिर यहां तक लेकर आ जाएंगे। ऐसे किसी के आने की जानकारी मिल जाए तो गुलाब जी व्याख्यान में बैठेंगे या नहीं? सामने लेने जाएंगे? आने वाले तो बहुत सारे हैं, आएंगे। किंतु किसको लाने जाएंगे?

माया से माया मिले, कर-कर लंबे हाथ,
तुलसी हाय गरीब की, कोई न पूछे बात।

पैसे वाला हो तो पूछते हैं कि 'कांई सा भोजन करियो आप' किसको पूछते हैं ऐसा? पैसे वालों को। देखते हैं कि चेहरा और कपड़े झकाझक हैं। कपड़े के नीचे भले ही कैंसर की बीमारी है तो पता नहीं। हम किसको देख रहे हैं? कपड़ों को देख रहे हैं या कपड़ों के अंदर कैंसर की बीमारी को देख रहे हैं? अंदर कैंसर की बीमारी है, उसको कौन देखता है? अरे! हम तो अच्छाई को,

गुण को देखते हैं दोष को क्यों देखें। बीमारी के दोष को क्यों देखें? अच्छाई को, गुण को देखें। कैंसर की बीमारी क्यों देखें? अच्छाई देखेंगे किंतु हमारी दृष्टि क्या अच्छाई देख रही है? देख तो रही है– ऐसे बड़े व्यक्ति का साथ हो जाएगा तो मेरा काम निकल सकता है! यहां भी स्वार्थ है। कहीं-न-कहीं उसके पीछे स्वार्थ का भाव है। एक राजनेता से नजदीकी किसलिए? मौके पर काम आए। हर समय काम नहीं आता कभी-कभी काम आता है। किंतु किसी समय काम पड़ गया तो काम आएगा। राजी रखा है तो ठीक रहेगा। ये सब बातें अपने स्वार्थ के कारण करते हैं।

हमने स्वार्थ-दम्भ के बहुत सारे खेल देखे हैं। उनसे शान्ति नहीं संक्लेश ही पैदा हो सकता है। अतः हम अपने आप में चिंतन करें कि हम संक्लेशित क्यों बन रहे हैं। हमारे भीतर संक्लेश किस रूप में क्या असर कर रहे हैं और हम अपने संक्लेशों को कैसे दूर कर सकते हैं। इस पर हम विचार करें और हमारे द्वारा किसी को भी संक्लेश नहीं हो ऐसा लक्ष्य बनाएंगे। साथ ही हम स्वयं भी संक्लेशित न हों, ऐसा प्रयत्न हमारे लिए लाभदायी होगा। हमें उसी ओर चरण विन्यास करना चाहिए।

21 अगस्त, 2019

4

पंचाक्षरी मंत्र

एक छोटा-सा सूत्र है 'अज्झत्थं पस्स' इसमें सारे अक्षर कितने हुए? 'अ+ज्झ+त्थं+प+स्स' पांच अक्षर हैं। इसका अर्थ है– अपने आपको देखो। एक, दर्पण में देखा जाता है और एक स्वयं से स्वयं को देखा जाता है। कैसे भी देखो, किंतु अपने आप को देखो। आज को देखो या बीते काल को देखो। दो तरीके हैं देखने के। एक शुरुआत से देखना हो सकता है और एक पीछे से देखना हो सकता है। यदि कोई शुरुआत से देखने में समर्थ नहीं है तो पीछे से देखना चालू करे।

मेघ कुमार, मुनि बन गए किंतु चित्त में विक्षेप पैदा हो गया और विचार कर लिया कि सुबह-सूर्योदय होते ही भगवान् के पास जाऊंगा और जो भी उपकरण-पात्र हैं भगवान् के पास रखकर हाथ जोड़ दूंगा। वह चले भी गए। भगवान् ने कहा, मेघ! पीछे देख...। पीछे देख। मेघ कुमार ने कहा कि भगवान्! पीछे देखने में ही तो सारा झमेला है। जब पीछे देखता हूं तो दिखता है कि मैं राजकुमार था– नौकर-चाकर, दास-दासी हाथ जोड़े खड़े रहते थे। पत्नियां नाथ-नाथ कहती रहती थीं। एक चीज मांगो तो चार चीजें तैयार थीं। पीछे देखता हूं और आज की तुलना करता हूं तो लगता है कि मुनि जीवन बेस्वाद है। इसमें कोई स्वाद नहीं है। भगवान् ने कहा, मेघ कुमार! और पीछे, और पीछे, और पीछे देखो।

हम भी अपने जीवन की समीक्षा करें। देखें कि हमारे सिर पर पहला सफेद बाल कब आया था और कितने समय के बाद, कब सारे बाल सफेद हो गए। कोई दिनांक है ध्यान में? बहुत-सी बातें हम याद रखते हैं। उसने कब, क्या, कौन-सी बात कही वो याद है! किंतु मेरे में परिणमन, परिवर्तन कब हुए वह मुझे याद नहीं है। दूसरों की बात याद रखनी है। अपनी बात

नहीं। मैं अपने वर्तमान को देखूं, आज के क्षण को देखूं, बीते कल को देखूं। देखते हुए चले जाओ, एक दिन पीछे, उससे एक दिन पीछे... चले जाओ। जाते रहो, जाते रहो। देखते रहो, देखते रहो। क्या नजर आता है?

ध्यान में लो, नाना गुरु के समीक्षण ध्यान की जो बात है उसका ही रूप है। उसका एक पार्ट हम देखते हैं। अब तक हमने बुढ़ापे को देखा है, अब हम जवानी में चले जाएं। उस समय की स्मृतियां थोड़ी ताजी होने लगी। क्या! उस समय जोश था। दीवारें फांद लेते थे। ऊंची-ऊंची छलांग लगा लेते थे और अब एक पैर से दूसरा पैरा भी आगे बढ़ाना है तो विचार करना पड़ता है। समीक्षा करनी पड़ती है। 'अज्झत्थं पस्स' स्वयं को देख। और पीछे और पीछे जाते रहो। जाते रहो तो किशोरावस्था दीखेगी। उस समय का एक अलग ही रूप हम देखेंगे। उसके पीछे बचपन फिर शिशु अवस्था। देखो, देखते जाओ। देखते जाओ।

अब हम जन्म होने की प्रक्रिया को देख रहे हैं। माता की कुक्षि से हमने कैसे जन्म लिया? इसके आगे की बात देखें कि माता के गर्भ में मैं किस प्रकार रह रहा था। आज बड़ा बंगला भी छोटा पड़ रहा है, उस समय मुझे कितनी जगह मिली थी? उस अवस्था को देखो, जब ये घुटने-ये पांव सीने से लगाकर मानो पवनमुक्तासन किया जा रहा हो। एक छोटी-सी जगह, काल-कोठरी में हम अपना समय व्यतीत कर रहे थे और उसके पहले देखें तो आंख, कान, नाक बने नहीं थे। केवल लाइनें थी। नसें थीं। लगता नहीं था कि कोई शरीर है। केवल लकीरें खींची हुई थोड़ी-थोड़ी नजर आ रही थी। और थोड़ा पीछे जाएं तो केवल अर्बुद मांसपेशियां ही थीं। इसके अलावा कुछ भी नहीं था। और थोड़ा पीछे खिसकें तो केवल कलल-भ्रूण अवस्था में थे। जैसे एक अंडे में होता है। कभी ऊपर से नीचे गिर कर फूट जाता है तो उसमें से जैसा तरल पदार्थ निकलता है, उस अवस्था में हम रहे हैं।

'अज्झत्थं पस्स' स्वयं को देखें। अनुभव करें कि कैसे कलल से यहां तक की हमारी यात्रा हुई है। पिता का वीर्य और माता के रज की मिली हुई अवस्था कलल है। और थोड़ा पीछे खिसकेंगे तो मैं बाहर से आ रहा हूं। माता के गर्भ में प्रवेश कर रहा हूं। जन्म लेते ही वहां पर मेरे स्वागत में, चाय-नाश्ते में खाने के लिए, आहार के लिए क्या दिया जा रहा है? वहां पहुंचते

ही ओज-आहार किया और यह प्रक्रिया चालू हुई। उससे और पीछे देख रहा हूं कि मैं दूसरी जगह से आ रहा हूं। तो कहां से आ रहा हूं? और उसके पीछे देखेंगे कि मेरी चिता जलाई जा रही है और मैं जिस शरीर में था उस शरीर को छोड़कर आगे बढ़ा हूं। और पीछे चलें तो फिर एक-एक करके पिछले जन्म नजर आते रहेंगे। इस प्रकार चलते-चलते हम गहरे उतरते जाएं, शोध करते जाएं कि मैं कौन हूं? माता के गर्भ में जन्म लिया, उस समय कलल रूप में मेरा अस्तित्व था भ्रूण के रूप में। नसों के रूप में अस्तित्व था। फिर जैसे-जैसे विकास यात्रा बढ़ी आज इस शरीर के रूप में पहचान हो रही है। किंतु एक समय इस शरीर की क्या पहचान हो रही थी?

राखी पूनम के दिन की घटना होगी जहां तक मुझे स्मृति में है। नंदुरवार से बस चालू हुई और शहादा के निकट कहीं दुर्घटनाग्रस्त हो गई। लगभग 10 या 12 लोग मारे गए। आठ तो शायद शहादा के रहे होंगे। एक युवक की शादी फाइनल होने वाली थी। पहले एक बार देख चुके थे, इस बार शायद फाइनल होने वाली थी। वधू पक्ष के लोग आने वाले थे, उसकी बहिन रही हुई होगी धूलिया में। बहिन से राखी बंधवायी और एक बहिन कोई महासती जी रही होंगी नंदुरवार में तो उनके दर्शन करके लौट रहा था। जो कुछ भी विचार कर गया होगा पर बीच में एक्सीडेंट हो गया। हॉस्पिटल में लाशें पड़ी हैं। परिवार वाले आए, देखा। किंतु कहीं कोई पहचान नहीं हो पा रही है कि कौन है मेरा बेटा? धूलिया वाली अपनी लड़की को फोन किया जिसके वहां राखी बंधाने के लिए गया था। और पूछा कि जिस समय घर से निकला उस समय कपड़े कैसे पहने हुए थे? उसने कपड़े का रंग बताया, डिजाइन बताई। जानकारी करने के बाद वापस जाकर देखा तो पुत्र की लाश चिथड़े-चिथड़े हो चुकी थी। क्या पहचान रह गई। समझो और थोड़ी देर विचार करो। हम क्या देख रहे हैं और किस प्रकार लड़ाई और झगड़े कर रहे हैं? किस समय ये प्राण उड़ जाएं और हमारी कहानी अधूरी रह जाए! कुछ पता नहीं है।

मैं बता रहा था कि कलल में अपने अस्तित्व को खोजो कि मेरा रूप क्या था। मेरी पहचान क्या थी? एक कहानी, ऐसी बताई जाती है कि बीरबल ने अपनी माता का उपकार मानते हुए कहा कि माँ! तुम मुझे राजा बनाना चाह रही थी। तुमने प्रयत्न किए होंगे परन्तु मैं राजा नहीं बन पाया। किंतु तुम्हारे प्रयत्न रहे मैं प्रधान बन गया। दीवान बन गया। तुम्हारा बहुत बड़ा उपकार है। माँ मैं चाहता हूं कि मेरी चमड़ी उतारकर उसके जूते बनाकर तुम्हें

पहनाऊं। कहते हैं कि माँ ने सुना और मुसकुराते हुए कहा कि बेटा, ये चमड़ी भी तो मेरे ही शरीर से बनी है। तो तुमने अपना क्या दिया? तुम मेरा उपकार मान रहे हो और अपनी तरफ से कुछ देने जा रहे हो तो क्या दिया? अपनी पहचान करो। उस कलल में ढूंढ़ो अपने आप को, उस अर्बुद में ढूंढ़ो जहां केवल मांसपेशियां बनी है। कोई आकार-प्रकार नहीं है। शरीर का कोई रंग नहीं है। काला है या गोरा कुछ भी मालूम नहीं पड़ रहा है। हालांकि उसमें यह सब मौजूद है। जो आज है वह मौजूद था। पर आज हम अपने आपको किस रूप में देख रहे हैं? यह एक जन्म की कहानी नहीं, जन्मों-जन्मों से ऐसा ही रूप बनता आ रहा है। और पता नहीं किन-किन जन्मों में कैसे-कैसे रूप बनाए? पृथ्वीकाय, अप्काय कितनी काया का भोग किया? एक जन्म की भी गिनती लगाना हमारे लिए कठिन है तो पिछले सारे जन्मों को देखना, अनुभव करना बहुत कठिन काम होगा। किंतु यदि व्यक्ति धार ले तो वह जान सकता है। 'संकल्प हमारा मजबूत हो तो सफलता हमसे कोई छीन सकता है क्या? संकल्प हमारा मजबूत होगा तो निश्चित है कि सफलता मिलेगी।' दिमाग में संशय नहीं आना चाहिए। मन में संशय नहीं आना चाहिए। मन में यदि डाउट है कि संकल्प तो कर रहे हैं होगा या नहीं होगा फिर तो 'सौ का हो गया साठ' 100 का 60 हो गया। यदि ऐसा हो गया तो अब वह चीज नहीं रही।

'कार्यं साधयामि' बस कार्य सिद्ध करना है। ऐसा मजबूत संकल्प होता है तो सफलता मिलती है। छत्रपति शिवाजी के गुरुजी का नाम क्या था? आप कहोगे कि हम तो राजस्थानी हैं हमें कैसे मालूम? जे पी एंड कंपनी, व्यवस्था में लगे रह गए। जयप्रकाश जी!* छत्रपति शिवाजी के गुरुजी का नाम क्या था? आप महाराष्ट्र के हो। (प्रत्युत्तर– आप कृपा करावें) तो आप क्या करोगे? उनके गुरु का नाम था– समर्थ गुरु स्वामी रामदास जी। उन्होंने शिवाजी की बड़ी कठिन परीक्षा लेने का विचार किया। जैसा कि बताया गया उन्होंने एक दिन स्वयं को ऐसा प्रस्तुत किया कि पेट में बहुत दर्द है। बहुत तड़प रहे हैं। बिलख रहे हैं। छत्रपति शिवाजी आए चरण वंदन के लिए और हालत देखी तो कहा, कि गुरुदेव! क्या हो गया? गुरुजी बोले, शिवा! बस अब तो मृत्यु ही नजर आ रही है। शिवाजी बोले, गुरुदेव! ऐसा नहीं हो सकता। कोई भी औषधि आपके ध्यान में हो तो बताओ। यह शिवा कहीं

* जयप्रकाश कोटड़िया, नंदुरबार

से भी ले आएगा। कहा, वत्स! यदि सिंहनी का दूध मिले तो यह बीमारी ठीक हो सकती है। शिवाजी बोले, कि क्या नहीं मिलेगा। मुझ पर आपका आशीर्वाद है। यह तो इसी मर्त्यलोक की बात रही यदि स्वर्गलोक से भी कुछ लाना होता तो मैं पीछे नहीं हटता। वो चले गए और सिंहनी का दूध लेकर आ गए। ऐसा कोई है उदाहरण दूसरा? यह कि कोई सिंहनी का दूध लेकर आ पाया हो। कहते हैं वे गये जिस गुफा में, मांद में सिंहनी बच्चों को दूध पिला रही थी। उन्होंने जाकर बड़े विनम्र भाव से निवेदन किया और सिंहनी ने अपनी टांगें चौड़ी कर दी और उन्होंने दूध दुहा और लेकर आए। हम इसको कल्पना मानें या कपोल-कल्पित मानें। हमारी मरजी के अनुसार कुछ भी मानें किंतु घटना यही बताई गई है।

ऐसा हुआ है। और हुआ है तो यह बताया जा रहा है। सिद्ध किया जा रहा है कि आदमी संकल्पित-सुदृढ़ हो जाए, साहसी-हिम्मती हो जाए तो ऐसा कौन-सा कार्य है जो वह नहीं कर सकता। बात यही है कि हम अपनी हिम्मत को जगा नहीं पाते हैं। हम अपने वीर्य को, अपने शौर्य को जगा नहीं पा रहे हैं कि मैं क्या कर सकता हूं। आप कहते हो कि बाप जी! बुढ़ापा आ गया। उसके आगे कल यह मत कह देना कि नया जन्म लेने जा रहा हूं। कहो चाहे मत कहो, होना तो वही है। जो होना है, उसको कौन रोकने वाला है? ये जन्म-मृत्यु पानी के बहाव हैं। एक लाइन में बहते जा रहे हैं। नदी का पानी बहता जा रहा है और कितनी लाशें बह रही हैं? जीवन का कोई ठिकाना नहीं है। पता नहीं है कि शोध करते-करते कहां चला जाए। कोई ठिकाना नहीं है। एक जगह की बात किसी ने बताई कि एक्सीडेंट हो गया। लाशें बह गईं। पांच लोग उन लाशों को ढूंढ़ने के लिए गए तो वे पांचों पानी में डूब गए। लाशें ढूंढ़ने गए, वे लाशें तो नहीं मिली स्वयं भी प्रवाह में बह गए। जैसे पानी में वे लाशें बहती हुई चली जा रही हम भी प्रायः उसी तरह से जीते हुए चले जा रहे हैं। क्या है हमारे जीवन में उद्यम? क्या हमारा पुरुषार्थ है? वैसे तो संसार में आदमी पचासों काम कर रहा होगा, किंतु 'अज्झत्थं पस्स' यानी आत्मा को देखने के लिए हम क्या पुरुषार्थ, क्या प्रयत्न कर रहे हैं? कौन-सा दर्पण, कौन-सी ऐनक और कौन-सी मशीन है जिसके माध्यम से हम अपने आप को देखने का प्रयत्न कर रहे हैं? और अभी तक क्या जाना, कितना जाना? क्या जवाब होगा आपका!

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है कि तू बोले तो आकाश से तारे तोड़कर ला सकता हूं। वह ला पाएगा या नहीं ला पाएगा, किंतु आदमी गहरा विचार कर ले और अपने कार्य के प्रति उसको कहीं से कहीं तक संशय या डाउट नहीं हो तो सफलता के लिए कहीं भी रुकावट पैदा नहीं हो सकती। कोई उसे रोक नहीं सकता। कोई व्यवधान खड़ा कर नहीं सकता। वह जरूर मंजिल पाएगा। क्यों नहीं पाएगा? जिसके भीतर इतनी जीवटता है वह व्यक्ति कैसे नहीं सफल होगा। वह यदि सफल नहीं होता है तो दूसरों को तो सफलता की तरफ देखना ही नहीं चाहिए। उनको तो यह समझना चाहिए कि सफलता एक ऐसी वधू है जो घर में तो आ गई है किंतु उसका मुंह खोलकर देखा नहीं जा सकता। उसके दर्शन नहीं हो सकते हैं। उसके चेहरे को नहीं देख सकते। खाली ख्वाब देख सकते हैं किंतु सफलता को कभी हासिल नहीं किया जा सकता है। 'सपने केरी सुंदरी' जैसे सपने की सुंदरी को प्राप्त करना आसान नहीं है, वैसे ही बिना उद्यम के और लाश की तरह पानी के प्रवाह में बहने वाले लोगों के लिए सफलता नामुमकिन है। बहुत कठिन है। मेरे खयाल से उनको आस छोड़ देनी चाहिए। कुछ और सोचना चाहिए और यदि उनको आस है तो फिर पुरुषार्थ को जगाने की आवश्यकता रहेगी।

आचार्य नानेश, स्मृति विशेषांक 'पेज नम्बर तैंतीस' में श्री सोहनलाल जी सिपानी, बेंगलूरु, लिख रहे हैं कि 13 अक्टूबर को उदयपुर में वे आचार्य गुरुदेव के दर्शन करने के लिए उपस्थित हुए। दर्शन किए और कहा, भगवन्! हमारे लिए क्या संदेश है? गुरुदेव उस समय कुछ फरमाते नहीं थे। कभी मूड होता तो फरमा भी देते अन्यथा ज्यादातर अपने आप में रमण होने की बात होती थी। किंतु उन्होंने जैसा लिखा है उस समय आचार्य श्री ने दो बातें कहीं एक तो 'दृढ़ता से साधु जीवन की आराधना होनी चाहिए' और दूसरी बात कही कि 'संघ में समता के साथ एकता का स्वरूप बना रहना चाहिए।' वे लिखते हैं कि मैं निहाल हो गया। ये दो सूत्र या ये दो संदेश केवल मेरे लिए नहीं, बल्कि पूरे चतुर्विध संघ के लिए है। दृढ़ता से साधु जीवन की आराधना, निश्चित ही साधुओं के करने की होती है। किंतु श्रावकों को भी अपने दायित्व के निर्वाह के लिए तत्पर रहना चाहिए। कहीं-न-कहीं कुछ न कुछ संबंध श्रावकों के साथ जुड़ जाते हैं। फिर हमारा लक्ष्य साधु जीवन की सुदृढ़ता रहती है या हमारा स्वार्थ रहता

है? सोचेंगे दीक्षाएं हो रही हैं, पहले से दीक्षित साधु-साध्वी भी हैं, लेने के लिए और भी भाई-बहिन अपनी तैयारी में हैं। हम दीक्षा की अनुमोदना के लिए हजारों की तादाद में उपस्थित हो जाते हैं। जय-जयकार कर लेते हैं किंतु अपनी जवाबदारी का निर्वाह करने के लिए हम कितने जागृत हैं? कितने तैयार, कितने गंभीर हैं?

म.सा. को साता पहुंचाने का लक्ष्य होना चाहिए या म.सा. का संयम शुद्धता से पले उसका लक्ष्य होना चाहिए? आप समझ लेना, म.सा. को साता पहुंचाने का लक्ष्य ज्यादा होता है या म.सा. का संयम शुद्धता से पले, उसका लक्ष्य ज्यादा होता है? हम कौन-से लक्ष्य को लेकर चलते हैं? (जोर देते हुए) कौन-से लक्ष्य को लेकर चल रहे हैं? (सभा से अलग-अलग प्रत्युत्तर) पहले आपस में एक मत हो जाओ। एकमत होंगे नहीं मैं जान रहा हूं। और कितने हैं जो यहां कहेंगे उस पर दृढ़ रहेंगे? क्योंकि ये जुबान...। एक समय श्रावक समझता था कि मेरी जुबान है। कागजों की आवश्यकता नहीं होती थी। किसी प्रकार की लिखा-पढ़ी की आवश्यकता नहीं थी। जुबान है वही लिखा-पढ़ी है। वह लौह की लकीर होती थी और आज...? पानी की लकीर है। कब हवा से सूख जाए और कब किधर से किधर बह जाए कुछ पता नहीं है। इसलिए विचार करने की बात है कि हम कितने जवाबदार हैं साधु जीवन की सुरक्षा के लिए। साधु जीवन की सुदृढ़ता के लिए हमारी कितनी तैयारी है?

दूसरा सूत्र क्या है अध्यक्ष जी! क्या है दूसरा सूत्र? पूछो पड़ोसी से। लिखा है उसे पढ़ लो। अध्यक्ष जी को बड़ी चिंता बनी रहती है। चातुर्मास क्या मिल गया चिंता और बढ़ गई है। 10 चिंताएं पहले रही होंगी एक चिंता और हो गई। अभी तो सवा महीना निकला है। (प्रत्युत्तर– आप फरमावें) मैं तो सुना ही रहा हूं। मैं तो बोला ही हूं। आपने क्या सुना है? और सुना नहीं है तो फिर आगे कैसे बढ़ोगे? हम केवल उपस्थिति दर्ज कराने के लिए हैं क्या? कि नहीं जाएंगे तो अच्छा नहीं लगेगा। बोलो, क्या है दूसरा सूत्र? (प्रत्युत्तर– संघ में एकता रहे) 100 का 60 हो गया तो एकता कैसे रहे? संतरे को देखा है कभी? संतरे को देखा है ना। ऊपर से एक है और छिलका हटाया तो भीतर क्या निकला? सारी फांकें अलग-अलग होंगी। और सेब को देखा है? सेब का छिलका हटाया तो वह पूरा एक ही है। हम सारे एक हैं या 'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' हैं?

'हम एक रहें, सब नेक रहें'

एक रहने की आवश्यकता है। एक रहना तो ठीक है पर नेक भी रहें। अभी किसकी कहानी सुन रहे हो? जंबू कुमार की और प्रभव की। प्रभव के साथ कितने चोर थे? (प्रत्युत्तर– 500) एक इशारे में चल रहे थे या नहीं चल रहे थे? एक इशारे से पांच सौ चोर चल रहे थे। क्या हम एक इशारे पर चलते हैं? चलते हैं या नहीं चलते हम कह नहीं सकते। हम एक इशारे में चलने वाले हैं या दो इशारे में चलने वाले हैं? आवाज तो आ रही है किंतु साफ नहीं है। बोलो? कांई केवां? बोला कांई? चोर की मां घड़े में मुंह डालकर रोयेगी...। एक इशारे में चोर रह सकते हैं, एक इशारे में आतंकवादी रह सकते हैं। आप कहेंगे कि हम आतंकवादी नहीं हैं, हम चोर नहीं हैं तो एक इशारे में क्यों रहेंगे। जो आतंकवादी हैं, जो चोर हैं वे एक इशारे में रहेंगे। हम तो साहूकार हैं हम एक इशारे में क्यों रहेंगे? तो कौन-से इशारे में रहना चाहते हैं? कितने इशारे चाहिए। एक मां का इशारा चाहिए, एक बाप का इशारा। एक बेटे का इशारा। एक पत्नी का इशारा और कितनों का इशारा चाहिए? आपको कहें कल का उपवास करना है। सोचने केंउला। अपने आप सोचकर कहना है तो कहेंगे, कर लूंगा। और नहीं तो फिर, अरे ओ! सुणजो, अरे ओ! सुनो के? कांई डावड़ा, कांई होयो? अरे काले उपवास कर लूं कोई-कोई वो अर्द्धांगिनी होती हैं ना। अर्द्धांगिनी का अर्थ क्या होता है? आधे अंग की भागीदार। उससे जानना तो पड़ेगा ही। एक इशारा वहां से मिलना चाहिए, एक इशारा बेटे का मिलना चाहिए और पता नहीं किन-किन का मिलना चाहिए। पता नहीं कितने इशारे लेंगे! किंतु वे एक इशारे में चलने वाले थे इसलिए कहा कि एकता तो चोरों में भी हो सकती है।

नाना गुरु ने कहा, समतापूर्वक एकता बनी रहे। हम एकता रखें किंतु साथ में नेक रहें। एक रहना कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे चोर एक रह सकते हैं, वैसे ही बाकी दूसरे लोग भी एक रह सकते हैं। वे तो नेक रहें या नहीं रहें लेकिन हम साहूकार हैं। हम समझदार हैं। हम एक रहेंगे और साथ में नेक भी बने रहेंगे। केवल एक ही नहीं हमारे साथ उस एक के साथ दूसरा संबंध जुड़ेगा, 'नेक' नेक किसको कहते हैं? नहीं समझे तो सुना हुआ किस काम का? एक दूसरे के प्रति हम नेक रहें यह सिर्फ सुनने का क्या फायदा? नेक किसको कहते हैं? नेक का अर्थ होता है, नेकीकर, अर्थात् भलाईकर। हम

भले बने रहें, एक बने रहेंगे, नेक बने रहेंगे अर्थात् भले बनकर रहेंगे। बुरे बनकर नहीं रहेंगे। भला किसको कहते हैं और बुरा किसको कहते हैं? यह जान रहे हैं कि भला-बुरा किसको कहते हैं या यह भी समझाना पड़ेगा? मौन रहना सबसे अच्छी बात है। यदि इस बात को भी जान रहे हैं तो माथा खपाना नहीं पड़ेगा। मौन रहना चाहिए। किंतु मौन जहां पर रहना चाहिए वहां पर तो आप मौन रहते ही नहीं हो और जहां मौन नहीं रहना चाहिए वहां पर मौन रहते हो। क्रोध आता है उस समय मौन रहते हो या झट-पट जवाब दे देते हो?

'एक रहें नेक रहें' कब हो सकता है? जब हम अनुशासन में रहेंगे तब हम अपने आपमें नियंत्रित रह पाएंगे। जब नियंत्रण रेखा का उल्लंघन नहीं करेंगे। कहने में कहा जा रहा है कि पीओके का नाम पीओके नहीं रखेंगे। हम नाम बदलकर संघर्ष-विराम नाम देंगे। नाम बदल जाने से क्या होगा? नाम बदलने से चीज नहीं बदल जाएगी। नाम बदलने से शरीर बदल जाएगा क्या? चीज तो वही है। यह बात स्पष्ट है कि अनुशासन होगा और हम नियंत्रित होंगे तो ही भले बने रह सकते हैं। हमने यदि अपना नियंत्रण नहीं रखा। हमने यदि अनुशासन के महत्त्व को नहीं समझा तो कितने भी ऊंचे हो गए कोई मायने नहीं है। यदि एक रहने के साथ नेक रहते तो भारत-पाकिस्तान जैसी स्थितियां ही क्यों बनती?

एक सभा हो रही है। एक सामान्य आदमी को अध्यक्ष पद पर बैठा दिया गया। अब उस सभा का दायित्व क्या है? जो चाहे वह करे या अध्यक्ष के इशारे को समझे? उस समय जिसको अध्यक्ष बनाया गया है सभा का उसके अनुशासन का पालन करना जरूरी होगा। अभी लोकसभा का अध्यक्ष कौन हैं? (सभा– ओम बिड़ला) आप लोग बोल रहे हो ओम बिड़ला। बिड़ला नहीं है, बिरला है। मोदी जी ने उनका नाम चुना, उनको अध्यक्ष के स्थान तक पहुंचाया। उनकी शपथ होने के बाद पीछे से बोले, ये इतने सरल हैं कि कहीं किसी के चक्कर में नहीं आ जाएं। चक्कर शब्द नहीं बोला होगा किंतु भाव यही थे कि ये इतने सरल स्वभाव के हैं कहीं इनकी सरलता का कोई दुरुपयोग नहीं कर ले। यह सीट ऐसी होती है कि आदमी को अक्ल आ जाती है। किसी ने दूसरे या तीसरे दिन संसद में अपनी बात शुरू की और उसने मोदी जी की तारीफ करनी चालू कर दी तो ओम बिरला जी ने कहा कि ये चापलूसी की बातें यहां पर नहीं करें। मुद्दे की बातें ही करें। मोदी जी

ने मुझे यहां पहुंचाया है। यह सीट दिलाई है कुछ नहीं। उन्होंने यह नहीं सोचा कि अगर मोदी जी की तारीफ करते हुए किसी को रोकूंगा तो मोदी जी क्या सोचेंगे? उनकी बात को कैसे काटूं। किंतु मोदी जी क्या समझे? मोदी जी का दिल बाग-बाग हो गया कि आदमी सरल दीख रहा है किंतु अपनी नीति पर अटल है। यह बात हमको भी ध्यान में रखनी चाहिए कि हम जिस स्टेज पर हैं, जिस सीट पर हैं उसमें हमारा क्या दायित्व होता है? हमारा क्या कर्तव्य होता है? केवल अच्छे संघ के सदस्य बन गए या हमने सदस्यता प्राप्त कर ली यही महत्त्वपूर्ण नहीं है। जिस संघ के सदस्य बने उस संघ के प्रति अपनी जवाबदारी व अपने दायित्व को भी ध्यान में लेना होगा। हम केवल निगेटिव भाव को, विचारों को लेकर न चलें कि उसमें ऐसा है उसमें वैसा है। उसमें ये है उसमें वो है। यह सब तो ठीक है। किंतु तू कैसा है यह तो बता। सही है या कैसा है?

अभी हमने अपनी कहानी सुनी है कि हमारा उद्भव कैसे हुआ? यहां तक कैसे पहुंचे? आगे क्या परिस्थितियां बनेंगी और आगे हम क्या बनने वाले हैं? आगे की कहानी किस प्रकार लिखी जाएगी? इन बातों पर विचार कर लेना। दुनिया में सब तरह के लोग होंगे, 'आप उस दिन अच्छे माने जाएंगे जिस दिन आपको दुनिया में कोई बुरा नजर नहीं आएगा। जिस दिन देखेंगे कि आपकी आंखों में वह बुरा है, संसार बुरा है तो इसका मतलब यह हुआ कि बुराई स्वयं की है। जिस दिन दुनिया में कोई आदमी बुरा नजर नहीं आवे, लालटेन और गैस लाइट लेकर पूरी दुनिया में घूमो और ढूंढ़ लो और आपको एक भी आदमी में बुराई नजर नहीं आवे तो समझो कि आप अच्छे बन गए हो।' कौन-कौन हैं? आप और हमारे में से अच्छे कौन हैं? किस-किस का नाम लिखूं? अच्छे-अच्छे में कौन हैं? उसका नाम लिखूं। पेन लेता हूं। अब बोलो, कौन अच्छा है? बुरा-बुरा सबको कहे, बुरा न दिखे कोय...। जिस दिन बुराई दिखना बंद हो जाए उस दिन मेरे से अच्छा कोई नहीं मिलेगा। अब बताओ कि अच्छाई में नाम लिखाने वाले कौन हैं? सब एक-दूसरे को देख रहे हैं। किसको देखने से पता चलेगा कि बुरा कौन है? कपड़े के नीचे सब वैसे ही मिलेंगे। तुम कपड़े को मत देखो। केवल शब्दों को तुम मत देखो उसकी भावना पर दृष्टि पहुंचाओ। देखो, उसमें अच्छाई क्या है? हो सकता है उसमें गलतियां रही होंगी। गलतियां करने वाले करेंगे किंतु कोई न कोई अच्छाई भी तो हो सकती है तो गलतियों को क्यों देखना?

मक्खी की तरह घाव को ही क्यों देखा? इतना बढ़िया शरीर है और तुम्हारी निगाहें कहां जा रही हैं? बहुत हो गया, महाराज! कितना सुनाओगे हमको। चलो नहीं सुनाता हूं। जम्बू कुमार को ले आता हूं।

जंबू कुमार के चारित्र पर यदि दृष्टिपात करें तो वहां प्रभव अंतर भावों से अपनी बुराई का अनुभव करता हुआ नजर आयेगा। वह कह रहा है जिस प्रकार किसी का सिर पहाड़ के नीचे आ जाये, उस समय पहाड़ का जैसे बोझ मालूम पड़ता है उसी प्रकार का बोझ मैं अपने पापों का अनुभव कर रहा हूं। वह जम्बू से कहता है इस पाप के बोझ से छुटकारा कैसे मिल सकता है यह आप ही बता सकते हो। आप बताओ मुझे। जंबू कुमार कहते हैं कि यदि तुम दीक्षा ग्रहण करना चाहते हो, अपना कल्याण करना चाहते हो तो कल्याण का मार्ग यह दीक्षा ही है। पश्चात्ताप करना ही है। प्रभव कहता है कि जब मैं पीछे के जीवन को देखता हूं, मैं अपनी दृष्टि पीछे के जीवन पर लगाता हूं तो मेरा हृदय कांपने लगता है कि मैंने क्या-क्या नहीं किया? जंबू कुमार कहता है कि भाई, घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। कल्याण पथ, वह एक ऐसा पथ है जिस पर कोई बढ़ेगा वो अपना कल्याण ही करेगा। कल्याण मित्र/धर्म मित्र अर्थात् जिसने धर्म को मित्र बना लिया। कल्याण को मित्र बना लिया फिर उसे घबराने की आवश्यकता नहीं है। यह सही है कि दीक्षा का मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। किंतु वह इतना आसान भी नहीं है, सरल भी नहीं है कि ले लड्डू और मुंह में डाला और नीचे उतर गया। यह बीकानेरी रसगुल्ला नहीं है और जयपुरी कलाकन्द नहीं है जो मुंह में रखो और नीचे चली जाएगी। जीभ पर रखते ही झट से नीचे उतर जाए और चबाने की भी जरूरत नहीं पड़े।

लोहे के चने चबाना, फिर भी आसान हो सकता है किंतु साधु जीवन की पालना बहुत कठिन है। दीक्षा लेना तो आसान है, साधु जीवन लेना बहुत आसान है किंतु पालन करना बड़ा दुरूह है। जोश-जोश में मासखमण कर लिया किंतु पारणा करना कितना कठिन है?

'पारणो घणो, कठिन है रे, पारणो घणो कठिन है रे...'
'अन्न खाय मन वश में रखणो घणो कठिन है रे।'

पारणे की बात आते ही मुंह खुल जाता है। आज थोड़ो पापड़ ले लूं, मुंह फीको-फीको लागे। थोड़ी गोली ले लूं, थोड़ो नीबू रो टुकड़ो ले लूं। अरे! 30 दिन मुंह बंद रख लिया तो और 3 दिन और रख ले। पहले 30 दिन मुंह

खोला नहीं और अब 3 दिन भारी पड़ रहे हैं! पहले के 30 दिन भारी हैं या बाद के 3 दिन भारी हैं?

जम्बू कुमार कहते हैं दीक्षा लेना आसान है किंतु पालन करना बहुत कठिन है।

वह कहता है आप दीक्षा ले रहे हो! इतना आपका कोमल शरीर, आज तक आपने कभी भी कष्ट को सहा नहीं है। कष्ट क्या होता है आपकी डिक्शनरी में, आपकी जिंदगी में वो नाम ही नहीं है। नामोनिशान नहीं है। आप इस कंटकाकीर्ण पथ पर अग्रसर होने जा रहे हो। अग्रसर होने का विचार कर रहे हो तो मेरे लिए क्या कठिन है। मेरे लिए पहाड़, जंगल कुछ नहीं है। मैं तो पहाड़, जंगलों में वैसे ही विचरण किया हुआ हूं। जंबू कुमार ने कहा– अच्छी बात है। इन कांटों-पत्थरों पर चलना फिर भी आसान है। किंतु भीतर के कांटे इतने तीक्ष्ण हैं कि उनसे निजात नहीं पाओगे तो साधु जीवन की आराधना सम्यक् नहीं हो पाएगी। इन कांटों को निकालना जरूरी होगा। वह कहता है कि मैं इसके लिए तैयार हूं।

नीतिकार कहते हैं 'जे कम्भे सूरा, ते धम्मे सूरा' अर्थात् जो कर्म करने में दृढ़ होता है, झटका लगने के बाद धर्म में भी वह उतना ही दृढ़ हो जाता है। यह दुधारी तलवार के समान है। उसका दुरुपयोग करें तो अकल्याण का कारण बन जाए और सदुपयोग करें तो कल्याण ही कल्याण होने वाला है। प्रभव कहता है–कुमार! अब तक तो मैंने शक्ति का दुरुपयोग ही किया है! किंतु तुम्हारा संसर्ग होने के बाद अब इस शक्ति का मैं दुरुपयोग नहीं करना चाहता।

बंधुओ! हमें भी तीर्थंकर देवों की वाणी को सुनना है। वह हमें पाप से मुक्त कराने वाली है। पाप की गांठों को नीचे उतारकर मुक्ति दिलाने वाली है। हम विचार करें। हमें ऐसा अवसर मिला है, सौभाग्य मिला है और हम मां के गर्भ की, कलल की, भ्रूण की वही कहानी लिखते रहेंगे। लाश की तरह बहते रहेंगे तो जीवन में करने योग्य कोई कार्य करने में समर्थ नहीं होंगे। हम अपने आपमें चिंतन करें। अपने भीतर सोई हुई शक्ति को जगाएं कि हमारा कल्याण किसमें है? आत्महित क्या है? मुझे क्या करना चाहिए? मुझे किस दिशा में आगे बढ़ना है? ऐसा हम चिंतन करेंगे तो हम अपने आप में धन्य बनेंगे।

22 अगस्त, 2019

5

साधना की सुरम्यता

शांति जिन एक मुज विनति...।

वर्तमान युग में मेडिटेशन, ध्यान, अवधान की बातें काफी चल रही हैं। लोगों का ध्यान भी उस दिशा में जा रहा है। क्या लाभ होता है उससे? जिसने उसे ध्याया है, वे उसके लाभ का अनुभव कर सकते हैं और जिन्होंने वह ध्यान नहीं किया है, मेडिटेशन के क्षेत्र में नहीं गए हैं, वे कल्पनाएं कर सकते हैं। किंतु लाभ का अनुभव नहीं कर सकते हैं।

एक बात सुनिश्चित है कि ध्यान से मनोबल स्ट्राँग होता है, मनोबल सुदृढ़ होता है, आत्मनिष्ठा जागृत होती है। आत्मविश्वास गहरा बनता है और नैतिकता की दिशा में गति करने का साहस बढ़ता है। अनैतिकता का प्रतिकार करने की हिम्मत बंधती है, अनैतिकता से मुकाबला करने का सामर्थ्य जगता है। व्यक्ति सचाई की ओर अग्रसर होने की हिम्मत कर पाता है। यह साहस, ये हिम्मत ध्यान से ही पैदा होती है। ध्यान का दूसरा अर्थ हम यह ले सकते हैं—ईश उपासना, भगवान की भक्ति, प्रभु की उपासना। आत्मा ही परमात्मा है—आत्मा की निकटता को प्राप्त करना, स्वीकार करना, अनुभव करना, परमात्मा की शक्ति से कम नहीं है। इससे परमात्मीय शक्तियों का जागरण होता है। कठिन परिस्थितियों में भी साधक अपने ध्येय से विचलित नहीं हो पाता, अपने ध्येय पर अटल रहता है। अडिग रहता है।

मुझे स्मृति में आ रहा है पूज्य गुरुदेव का एक प्रसंग। घटना पूज्य गुरुदेव के घाटकोपर चातुर्मास की है। चातुर्मास तो बाद में हुआ किंतु उससे पहले भी गुरुदेव दो दिन के लिए घाटकोपर पधारे थे। दो व्याख्यान हुए और लोगों का मानस हो गया कि हमको इनका चातुर्मास करवाना है। चूंकि वहां चातुर्मास पहले ही स्वीकार हो जाया करते हैं तो अगला चातुर्मास स्वीकार

हो चुका था, उससे अगले साल का भी स्वीकार हो चुका था। समस्या थी कि कैसे करवाएंगे? किंतु आचार्य श्री के दो प्रवचनों का ऐसा प्रभाव हुआ कि लोगों की भावना बन गई। यह भावना जागृत हो गई कि चातुर्मास करवाना है। संयोग से चातुर्मास करवाने के लिए वे विनती लेकर उपस्थित हुए। आचार्य श्री ने कहा कि मेरा चातुर्मास आप लोगों को जमना मुश्किल है, कुछ कल्प और मर्यादाओं की बात है। आपके स्थानक के परकोटे में रात्रि में लाइट जलती रहती है, सुबह प्रार्थना में बहिनें जल्दी आ जाती हैं–ऐसी बातें हमारे यहां नहीं चल पाएंगी। संघ ने विनती पत्र के साथ यह भावना रखी कि आपकी जैसी सामाचारी होगी संघ वैसा ही वर्तन करेगा। आचार्य श्री ने चातुर्मास घाटकोपर करना स्वीकृत कर दिया। चलता रहा चातुर्मास। पर्युषण के दिन नजदीक आ गए और चर्चाएं उठने लगी कि संवत्सरी का प्रतिक्रमण तो माइक पर करना पड़ेगा। लगभग पांच हजार भाई और पांच हजार बहिनें हैं। भाई-बहिनों की अलग-अलग उपस्थिति पांच-पांच हजार की हो जाती है और किसी की क्षमता नहीं है कि इतनी जोर से बोले इसलिए माइक का उपयोग करना पड़ेगा।

पर्युषण का तीसरा दिन था। पहले चर्चाएं हुई थीं तो गुरुदेव ने मना कर दिया था। किंतु तीसरे दिन बात काफी आगे बढ़ गई। सेवंती भाई मंत्री थे। उन्होंने कहा, कि म.सा.! इसमें तो आपको हमारा साथ देना ही पड़ेगा। आचार्य श्री ने कहा कि मेरे चातुर्मास में माइक पर प्रतिक्रमण नहीं हो सकता। संघ को मेरी सामाचारी ध्यान में है और संघ ने कहा है कि मेरी सामाचारी का पालन करेंगे। वे बोले, गुरुदेव! हमारे पास कोई विकल्प नहीं है, हम क्या करेंगे? आवाज नहीं पहुंचती है तो लोग कुछ भी सामान फेंकने लग जाते हैं और परेशान कर देते हैं। पदाधिकारियों को भाइयों की भावनाओं का भी ध्यान रखना होता है। जो लोग वर्ष में एक बार प्रतिक्रमण करने के लिए आते हैं, वे एक दिन भी प्रतिक्रमण नहीं सुन सकें तो वे पदाधिकारियों को, अधिकारियों को बहुत ज्यादा सुनाते हैं।

आचार्य श्री ने कहा कि कुछ भी हो किंतु प्रतिक्रमण माइक में नहीं होगा। प्रतिक्रमण माइक में होगा कैसे, यह बताओ? एक तरफ माइक का प्रयोग कर रहे हो और दूसरी तरफ प्रतिक्रमण में बोल रहे हो 'खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे–सभी जीवों से क्षमा याचना करता हूं। सभी मुझे क्षमा करें और मैं भी सभी को क्षमा कर रहा हूं। किसी ने एक

गाल पर चांटा लगाया और बोल रहा है कि 'मिच्छा मि दुक्कडं', 'मित्ती मे सव्वभूएसु'। एक तरफ तो प्राणियों की जान लूटे जा रहे हैं, उनके प्राणों की विराधना हो रही है और फिर कहते हैं, 'खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे' कैसे होगा? सावद्य क्रिया यदि बनी रहेगी तो प्रतिक्रमण होगा कैसे? नहीं हो सकता है। किंतु जहां माइक चालू हो जाता है, माइक में बोलने लग जाते हैं तो उन्हें यह ध्यान नहीं रह पाता है कि हिंसा वगैरह हो रही है और वह भी सामायिक में। बिना सामायिक के, संवर के, प्रतिक्रमण होता नहीं है। प्रतिक्रमण में बोलते हैं, गए (अतीत) काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर, सामायिक तो उसमें माइक का प्रयोग कैसे होगा?

काफी ऊहा-पोह चला। उन्होंने कहा कि हमारे पास प्रतिक्रमण करवाने वाले ही एक-दो व्यक्ति होते हैं, उन्हीं को प्रतिक्रमण करवाना होता है। आचार्य श्री ने पूछा कि आपको प्रतिक्रमण करवाने वाले कितने व्यक्ति चाहिए? उन्होंने कहा कि लगभग 10 व्यक्ति चाहिए और वे अर्थ भी स्पष्ट जानने वाले होने चाहिए। कहना पड़ेगा, वहां पर श्री सुंदरलाल जी कोठारी कर्मठ थे। उन्होंने संघ को कहा कि आपको 10 आदमी चाहिए, मैं 10 आदमी लाकर खड़े करूंगा। बात तो यहां तक पहुंची थी और आचार्य श्री ने कह भी दिया कि मैं यहां चातुर्मास कर रहा हूं तो अन्य किसी की अनुमति लेनी नहीं है और मैं तो अनुमति दूंगा नहीं कि आप माइक में प्रतिक्रमण कर लो। यदि माइक में प्रतिक्रमण होता है तो...! मतलब यह इशारा हो गया कि मैं अपना कोई दूसरा स्थान देख सकता हूं। कहने का आशय यह है कि काफी तनाव की बात बन गई। संघ वालों का एक तनाव यह भी था कि पांच हजार लोगों को संभालेंगे कैसे? उनको यह भी भय था कि कहीं धक्का-मुक्की न हो जाए। शायद आने वाले समय की भी चिंता रही होगी कि आने वाले समय में वोट मिलेंगे या नहीं। क्या पता अगली बार मेरा मंत्री बनने का नंबर नहीं आया तो? जो भी बातें रही होंगी, यह जरूर था कि इतने लोगों को संभालेंगे कैसे? सुंदरलाल जी कोठारी के पूछने पर तो कहा गया कि 10 लोग चाहिए तो प्रतिक्रमण हो सकता है। उन्होंने मुंबई के अन्य क्षेत्रों से दस लोगों को लाकर खड़ा कर दिया। संवत्सरी के दिन लगभग पांच स्थानों पर केवल श्रावकों का प्रतिक्रमण हुआ। जहां पर व्याख्यान होता था वहां एवं आयम्बिल शाला भवन के तीन मालों पर गुजरात समाज के लोगों को रखा गया और पास में एक स्कूल था वहां बाहर के दर्शनार्थी अर्थात् राजस्थानी

या मारवाड़ी, जो भी समझ लीजिए उनकी व्यवस्था की गई। उसके पीछे का कारण यही था कि आयम्बिल शाला भवन और स्थानक भवन, पास-पास थे और इनको यहां से कंट्रोल किया जा सकता है। यदि दूसरे स्थान पर गुजराती लोगों का हो तो हो सकता है कि कोई माइक में बोलना चालू कर दे। यहां रहेगा तो कंट्रोल रहेगा। इसलिए वहां पर ही गुजराती लोगों का प्रतिक्रमण रखा गया और प्रतिक्रमण के लगभग 15 मिनट पहले, एक-एक स्थान पर एक-एक संत प्रतिक्रमण की महत्ता को बताने के लिए पहुंच गए। उसमें प्रतिक्रमण की महत्ता को बताया कि हमें प्रतिक्रमण, क्यों करना है और किस रूप में करना है, ताकि हार्द समझ में आवे। उन्हें यह भी कहा गया कि कदाचित् कोई पाठ सुनाने न भी आए तो श्रद्धा-भक्ति से 'मिच्छा मि दुक्कडं' भी बोलेंगे तो हमारी आराधना होगी। फिर लोगों का प्रतिक्रमण हुआ। हमने भी प्रतिक्रमण किया। प्रतिक्रमण के बाद जब लोग दर्शन और क्षमा याचना के लिए आने लगे, उस समय बहुत हर्षित होकर बोल रहे थे कि म.सा.! आज सचमुच में ऐसा लगा जैसे हम वर्तन में प्रतिक्रमण कर रहे हैं। इतने वर्षों तक प्रतिक्रमण में सही तरीके से ध्यान नहीं लगाते थे। आज लगा कि प्रतिक्रमण कर रहे हैं। जैसे पुराने समय में प्रतिक्रमण किया करते थे वैसे ही आज हमारा प्रतिक्रमण हुआ।

वस्तुतः, प्रतिक्रमण किसलिए किया जाता है? प्रतिक्रमण करने का उद्देश्य क्या है? हम क्यों प्रतिक्रमण करते हैं? प्रतिक्रमण करने का मतलब यह है कि हमारे व्रतों में कहीं पर भी कोई दोष लग गया हो तो उनको वापस ठीक कर देना, उनको रफू कर देना, उनकी वेल्डिंग कर देना, उनकी सिलाई कर देना। जहां कहीं पर व्रतों में छेद हो गए हैं, व्रत टूट गए हैं– उनको बराबर कर देना। यह प्रतिक्रमण का भाव होता है। यदि प्रतिक्रमण में तेउकाय के जीवों की विराधना करें, उसमें अतिचार, अनाचार लगाते रहें तो वह प्रतिक्रमण होगा कैसे? बताओ, कैसे होगा? नाम का प्रतिक्रमण या प्रतिक्रमण का नाम हो जाएगा किंतु सचमुच में वह प्रतिक्रमण नहीं होगा। आपका उद्देश्य, प्रयोजन सिद्ध नहीं हो पाएगा।

यह घटना, ये दर्शाती है कि इतने लोगों के बीच भी आचार्य देव कितने सुदृढ़ रहे, मक्कम बने रहे। यह तो हम जान रहे हैं। दूसरे लोग जो उनके भक्त, अनुयायी हैं– वे जान रहे हैं कि आचार्य श्री अपने महाव्रतों में बड़े मक्कम हैं। धर्म के मामले में और मर्यादाओं में ये बड़े मक्कम हैं। वहां पर

गुजराती और अन्य समाज, जिसमें वर्षों से माइक में प्रतिक्रमण होते रहे, उनमें एकदम से यह बात आ जाए कि माइक के साथ प्रतिक्रमण करने की अनुमति नहीं मिल सकती है। प्रतिक्रमण बिना माइक के करना पड़ेगा! इतनी दृढ़ता रखना कोई मामूली बात नहीं है किंतु जहां पर आत्मसाधना सध जाती है– जहां पर ईश-उपासना से ईश्वरीय गुण हमारे भीतर पैदा हो जाते हैं वहां कुछ भी असंभव नहीं होता। वह जैसा चाहता है वैसा ही होता है। और वैसा ही हुआ। इतना ही नहीं, आगे यदि बात को और बढ़ाऊं तो जो माइक में प्रतिक्रमण कराने के पक्षधर थे, संवत्सरी के दूसरे दिन यानी क्षमा याचना के दिन उन लोगों ने प्रतिज्ञा कर ली कि कोई भी धार्मिक क्रिया हम माइक से नहीं करेंगे। किसी भी साधु-साध्वी के सामने माइक से नहीं बोलेंगे। व्रजलाल कपूरचंद गांधी, सेवंती भाई आदि कई लोगों ने और मुंबई के उपनगरों में से आने वाले कई संघों ने उस समय इस प्रकार की प्रतिज्ञाएं कर लीं कि म.सा. हमको भी प्रतिज्ञा करवा दो। उन्हें प्रतिज्ञा करवाई गई। घटनाएं, खबरें बन फैलती हैं। बाकी बातें तो पहुंचें या नहीं पहुंचें, किंतु ऐसी घटनाएं बहुत जल्दी फैल जाती हैं। यह घटना भी मुंबई में फैल गई कि ऐसा हुआ, वैसा हुआ। वहां पर प्रतिक्रमण बिना माइक कराने की स्थिति रही। माइक का उपयोग नहीं कर सकते थे। कई लोग उससे प्रेरित हुए और उन्होंने भी प्रतिज्ञाएं कर लीं कि हम भी माइक से प्रतिक्रमण नहीं करेंगे। धार्मिक क्रियाओं में माइक का उपयोग नहीं करेंगे।

इसी प्रकार वर्षों पूर्व की माटुंगा की बात है जहां पर श्री लीलाबाई महासती (गुजराती) के पास दीक्षा होने वाली थी। उस समय ऐसा था कि संतों के रहते हुए संत ही दीक्षा दिलाएंगे। श्री लीलाबाई महासती जी ने संतों से निवेदन किया कि आप दीक्षा जरूर करवाएं किंतु उसमें माइक का उपयोग नहीं करें। संतों ने कहा कि बगैर माइक के कैसे होगा? हम तो माइक का उपयोग करते हैं और माइक में दीक्षा करवाएंगे। चूंकि संतों के रहते हुए साध्वियां करा नहीं सकतीं, अतः माटुंगा संघ भी परेशानी में पड़ गया कि क्या करें? लीलाबाई महासती ने कहा कि तुम शांत रहो, जो होना है शासन के हिसाब से बढ़िया ही होगा। घाटकोपर में संत विराजे हुए थे। वे वहां से रवाना हुए, माटुंगा पहुंचे उसके पहले ही महासती जी ने दीक्षा दे दी। माइक नहीं लगेगा, नहीं लगेगा और नहीं ही लगेगा– ऐसी दृढ़ता तब आ पाती है जब मर्यादाओं के प्रति हमारा गहरा अनुराग होता है। हमने यदि सच्चे मायने

में आगमों का ज्ञान किया है तो एक तेउकाय की हिंसा भी कितनी भयंकर होती है, यह जानते हैं।

कई सोच सकते हैं कि हमको तो उसका करंट नहीं दीखता है। वह तो हमको लगेगा तो मालूम पड़ेगा कि उसका असर क्या होता है? थोड़ा-सा तार का स्पर्श हो जाएगा तो क्या करेगा? बिजली का करंट दो ही काम करेगा, या तो अपनी ओर खींच लेगा या धक्का देकर गिरा देगा। उस तेउकाय का असर जब जलती हुई अग्नि में हमारा हाथ चला जाए, तब पता चलता है। भगवान ने उसको दीर्घलोक शस्त्र कहा है। श्रीमद् आचारांग सूत्र में उसको दीर्घलोक शस्त्र कहा है। भगवान ने कहा है कि वनस्पति दीर्घलोक है। **वह सबसे ज्यादा होती है, इस मायने में भी वह दीर्घलोक है–** यह दीर्घलोक को जलाने वाला, दीर्घलोक को समाप्त करने वाला शस्त्र है। उस शस्त्र को जो जानने वाला होता है, वही संयम को जानने वाला होता है। अन्यथा वह संयम को क्या जानेगा? जो जीव को नहीं जानेगा, अजीव को नहीं जानेगा, वह संयम को कैसे जान पाएगा? जो जानेगा ही नहीं वह संयम की पालना, संयम की आराधना कैसे कर पाएगा? इसलिए चाहे श्रावक हो या साधु हो, उसको पहले नव-तत्त्व का ज्ञान होना चाहिए। नव-तत्त्व का ज्ञान होगा तो वह जीव-अजीव को जानेगा। जीव-अजीव को जानेगा तो उसकी रक्षा के लिए तत्पर हो पाएगा। नहीं तो! पता नहीं है तो क्या करेगा?

साधुओं में तो नव-तत्त्व का ज्ञान मिलेगा क्योंकि उसके बिना साधु जीवन की आराधना कैसे होगी? किंतु श्रावकों में...? हमारे श्रावकों में नव-तत्त्व के ज्ञाता कितने मिलेंगे? नव-तत्त्व के नाम बताने वाले फिर भी मिल जाएंगे, किंतु जीव क्या है, अजीव क्या है, पुण्य क्या है, पाप क्या है, इनको जानने वाले कितने लोग हैं? यदि आगमों में श्रावकों के लिए कोई विशेषण आपको देखना हो, जानना हो तो एक विशेषण आपको यह मिलेगा कि 'अभिगयजीवाजीवे'। क्या विशेषण है? यह विशेषण है– जान लिया है जिसने जीव और अजीव को। जो जीव और अजीव का ज्ञाता बन गया वह श्रमणोपासक है। वही व्रत और नियम को भी जानने वाला और व्रत और नियम की पालना करने वाला बनेगा। सम्यक् प्रकार से आराधना करने वाला बनेगा।

आचार्य देव ने पर्युषण के तीसरे दिन व्याख्यान में इस प्रकार से बात रखी कि अंततोगत्वा वे लोग स्वीकार करने के लिए तत्पर हो गये और यह

मान लिया कि सावद्य क्रिया होगी तो प्रतिक्रमण सही नहीं होगा। इतना मान लिया कि प्रतिक्रमण में सावद्य क्रिया नहीं होनी चाहिए। सिद्धांत स्वीकार हो जाता है तो फिर उसको फॉलो करने में ज्यादा असुविधा नहीं होती।

कठिनाई हर आदमी के सामने आती है किंतु सोच, कठिनाई का निराकरण क्या है? इस पर भी वह सोचने लगता है। उस पर जब सोच ठहरती है तो कठिनाइयां अपने आप दूर हो जाती हैं। हम कठिनाइयों का विचार नहीं करें वरन् कठिनाइयों को दूर कैसे किया जा सकता है? कठिनाइयों को सॉल्व कैसे किया जा सकता है? सिद्धांत की मर्यादाओं का अक्षुण्ण रूप से पालन करते हुए उस ओर हमारा दृष्टिकोण होना चाहिए।

हम थोड़ा-सा यहां विचार करते हैं। आचार्य देव का आग्रह क्यों था कि माइक में प्रतिक्रमण नहीं होगा। देखने में बात अलग-सी व सामान्य-सी लगती है पर आचार्य देव का स्पष्ट मत था कि संयम शुद्ध रहे– धार्मिक क्रियाएं निरवद्य हों।

बात चल ही गई तो बात कर लेते हैं। दीक्षा लेने वाले को दीक्षा लेने की बात कहने वाले कितने मिलते हैं और संसार में रुकने की पैरवी करने वाले कितने लोग मिलते हैं? आप लोग क्या करोगे? पैरवी कहोगे या सपोर्ट करोगे? (प्रतिध्वनि– सपोर्ट) ठीक से बोलना, आपका बेटा या बेटी दीक्षा लेने को तैयार हो जाए, आपके घर से कोई दीक्षा लेने को तैयार हो जाए तो उसको सपोर्ट करोगे या उसको यह कहोगे कि इतनी भी जल्दी क्या है? हम इसे बुरा नहीं मानते हैं, दीक्षा लेना अच्छी बात है– ले लेना। लेकिन हम क्या प्रयत्न करेंगे? अधिकांश व्यक्ति प्रयत्न यह करते हैं कि साम-दामादि किसी भी प्रकार से यह संसार में रुक जाए। जब चारों तरफ से स्थिति ऐसी हो जाए कि वह किसी भी हाल में संसार में रुकने को तैयार नहीं है। घर में ठहरने को तैयार नहीं है तब जाकर दीक्षा देने की बात आती है। जब मानता ही नहीं है तब लास्ट मूवमेंट है कि दीक्षा देना। लास्ट मूवमेंट होता है दीक्षा देना, फर्स्ट मूवमेंट नहीं होता है। पहला निर्णय है कि दीक्षा लेना है और लास्ट निर्णय है दीक्षा देना है।

आचार्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि एक बार गामा पहलवान से किसी ने पूछा कि तुम इतने शक्तिशाली कैसे हो? तो उसने कहा कि मैं पहले दुबला-पतला आदमी था, बहुत ही दुबला-पतला था। मुझमें कोई ताकत

नहीं थी। शायद लोगों को विश्वास नहीं हुआ। तब उसने कहा कि पांच साल के बच्चे को मेरे सुपुर्द कर दो। मैं उसको नया गामा पहलवान बना दूंगा। रोज उसका वैसा ही अभ्यास चलेगा तो शारीरिक-शक्ति, शारीरिक-बल अपने आप ही बढ़ जाता है। शारीरिक बल के साथ मनोबल भी बढ़ता हुआ चला जाता है। जैसे गामा पहलवान कहता है कि मेरे पास पांच साल के एक बच्चे को रख दो तो वह नया गामा पहलवान बन जाएगा, वैसे ही यदि कोई साधु के साथ रहे तो वह साधु बनेगा। कितने दिनों में साधु बन जाएगा? कितने दिनों में वैराग्य जग जाएगा? कितने दिनों में वैराग्य चढ़ जाएगा? वैराग्य चढ़ता या नहीं चढ़ता, अलग बात है किंतु उसमें समझ तो आ ही सकती है कि हेय क्या है, उपादेय क्या है? विषय-वासना, संसार की मोह-माया छोड़ पाना हर किसी के बूते की बात नहीं है क्योंकि जो कर्मों की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है, जिसके हाथों में हथकड़ियां पड़ी हुई हैं, उनको तोड़ पाना हर किसी के वश की बात नहीं है। हर किसी के लिए संभव नहीं है। यदि होता तो भगवान महावीर के समय में 14 हजार साधु और 36 हजार सतियां ही नहीं, हजारों की संख्या और भी बढ़ती। स्पष्ट है कि सभी लोग उतनी हिम्मत कर सकें यह संभव नहीं है। किंतु उनके भीतर समझ पैदा हो जाती है कि सही मार्ग कौन-सा है? स्वीकार करने योग्य मार्ग कौन-सा है? सही मार्ग तो साधु जीवन ही है। सबसे राजा जीवन, साधु जीवन है। राजा जीवन को हम स्वीकार कर सकें या नहीं कर सकें यह हमारे सामर्थ्य की कमी हो सकती है। किंतु अच्छा मार्ग, साधु मार्ग ही है।

कृष्ण वासुदेव जिनका प्रसंग हम सुनते हैं कि उनको धर्म पर इतनी अटूट श्रद्धा हो गई कि दीक्षा के लिए उन्होंने बहुत दलाली की। दलाली का मतलब है प्रेरित करते थे कि कोई भी दीक्षा लो, उसकी पीछे की सारी जवाबदारी मेरी है। यह केवल दूसरों के लिए नहीं था, उनके परिवार के सदस्य, पोता-पड़पोता, बेटा, बहुएं, स्वयं की रानियां थी और रुक्मिणी जिसके लिए बहुत युद्ध करना पड़ा था, वह भी जब दीक्षा के लिए तैयार हुई तो उसको भी आगे करके भगवान के पास दीक्षा दिलाई।

ऐसा उदाहरण मेरे खयाल से इन 32 आगमों में हमको दूसरा नहीं मिलेगा। इतनी-इतनी दीक्षाएं अपने घर से करवाई और घर में जो भी चरण वंदन के लिए आते, उनको यह पूछते कि तुम राजा बनना चाहते हो या दास बनना चाहते हो? राजा बनना है तो अरिष्टनेमि भगवान के पास जाओ

और उनका ज्ञान प्राप्त करो। उनके चरणों में जाओ, उससे तुम राजा बन सकोगे। दास बनना है तो जाओ, गुलामी करो दुनिया पड़ी है। यह संसार पड़ा है गुलामी करने के लिए! दुनिया की गुलामी करोगे या नहीं करोगे किंतु अपने अंतर का गुलाम तो बनना ही पड़ेगा। मन के गुलाम बन जाओगे। यदि इस गुलामी से अपने आप को हटाना है, छुटकारा पाना है तो अरिष्टनेमि भगवान की शरण में जाना होगा। अरिष्टनेमि भगवान की शरण में जाओगे तो राजा बन जाओगे। नहीं तो इस दुनिया के, इन्द्रिय-विषयों के गुलाम बनोगे। अपने अंतर के और स्वयं के गुलाम बन जाओगे। भगवान अरिष्टनेमि के पास जाओगे तो दुनिया के राजा बनो या नहीं बनो किंतु स्वयं के नाथ बन जाओगे। राजा बन जाओगे। यह प्रेरणा कृष्ण वासुदेव दे रहे थे क्योंकि उनमें दृढ़ विश्वास हो गया। उन्होंने अच्छी तरह से जान लिया कि तमेव सच्चं निसंकं...। भगवान ने कहा है वही सत्य है, वही निश्शंकित है। इसमें कहीं कोई शंका की गुंजाइश नहीं है।

जो जिनेश्वर देव ने फरमाया है, जो वे कहते हैं उसमें शक की कोई गुंजाइश है ही नहीं। वे जो कहते हैं उसमें कहीं से कहीं तक शक की गुंजाइश ही नहीं है और उन्हें यह संसार असार दिखाई देता है। भगवान कह रहे हैं कि संसार में दुःख-द्वंद्व भरा हुआ है तो भरा हुआ है। संसार में ईर्ष्या और द्वेष भरा हुआ है। आप कहेंगे, क्या साधु जीवन में दुःख नहीं आते हैं? यदि साधु जीवन में रमण कर लेता है तो वहां न दुःख है और न द्वंद्व है। न ही ईर्ष्या का भाव है। नहीं तो मैं कई बार बोलता हूं कि साधु जीवन की पोशाक, हमारी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। जब तक अपने विचारों को, अपने भावों को नहीं सुधार लेते हैं, भावों को साधु जीवन के अनुसार नहीं बना लेते तब तक यह पोशाक हमारा कल्याण करने में समर्थ नहीं हो सकती।

इतना स्पष्ट है कि हमारी दृढ़ता और आत्मविश्वास के लिए हमें ज्ञान की खेती करनी चाहिए। ज्ञान को हम जितना स्ट्राँग करेंगे, जानकारी जितनी गहरी होगी उतने ही हमारे पांव मजबूत होते चले जाएंगे। ज्ञान के क्षेत्र में हमको अवश्यमेव अपना विकास करना चाहिए। अभी संघ के द्वारा ज्ञान प्राप्ति के लिए काफी प्रकल्प, विकल्प बनाये गए हैं। पचास थोकड़े की परीक्षा, आगम भक्ति की परीक्षा और जो भी आयाम आपके सामने हैं, उसके माध्यम से बहुत से लोग ज्ञान प्राप्ति के लिए जुड़े हैं। जो नहीं जुड़े हैं उनको भी जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान हमारी निजी सम्पत्ति है।

बाकी सम्पत्ति का बंटवारा हो सकता है, कोई उसे लूट सकता है, किंतु ज्ञान की सम्पत्ति कोई भी चोर चुरा नहीं सकता और न भाई बंटवारा कर सकता है। भाई जमीन का बंटवारा कर सकता है, किंतु वह हमारी निजी उपज यानी ज्ञान की उपज का बंटवारा नहीं कर सकता है। निजी उपज बढ़ाने का हम लक्ष्य बनाएंगे।

पर्युषण-पर्व आ रहे हैं। त्याग तपस्या जितनी होती है करें। तेला, बेला आदि जितनी भी तपस्या कर सकते हैं करें। किंतु कषाय-शमन और राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने की दिशा में हमें अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। राग-द्वेष या कषाय के वश कोई कथन नहीं करना चाहिए। क्योंकि जब तक कषाय और राग-द्वेष पतले नहीं होंगे तब तक हम हलुकर्मी नहीं बन पाएंगे। इसके लिए सुन्दर उपाय है– प्रभु भक्ति, ईश उपासना। आत्मा से परमात्मा बनने की वही दिशा है। अतः उस दिशा में हम गति करें और स्वयं को धन्य बनाएं।

23 अगस्त, 2019

6

आंख में अंजन

श्रीमद् आचारांग सूत्र के एक सूत्र में बताया गया है कि जो बंधी हुई आत्मा को मुक्त कराता वह वीर है– "एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए।" जो बंधन का प्रतिमोचक होता है, बंधन को खोलने वाला होता है वह वीर प्रशंसित होता है। बंधन की परिभाषा हमारी भिन्न-भिन्न हो सकती है।

कोई व्यक्ति यह सोचता है कि किसी रस्सी आदि से बंधना ही बंधन है। किंतु शास्त्रकार कहते हैं कि द्रव्य बंधन भी एक बंधन है, उससे मुक्त कराना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। किसी ने किसी के हाथ-पांव बांध दिए और कोई उसको खोलता है तो यह भी एक मुक्ति है। यह भी एक बंधन से छुटकारा है। कोई जेल में है और किसी ने जेल से रिहा करवा दिया वह भी बंधन से छुड़ाना तो है ही। पर यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि कर्मों के बंधन से आत्मा को मुक्त कराना। कर्मों का बंधन संयोग-वियोग से होता है। संयोग और वियोग से हमारे भीतर जो परिणाम बनते हैं, उन परिणामों से कर्मों का बंध होता है। प्रायः करके व्यक्ति संयोग से या तो खुश होता है या दुःखी होता है। किसी का मिलना भी बड़ा दुःखदायी होता है। रामायण में कहा है– "मिलत एक दारुण दुःख देहि।" कोणिक, मगध सम्राट श्रेणिक का पुत्र था। उसका मिलना भी जानलेवा होता था। बड़ा भय पैदा करने वाला होता था। दारुण दुःख देने वाला होता था। मगध सम्राट श्रेणिक को उसी के पुत्र ने जेल में डाला था और कोड़े लगाने आया करता था– उसका नजदीक आना, संयोग होना दुःख का कारण होता था, 'मिलत एक दारुण दुःख देहि'।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनका मिलना ही दारुण दुःख देने वाला होता है! रोहिणेय चोर, प्रभव चोर से किन्हीं की मुलाकात हो जाती तो उस समय वह उनके लिए सुखकर होती या दुःखकर होती? पंक्ति का दूसरा पद है

'बिछुरत एक प्राण हरि लेहि' एक व्यक्ति का बिछुड़ना प्राण हरण करने जैसा हो जाता है। जिस व्यक्ति का बिछुड़ना प्राण हरण जैसा होता है वह संयोग है। वह भाव संयोग है। भाव से वह व्यक्ति चित्त का अभिन्न अंग बन गया। जो चित्त का अभिन्न अंग बना उसका अलगाव बड़ा पीड़ा देने वाला होता है। हमने जिसको चित्त का अभिन्न अंग बनाया है, उसमें कहीं-न-कहीं हमारा रागात्मक भाव जुड़ रहा है। उससे कोई-न-कोई अटैचमेंट हुआ है, उससे कोई-न-कोई संबंध हुआ है। ऐसा जो राग का संबंध है वह कर्म बंध कराने वाला होता है। द्वेष का संबंध भी कर्म का बंध कराने वाला होता है। जब तक इस कर्म बंधन से हमारी आत्मा बंधी रहेगी वह चतुर्गति संसार में परिभ्रमण करती रहेगी।

धार्मिक क्रिया, त्याग-प्रत्याख्यान करने को भी लोग कभी-कभी कहते हैं कि यह बंधन है और हम बंधन में नहीं रहना चाहते। एक बात ध्यान में ले लेना बहुत अच्छी तरह से कि बिना बंधन आप कहीं भी रह नहीं पाओगे। बिना बंधन के रहने का स्थान केवल सिद्ध क्षेत्र है। वहां बिना बंधन के रह जाएंगे। यह शरीर बंधन है या नहीं है? क्या इस शरीर के बंधन के बिना हम रह पाएंगे? रहा जा सकेगा? रहने के लिए आपने मकान बनाया। वह मकान हमारे लिए बंधन है या नहीं? हम उसमें बंधे हुए हैं या नहीं? क्या बिना मकान के हमारा रहना हो पाएगा? हम ऐसा बोल जरूर देते हैं किंतु बिना बंधन हमारी कोई क्रिया होगी नहीं। हम बंधन में हैं और बंधन में रहेंगे। धर्म क्रिया बंधन नहीं है बल्कि हमारे भाव बंधन को काटने में सहयोग देने वाली क्रिया है।

धार्मिक क्रिया किसलिए की जाती है? हम औपचारिक रूप से कर रहे हैं तो यह हमारी समझ की कमी है। हम नहीं समझ पा रहे हैं इसलिए ऐसा कर रहे हैं। वस्तुतः, हमारी क्रियाओं का लक्ष्य राग-द्वेष खत्म करने का होना चाहिए। संयोग हो चाहे वियोग, दोनों अवस्थाओं में हमारी स्थिति एक समान बने ऐसा प्रयत्न होना चाहिए। हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि कैसी भी परिस्थिति हो मेरा समभाव हटेगा नहीं। मेरे भीतर कोई बदलाव नहीं होगा। जैसे कहा है, 'बिछुरत एक प्राण हरि लेहि'—कोई मेरे से बिछड़ जाए या किसी का मेरे साथ संयोग हो जाए—मेरे भीतर कोई अंतर नहीं आएगा।

एक पत्र आया। उसमें कुछ इस प्रकार के भाव थे कि मेरे को कितनी कठिनाई हुई। मैंने कितनी कठिनाई में समय निकाला है, यह मैं ही जान रही हूं। मेरे साथ क्या-क्या व्यवहार हुआ कि मैं क्या कहूं? मैंने कितना सहन

किया है? पत्र के उत्तर में लिखाया गया कि 'हमको दूसरों का व्यवहार खलता रहेगा, वह हमारी कमी है। हमें ऐसी साधना करनी चाहिए, हमें ऐसे आगे बढ़ाना चाहिए स्वयं को कि कोई कैसा भी व्यवहार मेरे साथ करे– कोई कैसा भी सुलूक करे मेरे भीतर ये भावना पैदा होनी ही नहीं चाहिए कि ये मेरे साथ बुरा व्यवहार कर रहे हैं। ये मेरे साथ बुरा सुलूक कर रहा है। जिस दिन हम अपने आप को वैसा बना लेंगे उस दिन साधना हमारे जीवन को आनन्द देने वाली बनेगी।'

सामने आ ही रहे हैं पर्युषण-पर्व। हम अर्जुनमाली को, अर्जुनमुनि को सुनेंगे कि उनके साथ जो व्यवहार हुआ, दीक्षा के बाद उन्होंने अपने आपको इतना साधने का प्रयत्न किया कि उनके भीतर कोई उतार-चढ़ाव नहीं आया। खंदक ऋषि की खाल खींची गई। बोल तो रहा हूँ, किंतु थोड़ी भी खींचे तो मालूम पड़े कि उसका परिणाम क्या होता है? जैसे लोग काचर और खरबूजे को छीलते हैं, अन्य साग-सब्जी को भी छीलते हैं, वैसे ही उनकी चमड़ी उतारी जा रही है और मुंह से उफ शब्द नहीं निकल रहा है। न मुंह से शब्द, न मन में कोई ऐसा विचार हो रहा है कि मैंने राजा का क्या बिगाड़ा? राजा मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रहा है? कोई ऐसे भाव नहीं। दूसरे पर दोषारोपण करना, दूसरे की गलती निकालना ऐसा कोई विचार नहीं। मेरा कर्म योग, मेरे कर्मों का योग ही मेरे सामने आकर खड़ा हुआ है। ऐसा सोच, अपनी आत्मा में स्थित हो जाना बहुत बड़ी बात है और यह बात आपको धर्म सिखाता है। हम धर्म क्रिया किसलिए करें? ऐसे समय के लिए हमारी धर्म क्रिया होती है कि कोई भी, कैसी भी स्थिति आ जाए, मेरे विचारों में फर्क नहीं पड़ेगा। मेरे अध्यवसायों में कोई अंतर नहीं आएगा। यह नहीं सोचें कि क्या ऐसा कभी हो सकता है? जरूर हो सकता है या नहीं हो सकता है? जरूर हो सकता है।

भगवान महावीर के कानों में कील ठोके गए। भगवान ने उस पर द्वेष किया क्या? क्या मन में शिकायत पैदा हुई? मन में उसका अहित करने का चाहा? जैसा प्रसन्नचंद्र राजर्षि के मन में द्वेष पैदा हुआ, भगवान महावीर के मन में वैसा कोई द्वंद्व पैदा नहीं हुआ। प्रसन्नचंद्र राजर्षि के मन में द्वंद्व पैदा हो गया। होना नहीं चाहिए था पर हुआ। हो गया। जो द्वंद्व पैदा हुआ वह थोड़ी देर के लिए हुआ। वह द्वंद्व यदि उसी समय काल प्राप्त कराने वाला बन जाता? बन गया होता तो सीट कहां के लिए रिजर्व होती? कहां के लिए सीट

रिजर्व हो रही थी? (प्रतिध्वनि– सातवीं नरक) सातवीं नरक में सीट रिजर्व हो रही थी। बहुत गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। हम कोई भी क्रिया कर रहे हैं, उस पर हमारी दृष्टि नहीं होनी चाहिए। बल्कि क्रियाओं के पीछे मेरे भाव क्या हैं, मेरे परिणाम क्या हैं? दिखने में तो प्रसन्नचंद्र राजर्षि साधना में दीख रहे हैं किंतु वे आत्मा का बंधन करने वाले बन रहे हैं। कर्मों को बांध रहे थे। और जैसे ही सजग हुए, सावधान हुए वे बंधन मुक्त होने की दिशा में गतिशील हो गए। शरीर ज्यों-का-त्यों खड़ा है, किंतु मन गति करने लगा। अभी जो गति कर्म बंधन की ओर हो रही थी, वह गति मुड़ी और कर्मों को काटने वाली बन गई। सातवीं नरक का बंध कराने वाले परिणाम एकदम से इतने जल्दी बदले कि तत्काल केवलज्ञान की पैदाइश हो गई। घाती कर्मों का क्षय हो गया। इतनी जल्दी तो आदमी करवट भी नहीं ले सकता है! इधर से उधर मुड़ नहीं सकता उतने में तो हमारे विचार कहीं से मुड़कर कहीं तक पहुंच जाते हैं। यही बात भगवान महावीर हमें उद्बोधन के रूप में कह रहे हैं कि वह वीर प्रशंसित है जो बंधन को काट देता है। बंधन से मुक्त हो जाता है। आत्मा को बंधन से मुक्त करा देता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. ने कितनी आत्माओं को बंधन मुक्त किया? एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं। है हमारे पास कोई आंकड़ा? अधिकृत रूप से 289, हालांकि उनकी उपस्थिति में और भी दीक्षाएं हुई थीं किंतु वे बाद की गिनती में आने लगीं। 289 दीक्षाएं सन् 1992 तक गुरुदेव के कर-कमलों से, मुखारविन्द से संपन्न हुईं। इतने लोगों को, इतनी आत्माओं को, इतने व्यक्तियों को संसार से मुक्त करना और उन्हें सही दिशा देना, कोई छोटी बात नहीं बहुत बड़ी बात है। एक साथ 25 दीक्षाओं का भी हमने अनुभव किया होगा। देखा होगा वह नजारा। ऐसे प्रसंग पर पता नहीं कई लोगों की भावनाएं जग जाती हैं कि हम संसार में क्या कर रहे हैं? वह प्रबोध बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है।

जहां तक मेरी स्मृति है, आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. गंगाशहर विराज रहे थे। उस समय संघ की अध्यक्षता श्रीगुमानमल जी चौरड़िया कर रहे थे। उस समय तक सौ से अधिक, लगभग 108 या 109 दीक्षाएं, संपन्न हो चुकी थीं। उसके आधार पर संघ (श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ) का विचार बना होगा। उस विचार को रखते हुए उन्होंने व्याख्यान में 'जिनशासन प्रद्योतक' का विरुद दिया। यह उपमा लगायी।

आचार्य देव ने, गुरुदेव ने उस समय भी स्पष्ट रूप से अपने भाव व्यक्त किए थे कि ये पद या ये उपमाएं साधु के लिए कोई महत्त्व नहीं रखती। और साधु का मन यदि इन उपमाओं में लग गया, इन उपमाओं में अटक गया तो वह इनके लिए बहुत बड़ा बंधन हो जाएगा। इनसे साधुओं को मुक्त ही रहना चाहिए। कुल मिलाकर मनःस्थिति इतनी खुली होनी चाहिए कि वह किसी से बंधे नहीं। वह यदि किसी से नहीं बंधती है तो फिर यह बात नहीं रहेगी कि 'बिछुरत एक प्राण हरि लेहि'। और इसके आगे का 'मिलत एक दारुण दुःख देहि'—फिर कोई भी मिले, कितना भी दुःख दे पर उसको कोई दुःख नहीं होगा।

खंदक ऋषि की खाल उतारे जाने पर और भगवान महावीर के कानों में कीले ठोकी गईं तो...! यूं देखें तो 'मिलत एक दारुण दुःख देहि' के रूप में घटित हो सकता था किंतु जब हमारी विचारधाराएं, हमारा मन शुद्ध है, एकदम क्लीयर है, उसमें किसी प्रकार के राग-द्वेष के बंधन नहीं हैं तो वह स्थिति भी हमारे लिए दारुण दुःख देने वाली नहीं बनेगी। बिछुड़ने पर प्राण हरण करने जैसी भी बात नहीं बनेगी। यह अवस्था हमें धर्म की आराधना से मिल सकती है। इसलिए हमें धर्म की आराधना करने का उपदेश दिया जाता है कि तुम धर्म चर्या में लगो। अधिकांश लोग क्रियाओं से तो जुड़ जाते हैं किंतु भावनाओं से उसका जो अटैचमेंट होना चाहिए, भावनाओं से जो संबंध होना चाहिए वह संबंध कम हो पाता है। या हो ही नहीं पाता। जब भावनाओं का संबंध उसके साथ नहीं होता है तब जो धर्म का आनन्द, धर्म का रस हमें उपलब्ध होना चाहिए वह नहीं हो पाता।

अंजनाजी की शादी पवनजी के साथ हुई। पवनजी ने बात करना तो दूर, मिलना और आमना-सामना करना भी बंद कर दिया। केवल एक बात पवनजी के मन में अड़ी हुई थी और उस बात के कारण उन्होंने अंजना के साथ उस प्रकार का व्यवहार किया। किंतु अंजना ने अपने दिल में वह खटक पैदा नहीं होने दी, कोई खटास पैदा नहीं होने दी। उसने पवनजी के प्रति अपना मन जैसा पहले था, वैसा बनाए रखा। हालांकि उस समय तक उसने राग-द्वेष को नहीं जीत लिया था! हम कहेंगे कि भगवान महावीर तो भगवान थे, उनकी बराबरी कौन करेगा? किंतु अंजना तो भगवान नहीं बनी थी ना, फिर भी कितना धैर्य रखा? कितना साम्य भाव रखा? कितनी समता रखी? इसे कहते हैं आंख में अंजना। यह होता है 'धर्म में' जीना। धर्म में जीने

का परिणाम है कि 'कुल्हाड़ी से कोई काटे या कोई आ फूल बरसाए' कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कोई गालियां दे तो भला और कोई स्तुति करे तो भला। न गालियों से गूमड़े होने वाले हैं और न स्तुति पाकर कोई ऊंचा उठने वाला है। आदमी ऊंचा उठेगा अपने कर्म से।

हमने किसी की प्रशंसा कर दी। एक मूर्ति की प्रशंसा की। हम बहुत स्तुतियां करते हैं किंतु क्या मूर्ति में कुछ विशेष घट गया? क्या कोई विशेषता आ गई? क्या उसका चैतन्य हुंकार उठा? कुछ भी तो फर्क नहीं पड़ा। वैसे ही किसी के स्तुति करने से किसी में कोई फर्क नहीं पड़ना है। स्तुति करने से वह ऊंचा नहीं हो जाता है और किसी के गालियां देने से, बुराई करने से वह व्यक्ति कभी बुरा नहीं बन जाता।

चर्चा चल रही है कि आज जन्माष्टमी है। कल सरकार की तरफ से अवकाश था और आज भी अवकाश होगा तो मुझे पता नहीं। अवकाश हो या न हो आप विचार करो उस समय की परिस्थितियों पर जिस समय देवकी और वसुदेव, कंस की जेल में रह रहे हैं। कैद में रह रहे हैं। क्या वसुदेव में ताकत नहीं थी कि वे कंस को पछाड़ दें? किंतु वचनबद्धता थी। वचन से वे बंधे हुए थे। यहां का पता नहीं बाकी बहुत से वर्षों में हमने ऐसा अनुभव किया है कि जन्माष्टमी के दिन बादल छाएंगे। वर्षा होगी। होती रही है। महाशिवरात्रि के पहले मालूम नहीं पड़ता है, कोई आशंका नहीं होती है, पर उस दिन एकदम बादल कहां से आ जाते हैं? देखा हुआ है कि प्रायः ऐसा होता है। पर्युषणों में भी कई बार ऐसा होता है। कभी-कभी सूखा भी चला जाता है। पर अधिकांशतः देखा है कि पर्युषणों में भी ऐसा होता है। अब यह क्या संबंध जुड़ा हुआ है, हम नहीं कह सकते हैं। उस समय की वह रात्रि बड़ी विकराल थी– अमावस्या से भी बढ़कर अंधेरा! ऐसे में देवकी कह रही है कि नाथ! इस बालक की रक्षा कीजिए। वे बोले, कि कैसे करूं? कहा गया कि पुरुषार्थ करने पर सारे रास्ते खुल जाएंगे। वसुदेव कहते हैं– सारे रास्ते, दरवाजे बंद हैं। बाहर चौकीदार हैं। किंतु देवकी ने कहा– जो कुछ भी है हमें हमारा पुरुषार्थ करना चाहिए। कहा जाता है कि वे हाथ में, टोकरी में कृष्ण वसुदेव को लेकर वहां से रवाना होते हैं और दरवाजे खोलते हैं तो दरवाजे खुल गए। बाहर चौकीदार खर्राटे ले रहे हैं। ये क्या हुआ? कैसे हुआ? क्या स्थिति बनी? आज के दिन ऐसी घटना हो जाए तो लोग कहेंगे कि कोई चमत्कार घट गया। किंतु पुण्याई जिसकी प्रबल होती है उसको कहीं-न-कहीं कुदरत भी सहयोग देने वाली

हो जाती है। दूसरे शब्दों में यदि विचार करें तो पुरुषार्थी जीव को सफलता मिलती है।

एक सम्राट को प्रधानमंत्री की नियुक्ति करनी थी। उसके लिए घोषणा हुई कि अमुक दिन प्रधानमंत्री का चयन किया जाएगा। जो इस पद पर सेवा देना चाहते हैं वे आमंत्रित हैं। भारत में यदि चुनाव पद्धति को गौण कर दें। ये वोटिंग न हो और किसी एक व्यक्ति की नियुक्ति करनी हो या पांच व्यक्तियों की एक कमेटी बन जाए कि वह कमेटी चयन करेगी आपको यदि आवेदन करना हो। इसके लिए सेवा देने की तैयारी हो। तो कितने आवेदन आएंगे? आएंगे या नहीं आएंगे? (प्रतिध्वनि– आएंगे) आप लोग भी आवेदन करोगे? कौन-कौन है यहां पर कि हम भी आवेदन कर देंगे प्रधानमंत्री पद के लिए। हम सेवा देना चाहते हैं। बहुत से लोग बैठे हुए हैं। वहां पर भी बहुत से आवेदन आए और समय पर व्यक्ति उपस्थित हुए। उनको एक बड़े हॉल में बैठाया गया और फिर दरवाजे को ऐसे बंद किया गया जैसे कुंडे लगाकर, ताले लगाकर बंद किए जा रहे हों। फिर अनाउंसमेंट किया गया कि भीतर रहते हुए जो ताले खोलकर, दरवाजे खोलकर बाहर आ जाएगा उसको प्रधानमंत्री बनाया जाएगा– प्रधान-दीवान बनाया जाएगा। लोग सोचने लगे कि कैसे बाहर निकल पाएंगे? कोई खिड़की भी नहीं है जिसमें तार डाला जा सके या कोई छेद भी तो नहीं जिसमें सरिया वगैरह डाला जा सकता है। लोग उपाय ढूंढ़ने लगे।

एक व्यक्ति सुबह उठा। नित्य-कर्म आदि किया। दरवाजे के पास पहुंचकर दरवाजा खींचा और खींचते ही वह दरवाजा खुल गया। वहां न तो बाहर से कोई कुंडा लगा हुआ था और न बाहर कोई ताला लगा था। केवल दरवाजे को ऐसे भिड़ाया गया था कि भीतर रहने वालों को ऐसा अहसास हो कि दरवाजा बंद किया हुआ है। बाकी सारे लोग उसी बंधन में रह गए और उन्होंने समझ लिया कि दरवाजा बंद है। दरवाजे पर कुंडा लगा है। वहां दरवाजे पर ताला जड़ा है। वे उस कुंडे और ताले को खोलने में दिमाग लगा रहे थे। पर वे अपने दिमाग को बांधे हुए थे।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। मन ने मान लिया कि दरवाजे पर ताला जड़ दिया गया है। बस वे उसी से बंधे रह गए। उससे उपरत नहीं हो पाए। चाहिए तो यह कि व्यक्ति वहां पुरुषार्थ करे। प्रयत्न करे तो मालूम पड़ेगा कि आगे क्या स्थिति है? उस व्यक्ति ने एक ओर से दरवाजे को

दबाया और दूसरे को खींचा तो दरवाजा खुल गया और वह बाहर आ गया। सारे लोग देखते ही रह गए कि यह क्या हो गया? हम लोग पुरुषार्थ कितना कर रहे हैं? हमारा यह दिमाग किस ओर लग रहा है? वसुदेव जी ने पुरुषार्थ किया कि दरवाजे खुल गए!

ये घटनाएं, ये तथ्य हमें यह दर्शाते हैं कि हमें प्रयत्न करना चाहिए। पुरुषार्थ करना चाहिए। गीता में जो बात कही गई है उसको ध्यान में लेना चाहिए कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'—कर्म करना तुम्हारा अधिकार है, फल की इच्छा छोड़ो। तुम अपने कर्तव्य का पालन करते हुए चले जाओ और कर्तव्य यदि तुम करते रहोगे तो तुम्हारा मार्ग अपने आप आगे से आगे, स्पष्ट होता हुआ चला जाएगा। वसुदेव जी को जाने में बड़ी असुविधा लग रही थी। किंतु जब वे चले तो सुविधाएं ही सुविधाएं मिलीं। कोई असुविधा नहीं हुई। आगे, नगर के द्वार पर पहुंचे। वहां पर भी ताला लगा हुआ है। कहते हैं कि 'हरि अंगूठा अड़िया'—कृष्ण वासुदेव का अंगूठा अड़ा और वह ताला भी खुल गया। आगे यमुना में भी रास्ता मिल गया। ये सारे घटनाक्रम हमने पढ़े होंगे, टीवी पर देखे होंगे। बहुत कुछ बात जानकारी में होगी। किंतु इससे हमने प्रेरणा क्या ली? हम प्रेरित कितने हुए? बंधन से मुक्ति पाने के लिए हमारे प्रयास क्या हो रहे हैं? हम क्या प्रयत्न कर रहे हैं? वसुदेव जी ने द्वार खोले तो खुल गए। प्रधानमंत्री की दौड़ में कितने लोग थे? उनमें से एक ने दरवाजे को खोला और वह खुल गया। हम क्या कर पा रहे हैं?

भगवान महावीर कहते हैं कि वही वीर प्रशंसनीय है या वही वीर प्रशंसित है जो बद्ध को मुक्त करता है, कराता है। भगवान ने दान देने वालों को वीर नहीं कहा है। वह दानवीर हो सकता है, कोई युद्धवीर हो सकता है। अमुक-अमुक में वीर हो सकता है। कोई तपस्या में तपवीर हो सकता है। किंतु आत्मा को मुक्त कराने वाला, बंधे हुए को छुड़ाने वाला चाहे वह अपनी आत्मा को बंधन से छुड़ावे, चाहे दूसरे की आत्मा को बंधन से मुक्त करने का प्रयत्न करे—वह प्रयत्न, वह पुरुषार्थ बड़ा महत्त्वपूर्ण है। और वह पुरुषार्थ जो करता है वह वीर है। वह तीर्थंकरों द्वारा भी प्रशंसित माना गया है। वह प्रशंसनीय है। सचमुच में ऐसे व्यक्ति की ही प्रशंसा की जानी चाहिए। वह सचमुच में अपने आप में वीर है। वह प्रशंसित है। हम नाना गुरु की जितनी प्रशंसा करें उतनी कम होगी। आज कई लोग कहते हैं अभी मुक्ति कहां है?

उस पर जम्बू जी ने ताले लगा दिए! वे ताले लगाकर नहीं गए। ताला तो हम अपने मन पर लगाए हुए हैं। जैसे प्रयत्न से दरवाजा खुला, वैसे ही मुक्ति का द्वार भी खोला जा सकता है। धर्माराधन का वही तो उद्देश्य है।

एक बात याद आ गई है। सादड़ी के लोकाशाह भवन में मूर्धन्य मुनिराजों का सम्मेलन था। लोकाशाह छात्रावास का भवन था जहां पर मुनिराज विराजे हुए थे। रात्रि की धर्म सभा में आचार्य पूज्य गणेशलाल जी म.सा. का आचार्य पद के लिए नाम प्रस्तावित हुआ। आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने उस प्रस्ताव को प्रस्तुत किया। आचार्य श्री उसके लिए तैयार नहीं हो रहे हैं और सभा बरखास्त हो गई। बीच में और भी कुछ बातें हुईं किंतु संक्षिप्त में कहना चाहूंगा। रात्रि में जब संतों ने बहुत आग्रह किया तो अंततोगत्वा आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. को मौन धारण करना पड़ा। दूसरे दिन संतों ने एक गीत बनाया और गाया– वे कोई साधुमार्गी संघ के संत नहीं थे। उन्होंने जो गीत गाया उसका मुखड़ा था–

'थाने मनावां गणपति देवता'

हे गणपति देवता! आपको मनाते हैं। लोग विवाह आदि या अन्य किन्हीं शुभ कार्यों में किसको मनाते हैं? किसको मनाते हैं? (प्रतिध्वनि– गणेश जी को) जब मनाते हैं तो बताओ ना। हां कहने में घबराना क्यों? सत्य को छुपाना क्यों? गणपति देवता को मना लिया। गणेश जी को मना लिया तो फिर कोई दूसरे देव टांग अड़ाएंगे नहीं। एक ही को मना लो। जैसे वहां पर गणपति देवता को मनाने लगे वैसे श्रमण संघ के मुनिराज मानते थे कि संघ की दृढ़ता-ठोसता के लिए एक गणपति आचार्य गणेश को मना लो– 'थाने मनावां गणपति देवता।' इसी प्रकार हम अपने पुरुषार्थ रूपी गणेश को मना लेंगे तो मोक्ष की चाबियां हमारे हाथ में आ जाएंगी।

बंधुओ! आप सोचें ये जो हमें महत्त्वपूर्ण अवसर मिला है प्रबल पुण्य के योग से मिला है। पता नहीं वापस कब मिलेगा? अभी हमें मिला है और एक मनुष्य जन्म ही है जिसमें कोशिश की जाए तो परमार्थ को साधा जा सकता है। परमार्थ का अर्थ क्या होता है? अर्थ यानी प्रयोजन और परम यानी सबसे ऊंचा। अर्थात् सबसे ऊंचा प्रयोजन, जो सबसे बड़ा हो। उसको सिद्ध कब किया जा सकता है? इस मनुष्य जन्म में ही किया जा सकता है। देवलोक में रहने वाले देवता को भी यह मौका नहीं मिलता है और नरक

में रहने वालों को तो अवसर मिलता ही कहां है? जब देवों को ही उपलब्ध नहीं है फिर पशु-पक्षी लाभान्वित होंगे ही कहां से? इसी मायने में मनुष्य जन्म को सबसे ऊंचा बताया गया है। मनुष्य जन्म को सबसे ऊंचा जन्म कर भोग भोगने के लिए नहीं बताया है। भोग तो हमारे से ज्यादा देवलोक के देव भोगने में समर्थ हैं। हैं या नहीं? आपकी उम्र कितनी है? (प्रत्युत्तर– 100 वर्ष) 100 वर्ष, वह भी यदि जी लें और 100 वर्ष भी मिल जाए तो क्या होगा? हमारे एक श्रावक जी हैं, 107-108 वर्ष के हो गए हैं। शांदला का शाहजी परिवार जो आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म.सा. की दीक्षा में अग्रसर रहा। शाहजी का नाम क्या है? ध्यान में है क्या किसी के? वे रतलाम चातुर्मास में मिले थे। उस समय 106-107 वर्ष के बताए जा रहे थे। नाम है– श्री गेंदालाल जी। 100 से ऊपर की जिंदगी जी रहे हैं। इतनी उम्र के कितने लोग मिलेंगे?

कुछ दिन पहले एक श्रावक जी आए और मुझे कहने लगे कि मैं 104 वर्ष का हो गया हूं। मैंने उनसे पूछा कि आपकी जन्मतिथि क्या है? उन्होंने कहा कि जन्म तिथि तो मुझे याद ही नहीं है। फिर कैसे हुए 104 वर्ष के? कहने का आशय 100 वर्ष से ऊपर जीने वाले मौजूद हैं। 100 के निकट मोरारजी भी रहे लेकिन वे 99 पर ही रह गए। शताब्दी पार नहीं हो पाई। 99 के चक्कर में रह गए। अच्छा, ये समझ लो कि हमारे अधिक से अधिक 100 वर्ष हो और ज्यादा से ज्यादा कितनी पाएंगे? तीन पल्योपम तो युगलिक मनुष्यों की हो सकती है। किंतु देवलोक के देवों की अधिकतम 33 सागरोपम, उसके सामने 3 पल्योपम कितना-सा है? 33 सागरोपम के सामने तीन पल्योपम कितना-सा है? एक सागरोपम की संख्या कितनी होती है? इसे जानने के लिए पहले पल्योपम को जानना होगा। उसकी विस्तृत व्याख्या है। उसमें असंख्यात वर्ष हो जाते हैं। ऐसे करोड़ पल्योपम को एक करोड़ पल्योपम से गुणा करने पर जो गुणनफल आए उसमें दस का गुणा करने पर जो संख्या आती है, उतने वर्षों का एक सागरोपम होगा। जो 3 पल्योपम से करोड़ों गुणित हो जाती है। ऐसे 33 सागरोपम के सामने हमारा समय पूरे विश्व के नक्शे में जोधपुर के स्थान जैसा होगा।

पूरे विश्व के नक्शे में जोधपुर को कितनी जगह मिलेगी? एक सूई की नोक जितनी ही मिलेगी या वह भी नहीं। मिलेगी तो एक सूई की नोक जितनी जगह मिलेगी उससे ज्यादा नहीं। वे देव 33 सागरोपम तक सुख का भोग कर

सकते हैं तो हमारी जिंदगी क्या है उनके सामने? उस मायने में तो मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता कुछ भी नहीं है। कोई कहे, हम तो राजभोग और कतली खा रहे हैं इसलिए हमारी जिंदगी से तो मनुष्य जन्म ऊंचा है। तो उसमें यह कोई ऊंचा नहीं है क्योंकि खाने-पीने की एक से एक बढ़िया चीजें पशुओं को भी मिलती हैं। अभी-भी सामान्य आदमी को जो चीजें नहीं मिले वे पशुओं को मिल रही हैं– डबलरोटी, दूध, बिस्किट। पता नहीं क्या-क्या मिलता है? ऐसे बहुत-से पशु-पक्षी मिलेंगे जिनको काजू-बादाम मिल रहे होंगे। जबकि कई मनुष्यों को सुख से रोटी ही नसीब हो रही है या वह भी नहीं हो रही? इन सारे कार्यों में मनुष्य को श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है। मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता इसमें है कि वह आत्मा का कल्याण कर सकता है। वह परमार्थ को साध सकता है। अपने परम प्रयोजन को साधने की शक्ति, साधने का अवसर यदि किसी को मिला है तो किसको मिला है? वह भाग्यशाली कौन है? जोर से बोलो वह भाग्यशाली कौन है? (प्रतिध्वनि– मनुष्य) दुनिया में एकमात्र मनुष्य ही है और क्या वह मनुष्य चक्रवर्ती होना जरूरी है? वह देव होना जरूरी है? वह राजा होना जरूरी है? प्रधान होना जरूरी है? क्या होना जरूरी है? बताओ आप, क्या होना जरूरी है?

सदाचारमय जीवन होना जरूरी है और सदाचार की अवस्था में बढ़ते हुए साधु जीवन सिद्धत्व का द्वार है। उसमें प्रवेश करके आगे चलेंगे। साधुत्व के दरवाजे को खोलकर प्रवेश करेंगे तो सिद्धि में प्रवेश कर पाएंगे। यह मनुष्य जन्म, यह केवल एकमात्र मनुष्य जन्म है। यों कहिए कि यह हमें बड़े सौभाग्य से मिला है। रही हुई शक्ति का उपयोग, टॉर्च में रही हुई बैटरी का उपयोग हमें किसमें करना है? जो बंधे हैं, उनको मुक्त कराने में करना है। या उनको और बेड़ियों में, हथकड़ियों में जकड़ने का काम करना है? प्रसन्नचंद्र राजर्षि जिस समय अपने बेटे की फिक्र में आ गये, अपने राजकुमार के मोह-ममत्व में आ गए, उस समय मन में क्या प्रक्रिया होने लग गई? अपने मंत्रियों का घमासान करने लगे और भयंकर युद्ध छिड़ गया। वह नरक के दलिकों को इकट्ठा करने लगे। इसी बीच हवा का रुख बदला। शुभ अध्यवसायों का झोंका आया कि अरे! तुम क्या कर रहे हो? माथे पर हाथ गया, मैं कौन हूं? मैं साधु! और मैं क्या कर रहा हूं? यह क्या हो रहा है? तुम क्या कर रहे हो? पश्चात्ताप की हवा चली। फिर पश्चात्ताप की हवा ने कहां से कहां पर पहुंचा दिया? केवली बना दिया। केवलज्ञान की प्राप्ति करा दी। पाप के अनुसार यदि पश्चात्ताप है तो

सिद्धि हो जाएगी। कल एक बहिन ने प्रश्न पूछा था कि क्या पश्चात्ताप से शुद्धि होती है? पाप के अनुरूप पश्चात्ताप है तो होगी। किंतु केवल मगरमच्छ के आंसू हैं तो उन मगरमच्छ के आंसुओं से कल्याण होने वाला नहीं है।

जंबू कुमार अपनी पत्नी से कहते हैं– प्रिये! तुम्हारा मेरे प्रति प्रेम है, प्यार है तो सच्चे दिल से सोचो कि सही क्या है? क्या पुण्य से मिला हुआ मनुष्य जीवन भोगों में झोंक देना चाहिए और तुम्हारे साथ भोगों में झोंक दूं! क्या यही हमारा सच्चा स्नेह होगा? यह मेरा सच्चा स्नेह नहीं है इसलिए सही बात समझो और विचार करो। मनुष्य जीवन की सार्थकता की दिशा में आगे बढ़ेंगे तो तुम्हारा और मेरा सच्चा प्रेम हो सकेगा। अन्यथा यह संसार का प्रेम! यह कोई सच्चा प्रेम नहीं है। यह प्यार तो शरीर जब तक है तब तक मौजूद रहेगा। शरीर के चले जाने के बाद कौन किसको याद करने वाला है? 'प्रीत सगाई जग मां सहु करे, प्रीत सगाई न कोय।'

कवि आनन्दघन जी कहते हैं कि जो प्रीत सगाई दुनिया में चलती रहती है वह सच्चे मायने में सगाई नहीं है। प्रीत सगाई नहीं है। प्रीत सगाई वह है जैसे मीरा करती है। जैसे मृगावती ने भगवान महावीर के साथ प्रीत की। वह प्रीत, प्रीत है। वैसी प्रीत हो जाए वह निरुपाधिक है। बाकी संसार का प्रेम-प्यार-राग यह सोपाधिक होता है। उपाधि वाला होता है। संसार में बांधने वाला होता है। मुक्ति कराने वाला नहीं होता है। किंतु आत्मा की परमात्मा से की गई प्रीत निरुपाधिक होती है। इसलिए हम सदुपयोग करें इस मनुष्य जन्म का। यदि पशु की तरह जीते रहेंगे और मनुष्य जन्म को भोगों के हवाले कर दिया, फिर तो मानव होना मानव नहीं होना, क्या फर्क पड़ेगा? पशुओं की तरह खाने-पीने में लगा दिया तो एक दिन राम नाम (प्रतिध्वनि– सत्य है) राम नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है, यही सुनने को मिलेगा। किंतु सुनने के लिए, सुनने वाला शरीर में मौजूद नहीं रहेगा। मनुष्य जीवन का क्या निचोड़ निकाला? क्या निष्कर्ष निकाला? यह कि मनुष्य जन्म पाया और व्यर्थ में खो दिया। यह मनुष्य जीवन की बैटरी मिली है, जो ऊर्जा मिली है, जो अवसर मिला है इस अवसर को ऐसे नहीं खोना चाहिए। अग्नि में कितना भी ईंधन डालें, वह बुझने वाली नहीं है। वैसे ही विषय भोग भोगते जाएं, इससे तृप्ति नहीं होने वाली है। कोई सोचे कि भोगों को भोग लूंगा तो समाप्त हो जाएंगे। भोग समाप्त नहीं होंगे, जीवन समाप्त हो जाएगा। जवानी व्यर्थ में ही चली जाएगी।

बन्धुओ! भोगों की अभिलाषा, निरंतर बढ़ती जाती है और आदमी की आयु घटती जा रही है। आयु बढ़ रही है या घट रही है? हम कहते हैं कि इतने वर्षों के हो गए। जो आयु है वह कम कितनी हो गई है? घट रही है या बढ़ रही है? ज्यों-ज्यों ऊंचे हो रहे हैं, बढ़ते जा रहे हैं या घटते जा रहे हैं? (प्रत्युत्तर– घटते जा रहे हैं) किंतु अभिलाषा, लालसा, तृष्णा निरंतर बढ़ती जा रही है। शरीर कितना भी क्षीण हो जाए किंतु अभिलाषा क्षीण नहीं हो रही है। वह तो तीव्रता से बढ़ती रहती है। अतः उचित है कि हम अपनी शक्ति को बंधन में नहीं लगाते हुए कर्मों को काटने में, कर्मों से बन्धी आत्मा को मुक्त कराने की दिशा में लगाएं। यही उपादेय होगा। इसी से प्राप्त श्रेष्ठ मानव जीवन को सार्थक कर पाएंगे। इतना कहते हुए विराम।

24 अगस्त, 2019

7

कठिनाई में शहनाई की गूंज

श्रीमद् उत्तराध्ययन में सूत्र है– 'किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थ-ऽहियासए।' इस ओर जब ध्यान गया तो एक विचार मन में पैदा हुआ कि सुख और दुःख किसी घटना में, किसी पदार्थ में नहीं है। वह सुख और दुःख अधिकांशतया हमारी मानसिक कल्पनाएं हैं। हमारा मन जिसमें तृप्त होता है, जो हमें सुहाने लगते हैं, उसे मन सुख मान लेता है और जिससे संतप्त होता है, उसको दुःख मान लेता है। सुख थोड़ा हो तो उसको भी विस्तृत किया जा सकता है और बहुत ज्यादा कष्ट को भी संक्षिप्त किया जा सकता है। एक व्यक्ति सहिष्णुता के अभाव में, सहनशीलता की कमी से, थोड़ा-सा कुछ हो जाये तो चिल्लाने लगेगा। हाय-हाय करने लगेगा कि मेरे साथ ऐसा हो रहा है, वैसा हो रहा है। वैसा का वैसा ही दूसरे के साथ भी हुआ पर वह चिल्लाता नहीं है। हो-हल्ला करता नहीं है। शांत रहता है। उदाहरण हम लेते हैं, लोहे का और सोने का। चोट लोहे पर भी पड़ती है, चोट सोने पर भी पड़ती है। लोहे पर चोट पड़ती है तो आवाज होती है और सोने पर चोट पड़ती है तो उतनी आवाज नहीं होती। एक, पतरों का छपरा है। दूसरा, आरसीसी का है। पतरों के मकान पर पानी गिरेगा, वर्षा की बूंद गिरेगी तो वह तड़-तड़ की आवाज करने लगेगा। आवाज होने लगेगी। और आरसीसी पर गिरने वाली बूंदें उतनी ही तेजी से गिर रही हैं। उतने ही वेग से गिर रही है किंतु आरसीसी की उस छत से आवाज नहीं आएगी। या आएगी तो बहुत धीमी आएगी जो आपके कार्य में कोई रुकावट या बाधा पैदा करने वाली नहीं बनेगी। वर्षा बरसने से उत्पन्न दोनों परिस्थितियां समान है। वर्षा समान बरस रही है। ऐसा नहीं है कि यहां धीमे से बरस रही है और वहां बड़े जोर से बरस रही है। फिर भी हमें दोनों में बड़ी भिन्नता नजर आती है। यह बात इस सूत्र से, इस गाथा से बहुत अच्छी तरह समझ में आती है। 'एवं तत्थ-ऽहियासए' यदि कष्ट है तो उसको शांतिपूर्वक सहन करो।

यद्यपि यह गाथा शय्या परीषह के प्रसंग से आई है कि कभी रुकने का मकान जिसमें मुनि को रात्रि निवास करना है वह अनुकूल न हो। ऊबड़-खाबड़ हो। गर्मी वाला हो या सर्दी वाला हो। जैसा भी हो वहां रहते हुए रात संक्लेश में व्यतीत नहीं करे। 'अरे! कैसा मकान मिल गया। एक मकान भी ढंग का नहीं मिला!' रोना रोओगे तो भी रात उसी में निकालनी है। रात कहां निकालनी है? और मन को स्थिर कर लिया तो भी रात वहीं निकालनी है। 'किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थ-ऽहियासए'—एक रात मेरा क्या बिगाड़ेगी? रातभर तो रुकना है, फालतू का टेंशन क्यों मोल लूं। देखते-देखते ही रात निकल जाएगी। ऐसा विचार करके उसको सहन करो। ये जो बात बताई, इससे बहुत स्पष्ट होता है कि व्यक्ति बहुत सारे दुःखों को, बहुत सारे कष्टों को सहने की क्षमता रखता है। कितने भी कष्ट आ जाए उसमें सहन करने की क्षमता है यदि वह अपने घट का पट खोल देता है। नहीं तो आवाज निकलनी शुरू हो जाएगी, अरे! यह क्या हो गया। उसमें प्रतिक्रिया चालू हो जाएगी। और प्रतिक्रिया? वह हमारे भीतर की कमजोरी है। हमारे भीतर असहनशीलता/असहिष्णुता है। अन्यथा हमारे भीतर प्रतिक्रिया पैदा नहीं होती। कुल मिलाकर बात भगवान यह कहना चाह रहे हैं कि कैसी-भी परिस्थिति तुम्हारे सामने आ जाए, तुम्हारे सामने कैसा-भी कष्ट आ जाए उसमें तुम यह सोचने का तरीका बदल लो फिर पूरी सृष्टि बदल जाएगी। तुम सोचने के तरीके को यदि बदलोगे तो वह कष्ट तुम्हें दुःखी नहीं बनाएगा। वह कष्ट तुम्हें पीड़ित नहीं करेगा। और यदि सोचने के तरीके को नहीं बदला तो? 'अरे! कितनी पीड़ा है, कितनी गर्मी है, ऐसे ही विचार यदि तुम्हारे मन में बने रहे, बनते रहे तो संक्लेशित हो जाओगे और संक्लेश से लाभ क्या होगा, इस पर विचार करो।

तुमने हाय-हाय कर लिया, उससे परिणाम क्या होगा? क्या हाय-हाय करने से वह पीड़ा कम हो जाएगी? क्या हाय-हाय करने से कष्ट कम पड़ जाएगा? जिस मकान में रुके हैं, गर्मी बहुत है या मकान में हवा नहीं आ रही है, अरे! मकान ऐसा है, वैसा है। गर्मी बहुत है, गर्मी बहुत है इसकी एक माला, दो माला, तीन माला गिन लोगे। तीन नहीं एक हजार या एक लाख का जाप भी कर लोगे। तो क्या वह गर्मी कम हो पाएगी? घट जाएगी? हमारे भीतर ठंडक आ जाएगी? आप जान रहे हैं कि कुछ होना है ही नहीं तो फिर क्यों उसके लिए मन को संक्लेशित करना? मन को संक्लेशित करने से क्या

मतलब? स्वयं में क्लेश पैदा करके, स्वयं को दुःख दे रहे हैं और नए कर्मों का उपार्जन करते हुए चले गये तो वर्तमान में तो दुःखी हो ही रहे हो भविष्य के लिए भी दुःख के ही बीज बोने का काम कर रहे हो। वर्तमान में दुःखी हो गए, मन में पीड़ा का अनुभव कर ही रहे हैं और भविष्य के लिए भी कौन-से बीज बोए जा रहे हैं? दुःख के बीज बोए या सुख के बीज बोए? उसी स्थान पर सोचें, भाई! साधु जीवन में ये ही है तो आनन्द है। ये तो साधु जीवन है, साधु जीवन ही नहीं श्रावक को भी क्या-क्या नहीं सहना होता है? क्या-क्या कठिनाई श्रावक नहीं झेलता है? जहां पर पांच पैसे की आमदनी हो रही है, जहां पर थोड़ा-सा भी मुनाफा दीख रहा है वहां बहुत सारी कठिनाइयों को झेलने के लिए तैयार रहता है। किंतु धर्म क्षेत्र में हम कुछ भी झेलने को तैयार नहीं हैं। म.सा.! संवर तो कर लूं पर गर्मी बहुत लगती है। यहां मच्छर बहुत हैं। और घर में मच्छर हो तो क्या करोगे? (जोर देते हुए) घर में मच्छर हो तो क्या करोगे? (प्रत्युत्तर—ए.सी. लगा लेंगे) आप कह रहे हो ए.सी. चला लेंगे। और क्या करोगे? ए.सी. नहीं है किसी के घर में तो क्या चलाओगे? आप कहेंगे कि पंखा झल लेंगे। बिजली चली गई फिर? अब कहोगे कि हाथ वाला पंखा झल लेंगे। ये हाथ दुःखने लग जाएगा। कितनी देर झला पाओगे? कभी अनुभव किया कि कितनी देर झल पाता है? जो भी पूछो दिमाग चलता है, जवाब आता रहता है। बहुत अच्छा है हर प्रश्न का उत्तर आ जायेगा पर क्या पंखा करने से गर्मी कम पड़ जाएगी? हमको थोड़ी देर के लिए राहत भले अनुभव हो जाए।

ये सारी दुविधा हमने पाली है। जिस समय पंखे नहीं थे। जिस समय ए.सी. नहीं था उस समय भी लोग जीवन जी रहे थे या नहीं जी रहे थे? (प्रत्युत्तर—जी रहे थे) आपसे ज्यादा सुख में जी रहे थे या दुःख में जी रहे थे? (प्रत्युत्तर—सुख में) आप कह रहे हो सुख में जी रहे थे तो फिर आपने दुःख मोल क्यों लिया? वे ज्यादा सुख में जी रहे थे तो आपने दुःख मोल लिया क्यों? हम जितनी सुविधाओं में जीते हैं, उतनी ही हम अपने लिए दुविधाएं मोल लेते हैं। हम जितनी सुविधाओं की चाह करते हैं, उतनी ही हमें दुविधाओं का सामना करना पड़ता है। यदि सुविधा में नहीं रहे होते और सहज में रहे होते, कुदरत के साथ रहे होते, प्रकृति के साथ रहे होते तो हमें कोई भी पीड़ा नहीं होती। यही राजस्थान, चाहे जोधपुर-बीकानेर, चाहे जैसलमेर-चूरू है, इनमें रहने वाले गर्मी को सहन करते या नहीं करते? कर रहे हैं ना? गर्मी में भी

लोग खेत का काम करते हैं या नहीं करते हैं? सारे लोग ए.सी. में जाकर बैठते हैं क्या? उनको गर्मी सताती नहीं है पर हमें वह गर्मी सता रही है। एक बार डॉक्टर ने जांच के लिए कहा तो जांच के लिए गए हॉस्पिटल में। भीतर गए तो ए.सी., जांच रूम में गए तो ए.सी. और जब वापस बाहर निकले तो भयंकर गर्मी। ए.सी. रूम से निकलोगे तो गर्मी कैसी लगेगी? गर्मी वैसी भयंकर नहीं है किंतु एक बार उसको लगेगी और दो मिनट के बाद वैसी गर्मी नहीं लग रही है। अनुभव तो किया होगा? ए.सी. गाड़ी में बैठे हो। गाड़ी चलती है तो अलग स्थिति होगी पर जब नीचे उतरोगे तो प्रथम बार कैसा लगेगा? 'अरे! इतनी गर्मी!' और दो-चार मिनट के बाद वापस सब सामान्य लगने लगेगा।

ये धर्म क्षेत्र आपको कुदरत के साथ जीना सिखाता है। यह कि कुदरत के साथ जीयें और कुदरत के साथ जीओगे तो ये ऊंच-नीच, गर्मी-सर्दी होनी ही है। यदि ये चीजें नहीं होती तो भी जीवन सुखी नहीं होता। यदि 12 महीने ही सर्दी पड़ती तो क्या सुखी जीवन जी सकते हैं? 12 महीने ही यदि वर्षा होती रहे तो? बापजी! 12 महीने छोड़ो, एक महीना ही, एक महीना क्या एक दिन की वर्षा ने जोधपुर के हाल बेहाल कर दिए। 2-3 दिन वर्षा का ऐसा रुख रहा तो हाथ जोड़ने लग गए लोग! अखबार में आने लग गया कि साल भर की पूरी वर्षा एक दिन में हो गई। और कितने स्थानों पर नुकसान की स्थितियां बन गईं? न हमें वर्षा ही प्रिय है, न हमें सर्दी प्रिय है, और न ही गर्मी प्रिय है। सर्दी होती है तो लगता है धूप की किरणें मिल जाए और एक दिन अच्छी धूप मिल जाए तो तपा लेते हो शरीर को– आहा! क्या धूप आ गई है! दो दिन, तीन दिन, चार दिन से शीत हवा चल रही है। शीत लहर चल रही है। सूर्य के दर्शन नहीं हो रहे हैं। मावठ जैसी स्थिति बन रही है और एक दिन अचानक सूर्य निकले तो उसकी किरणें कैसी लगेंगी? (प्रत्युत्तर– अच्छी लगेगी) सुहावनी लगेगी। और जेठ का महीना हो तो आठ बजे/नौ बजे के बाद तो किरणें ऐसी हो जाती हैं कि सहन ही नहीं होती हैं। किरणें वैसी ही हैं, फिर यह अंतर क्यों आ गया? यदि उनको भी हम सहन करने लगें? तो हमारे शरीर में भी वह क्षमता है कि वह उन किरणों को सहन कर सकता है। किंतु हम जब ए.सी. और पंखे, ये सब लगा लेते हैं तो हमारी शरीर की जो सहन करने की क्षमता है वह कम पड़ जाती है।

जब तक विज्ञान की ये सुविधाएं हर जगह उपलब्ध नहीं थी, जिस समय नहीं थी तो हम इतने दुःखी नहीं थे। इन सुविधाओं से हमें क्या शिक्षा

लेनी चाहिए थी? और हमने इनसे क्या लिया? हम इन पर निर्भर नहीं हैं। ये चीजें हैं तो हम प्रसन्न हैं और चीजें नहीं हैं तो भी प्रसन्न रहें। किंतु हमारी मति उसका खूब दोहन करने लगी और परिणामस्वरूप अपनी शक्ति को हमने कमजोर कर लिया। पहले से आज लोगों में शारीरिक शक्ति/बल बढ़ा है या कम हो गया है? कितने मील लोग चलते थे? लोग सुबह उठते और खेत जाना है, या कहीं उगाही के लिए जाना है तो दस-दस मील पैदल चले जाते थे। मणिलाल जी घोटा परसों कहने लगे कि म.सा.! व्याख्यान के बाद देखते हैं लोगों को। यहां गाड़ियां खड़ी हैं और ये भोजनशाला कितनी दूर है? वृद्ध लोगों के लिए तो समझ में आता है। बूढ़े आदमी चढ़े या नहीं चढ़े, जवान पहले चढ़ेगा। वहां तक भी किसी की पैदल जाने की नीयत नहीं है। ये ज्यादा सुविधाएं...! आप देखो या थोड़ा-सा विचार करो, वापस रिवर्स होकर। ये सुविधाएं आपको कब से प्राप्त हुईं कि संघ वाले आपको ले जाएंगे। पहुंचाएंगे-लाएंगे, ले जाएंगे। मैं जहां तक सोचता हूं बंगाल में, कोलकाता चातुर्मास के समय में। अब वहां पर क्या व्यवस्था थी मुझे पता नहीं। कोई कहता है पैसे लेते थे। कोई कहता है पैसे नहीं लेते थे। जो भी रहा होगा उस समय। उसके बाद जब चेन्नई की ओर जाने का प्रसंग बना, चेन्नई चातुर्मास हुआ। वहां सबसे बड़ी प्रॉब्लम– भाषा की थी। तब संघ वालों ने देखा कि आने वाले परेशान हो जाते हैं। उनकी भाषा न गाड़ी वाला समझ रहा है, न टेम्पो वाला समझ रहा है। तब उन्होंने गाड़ियों की सुविधा कर दी। अब सभी इसी सुविधा के आदी हो गए। और अब हर संघ सोचने लगा कि पूर्व में चातुर्मासिक क्षेत्रों ने दर्शनार्थियों को सुविधा दी तो हम भी सुविधा दें। संघ सुविधा करने लग गए और आप लोग उसका उपयोग करने लगे। वहां भाषा नहीं समझते थे तो उसका उपाय निकाला उसे ठीक ठहरा सकते हैं। पर जहां भाषा समझ रहे हैं। जहां हमारी शक्ति है। जहां हमारे भीतर इतनी ताकत है कि हम पैदल जा सकते हैं। फिर गाड़ी का उपयोग क्यों करना? फिर हम क्यों दोष लगावें? क्यों जीवों की विराधना करें?

यह बताओ कि यदि आप पैदल चलोगे और कीड़े-मकोड़े नजर में आएंगे तो उन्हें बचा सकोगे या गाड़ी में चलोगे तो कीड़े-मकोड़े को बचा सकोगे? मेरी तरफ देखो। दूसरी बात, वैसे भी चलते हुए कीड़े-मकोड़े कहां बचा लेते हैं? एक-दूसरे से बातें करते हुए चलते हैं। गप-शप लड़ाते हुए चलते हैं। नीचे तो देखते ही कम हैं। फिर कीड़े-मकोड़े कैसे बचाओगे?

फिर भी पैदल चलोगे तो हानि कम है। कई त्रस-स्थावर जीवों का बचाव हो सकेगा। क्या वह गाड़ी पर चलने से हो सकता है? हां, दूसरे गांव जाना हो, ज्यादा लंबा सफर करना है तो वहां पर लाचारी है कि अरे! कैसे इतना लंबा सफर करें। अथवा लाचारी है कि पैदल नहीं जा सकते हैं। और न जा सकें जैसी बात नहीं है। अभी रामदेवरा जाना हो तो? कौन-सा भी देवरा? तब हमारे भीतर ताकत आ जाती है। तब हम पैदल जाने के लिए तैयार हैं। मैं समझ रहा हूं और मैं यह नहीं कहता कि हर वक्त पैदल चलें किंतु जहां पर संभव है और इतनी कोई जल्दी भी नहीं हो। इतना कोई अर्जेंट भी नहीं है कि आप भोजनशाला सबसे पहले पहुंचें। अरजेंट है क्या? नहीं है तो फिर क्यों दोष लगाना? जिनके पैर काम कर रहे हों। जिनके घुटने, कमर में कोई दर्द नहीं है। जो पैदल चल सकते हों– कम-से-कम आज भोजनशाला के लिए वाहनों का प्रयोग वे नहीं करेंगे। हाथ खड़ा करो पच्चक्खाण करा देता हूं। देख लो, सोच लो। बहिनों के हाथ कम खड़े हुए हैं। बहिनों के कमर में दर्द ज्यादा ही होता है। (बहुल भाग पच्चक्खाण लेता है)

मुझे कोई जोधपुर संघ वालों ने नहीं कहा। जोधपुर वालों ने नहीं कहा कि गाड़ियां कम पड़ रही हैं इसलिए आप ऐसा कुछ बोलो। पच्चक्खाण करवा दो। मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। ये तो प्रसंगतः बात आ गई कि हम यदि अपनी शक्ति को बनाए रखना चाहते हैं तो हमें अपनी शक्ति पर भरोसा रखना चाहिए। अब एक और बात बता रहा हूं– आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. के जीवन से जुड़ी हुई घटना है, संवत् 2006 की। अभी क्या चल रहा है? 2076। कितने साल पहले की बात है? (प्रत्युत्तर– 70 साल) लगभग 70 साल पहले की बात है। उज्जैन से विहार हुआ। आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. का चातुर्मास खुला। जयपुर के लिए उज्जैन से विहार करके पधार रहे थे और आगे गांव की स्थितियां आहार-पानी के हिसाब से इतनी सुलभ नहीं थी। गोचरी के बिना तो फिर भी थोड़ा चल जाए किंतु गर्मी के समय में, गर्म पानी/धोवन पानी की अपेक्षा होती है। अतः आगे के गांवों की स्थितियों को देखते हुए दो-दो, तीन-तीन संतों के सिंघाड़े बनाए और उनका अलग-अलग विहार होने की स्थिति बनी। भवानी मंडी से मुनिश्री नानालाल जी म.सा. ने दो-तीन संतों के साथ विहार किया। जानकारी करने पर मालूम पड़ा कि चार-पांच मील के बाद एक कोई रुकने की जगह है, फॉरेस्ट विभाग की कोई कुटिया या कोई बंगला है– वह स्थान है

रुकने के लिए। उन्होंने उस ओर विहार कर दिया। शाम का समय था, गर्मी का समय था। भवानी मंडी से आगे गए। चार-पांच मील की दूरी पर जो जगह कही गई थी वहां पहुंचे तो वहां ताला लगा हुआ था। समय भी ज्यादा नहीं। सूर्य अपनी गति से पश्चिम की ओर जा रहा है। वहां कोई भाई भी नहीं कि जिससे पूछताछ की जा सके। ध्यान देना विषय पर, गौर करके। गौर करना अच्छी तरह से, वहां कोई भाई नहीं था। आज हमारे श्रावक तो सुविधा करते हैं कि साधुओं का विहार हो तो भाई चाहिए। सतियों का विहार हो तो भी भाई चाहिए। बिना भाई के हमारी गाड़ी आज तो बढ़ने के लिए तैयार नहीं है।

कोई भाई नहीं, नया इलाका। पहले कभी विचरण हुआ नहीं। जिस इलाके में विचरण होता रहा है वहां जाने में इतनी दिक्कत नहीं है। और नया इलाका है तो वहां पर कोई भाई साथ में चलने की कोशिश करता है कि म.सा. यह तो नया इलाका है। यहां तो जरूरत होनी चाहिए। जहां पर वे पहुंचे ना कोई देखने वाला, ना कोई परखने वाला। आगे कितने मील है? कोई अता-पता नहीं है। 5-7 मील निकल जाए या ज्यादा भी निकल जाए। वहां कोई भाई नहीं है। दूर-दूर तक कोई भाई नहीं है, किससे क्या कहें? देखें तो पेड़ भी नजर नहीं आ रहा है। एक पेड़ नजर आया, वहां पहुंचे तो पता चला कि वहां रुकने की गुंजाइश नहीं है। सूर्य भी कम रह गया और थोड़ी दूरी पर दूसरा पेड़ नजर आ रहा है। कदम बढ़े और वहां पहुंचे तो पेड़ अनुकूल मिल गया। उसकी छाया और नीचे की जगह अनुकूल मिल गई किंतु कोई इंसान नहीं है। पशु भी एकाएक नजर आ ही नहीं रहे हैं ऐसा जंगल। और पहली बार सिंघाड़ापति बने थे। मुनि श्री नानालाल जी के लिए ये पहला चांस था और वो कहते हैं ना कि 'सिर मुंडावे और ओळा पड़े' और आज पहला ही अलग विहार हुआ सिंघाड़ापति बनकर और आज ही भयंकर परीषह सामने आ गया। किंतु उन्होंने अपने अदम्य उत्साह के साथ किसी प्रकार का भय नहीं खाया और रात गुजारनी है तो गुजारनी है। कोई दूसरा चारा है नहीं। कोई दूसरा विकल्प नहीं है। सब विकल्प खत्म। जब हमारे सामने विकल्प होते हैं तो हम पूछते हैं और सोचने लग जाते हैं। किंतु अब कोई विकल्प ही नहीं है। न दूसरी जगह है, न कोई कमरा है, न कोई रूम है। संतों ने सामान रखा, थोड़ी प्रतिलेखन पूरी की और प्रतिक्रमण प्रारंभ किया और रात को सोये भी। हो सकता है मन में थोड़ा विचार भी रहा हो कि रात्रि है, जंगल का क्षेत्र है, जंगल का काम है। किंतु कितना भी आदमी सोचे, इधर शरीर की थकान है

तो नींद आएगी। आराम की नींद आ गई। 'किमेगरायं करिस्सइ' एक रात मेरा क्या बिगाड़ेगी? यही बात हमें सोचनी चाहिए।

कभी भी हमारे सामने कोई कठिनाई आ जाए। कोई कष्ट आ जाए। कोई पीड़ा आ जाए। कोई तकलीफ आ जाए तो ये कितने समय तक रहेगी? ऐसा विचार ना भी आए तदपि सोचें यह भी नहीं रहेगी। यह भी रहने वाली नहीं है। जो तकलीफ आई है यह भी नहीं रहेगी। हम देखते हैं कि सूर्योदय होता है और अस्त हो जाता है। हम देखते हैं कि वर्षा होती है, रुक जाती है। हम देखते हैं कि सर्दी आती है, चली जाती है। तो मेरे पर जो कष्ट आया है, जो तकलीफ आई है वह भी रहने वाली नहीं है। मेहमान कोई आ जाए घर में, हम उसका स्वागत करते हैं। दो प्रकार के विचार हो सकते हैं—'अरे! उठो नी' ये कहां से आ गया? यह विचार भी हो सकता है। और एक हर्ष भी हो सकता है कि आहा! मेरे घर पर अतिथि आए हैं। आज मेरे घर अतिथि-मेहमान के पांव पड़े हैं। या कहते हैं कि अतिथि और मेघ तो कभी-कभार ही आने वाले होते हैं। मेह-पावणा हर समय आने वाले कहां हैं? ऐसे अतिथि का आना पुण्य की बात है। अन्यथा कहां से मिलेंगे? अतिथि पड़े कहां हैं? कहां मिलेंगे? 'अतिथिः देवो भव' हमारी भारतीय संस्कृति की उदात्त भावना रही है। जैसे अतिथि का, मेहमान का स्वागत करते हैं वैसे ही आने वाली कठिनाइयों के साथ हमें अपने संबंध स्थापित करने चाहिए। ये कठिनाई आई है पर कितने दिन की होगी? मेहमान कितने दिन के होते हैं? पहले दिन का पावणा और दूसरे दिन अलखांमणा। क्या होता है अलखांमणा? आज के लोग नहीं जानते हैं, क्या होता है? जोधपुर वालों के लिए कोई नई बात नहीं है। ये मारवाड़ में रहते हैं इसलिए इनको इसका अर्थ मालूम है। पर जोधपुर के बाहर वालों को? अलखांमणा मतलब अच्छा नहीं लगना।

पहले दिन स्वागत और दूसरे दिन– आपरो टिगट हो ग्यो कईं? कब की टिकट है? टिगट पहले करा लूं कईं कम पीसा में हो जाई। प्लेन की टिकट भी होती है। यदि कोई ऑफर निकला हो तो कम पैसों में हो जाएगी। और हाथों-हाथों जाना हो तो? उधर प्लेन उड़ने की तैयारी कर रहा है, इधर बुकिंग बंद होने का टाइम हो गया। फिर आपको जाना है। एक घंटे बाद का प्लेन है। फिर प्लेन के टिकट का किराया बढ़ेगा या घटेगा? बढ़ता है। वह किराये को जितना बढ़ाए, जितना लगाए उनके ऊपर है, उनकी मरजी है। जाने वाले की जरूरत है तो चले जाएंगे नहीं तो बैठे रहो। पहले जब उसकी

गरज थी तो कम पैसों में उड़ाया और अब उसकी गरज नहीं है। उसके पास जितने उड़ाने चाहिए उतने लोग हो गए। अब तुम्हारी गरज हो तो मांगे गए पैसे दे दो और बैठो। नहीं तो कोई बात नहीं है। यदि प्लेन की टिकट करवानी है तो अभी करवा दूं, नहीं तो पैसे ज्यादा लगेंगे। किंतु भीतर क्या भाव हैं? इसका आशय यह है कि मेहमान थोड़े दिनों के ही अच्छे लगते हैं। दो दिन रुक जाते हैं या दो दिन से ऊपर हो जाते हैं तो! कंवर साहब, क्या करूं? अब कोई दूसरा है नहीं बाजार से सब्जी लानी है। कंवर साहब! पास वाले के पाइप से पानी लाना है। अब दूसरा कोई है नहीं तो पास वाले के पाइप से पानी का घड़ा भर के लाना है। अब क्या काम चालू हो गए? अब कंवर साहब से ही काम चालू हो गए। इसके बाद भी अगर कंवर साहब नहीं समझें तो अलग बात है। इतने में बात को समझ लेना चाहिए या नहीं समझ लेना चाहिए? (प्रत्युत्तर– समझ लेना चाहिए)।

वैसे ही यह समझ लो कि ये बीमारी आई है। यह रोग आया है। यह कठिनाई आई है। यह तकलीफ आई है। ये कितने समय की है? जैसे मेहमान आते हैं, अतिथि आते हैं। वे ज्यादा समय के नहीं होते हैं। वैसे ही ये कष्ट भी ज्यादा समय तक मेरे को कष्ट देने वाले नहीं हैं। यह तकलीफ भी मेरे साथ ज्यादा समय तक रहने वाली नहीं है। आई है तो आने दो। कहते हैं कि बुखार आता है, स्वाइन फ्लू आदि चलते रहते हैं ना। बुखार वहां से रवाना हुआ। पूछा कि कहां जा रहे हो? देखता हूं। और चलते-चलते देखा कि धूप ज्यादा है आगे बढ़ नहीं पाऊंगा। तो एक झोपड़ी दिखी। झोपड़ी में चला गया और एक आदमी को लग गया। उसने देखा कि बुखार जैसा लग रहा है। और उठकर बैठा कि बुखार तो है पर बैठने से काम नहीं चलेगा। ऊपर देखता है तो सामने बादल चले आ रहे हैं। वर्षा आने वाली है। खेत को जोतना है। काम तो करना पड़ेगा और खेत जोतने के लिए उठता है। हल उठाता है और चल पड़ता है। खेत में जाकर पूरी मेहनत करता है। तन तोड़कर शरीर से पसीना चुआता है और पसीने के साथ बुखार भी निकलकर चला जाता है। बुखार कहता है कि यहां तो मतलब नहीं है, 'इतनो काम लेवे, इतनो काम म्हारे सूं नहीं होवे।'

आगे बढ़ा। तीसरी मंजिल पर एक बड़े सेठ के यहां पहुंचा। सेठ जी सो रहे थे। तकिया और गद्दा लगाकर आराम कर रहे थे और बुखार ने देखा यह जगह ठीक है। यहां थोड़ा प्रयोग करूं। और सेठजी में चला गया। अब तो सेठजी के वहां डॉक्टर आ रहे हैं। ये डॉक्टर आ रहा है वो डॉक्टर आ रहा है।

सेठ जी के घर डॉक्टरों की लाइन लग गई और सेठजी गद्दे-तकिये लगाकर सो रहे हैं। बुखार ने कहा, यहां पर आराम की जगह है। सेठ जी के यहां पर आराम की जगह है और किसान के वहां पर क्या था? हम यदि उसको भगाना चाहें तो भगा सकते हैं किंतु हमने उसको विश्राम दे दिया। तो जाएगा नहीं कि चलो बढ़िया है मुझे विश्राम मिल गया। और हमने उसे काम में लगा दिया तो फिर कितनी देर रहेगा? वैसे ही कोई कष्ट आ जाए घबराएं नहीं। हम पहले से कमतर नहीं हो जाएं। जैसे पहले काम करने की शक्ति थी वैसे ही हम करने के लिए तैयार रहें। हमारी कार्य करने की क्षमता वैसी ही बरकरार रखें और हम करते रहें कार्य। थोड़ा शरीर साथ नहीं भी देता है तो मन के बल पर करें और मन के बल से करेंगे तो शरीर अपने आप हमारा सहयोगी बन जाएगा।

मैं चर्चा सुख और दुःख की कर रहा था। सुख को विस्तारित भी किया जा सकता है एवं उसे घटाया भी जा सकता है। वैसे ही दुःख को भी घटाया एवं बढ़ाया जा सकता है। यह सांसारिक भौतिक सुख की बात है। मुक्ति का सुख न कभी घटता है न बढ़ता है। जो लोग मुक्ति के सुख को कल्पित मानते हैं कि यह कल्पनाजन्य है पता नहीं मिलेगा या नहीं मिलेगा? मोक्ष का सुख है या नहीं है? मोक्ष का सुख किसने देखा है? तो यह उसका अज्ञान है। मुक्ति हमारी स्वाभाविक दशा है। हमारे स्वयं की स्थिति में उपस्थित होना, वह मुक्ति है। अभी हम अपनी दशा में नहीं हैं। अभी हम व्यावहारिक भावों में जी रहे हैं। कर्मों के कारण हमारी दशा विचित्र बनी हुई है। थोड़ा ध्यान दो, जिस समय हम निगोद में गए, हमारी चेतना का हमें भान भी नहीं था। हम जान ही नहीं रहे थे कि हम चैतन्य हैं। कर्मों की विचित्र दशा से हमारी ऐसी हालत बन रही है। यद्यपि कितनी भी निम्न दशा में वह चली जाए, उसमें वह अंश लुप्त नहीं होता। कहीं-न-कहीं चेतना का जागरण, कहीं-न-कहीं चेतना का अंश रहता है। यह चेतना है, ऐसा विकल्प किया जा सकता है किंतु ऐसा विज्ञानियों की दृष्टि से किया जा सकता है। निगोद में रहने वाली चेतना को ऐसा कोई भान नहीं रहता। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य– ये हमारी चेतना के चार मौलिक गुण हैं। उसकी स्वाभाविक अवस्थाएं हैं। और उस अवस्था को प्राप्त करना, यही हमारा लक्ष्य है। इसलिए ऐसी बात नहीं है कि मोक्ष में सुख नहीं है। ये बात ठीक है कि हम केवल भौतिक सुख को ही सुख मान रहे हैं। पुण्य के बल पर मिले हुए सुख को ही सुख मान रहे हैं जबकि हकीकत में यह सुख नहीं, मात्र सुखाभास है।

अभी आपको संत प्रेरणा दे रहे थे कि पुण्य कमाओ। मैं यह नहीं कहूंगा कि पुण्य कमाओ। श्रावक के लिए पुण्य की आकांक्षा करने की बात कही गई है। श्रीमद् भगवती सूत्र में बताया गया है कि श्रावक-प्रण्णकंखी पुण्य की आकांक्षा करता है किंतु पुण्य की आकांक्षा संसार के भोग भोगने के लिए नहीं है। वह संसार के भोगों को भोगने के लिए पुण्य की आकांक्षा नहीं करता है। वह जा रहा था मुंबई। जोधपुर से मुंबई का प्लेन सीधा है या घूमकर? (प्रत्युत्तर– सीधा है) और दिल्ली के लिए? (प्रत्युत्तर– सीधा है) और जयपुर के लिए और रायपुर के लिए भी? (प्रत्युत्तर– सीधा है) जो भी होगा और चेन्नई के लिए? (प्रत्युत्तर– सीधा नहीं है) मान लो आपको चेन्नई जाना है। प्लेन यहां से उड़ा और वहां मुंबई में बदली करना पड़ेगा। मुंबई में उतरे और दूसरे प्लेन में चढ़ने वाले हों और इतने में पता चला कि मौसम खराब होने के कारण प्लेन उड़ने में चार-पांच घंटे/छह घंटे का समय लगेगा। किसी का मन हो सकता है कि चलो मुंबई घूमकर आ जाएं। कोई यह सोचता है कि पता नहीं कब मौसम ठीक हो जाए! कब प्लेन उड़ जाए और वह छह घंटे वहां पड़ा रहता है। अब छह घंटे वहीं पर एयरपोर्ट पर ही पड़ा रहेगा या कुछ विचार करेगा? यदि उसके पास में पैसा है, धन है तो वह सोचगा यहां विश्रामगृह है। वहां चला जाऊं और विश्रामगृह में आराम से 6 घंटे निकाल लूंगा। वहां जो विश्रामगृह की आकांक्षा कर रहा है वह सुख के लिए नहीं बल्कि बीच में जो 6 घंटे का समय मिला है, उसको कैसे निकालूं? उसके लिए विश्रामगृह में जाता है क्योंकि दूसरा कोई उपाय भी नहीं है। प्लेन उड़ने में समय है इसलिए 6 घंटे व्यतीत करने हैं तो व्यतीत करूं और अच्छे ढंग से करूं। इसी प्रकार श्रावक यह विचार करता है कि मेरा लक्ष्य मोक्ष है। किंतु मोक्ष प्राप्त नहीं हो रहा है किन्हीं कारणों से, तो मेरा ऐसा लक्ष्य बने कि मैं स्वर्ग हो आऊं। ऐसे पुण्य हो कि स्वर्ग में चला जाऊं। स्वर्ग में जाऊंगा तो वहां से तीर्थंकर देवों का सान्निध्य मिल सकता है। कभी भी कोई कल्याणक, जन्मकल्याणक आदि के प्रसंग से देवों के साथ मुझे भी वहां जाने का मौका मिलेगा और मुझे तीर्थंकर देवों के दर्शन हो पाएंगे। उनकी वाणी सुनने को मिलेगी तो मेरे भीतर बोध जागृत हो जाए। मेरे भीतर सम्यक्त्व आ जाए। मेरे भीतर की ज्योति प्रज्वलित हो जाए। प्रकट हो जाए इसलिए आकांक्षा करता है।

श्रावक यह जान जाता है कि विषयजन्य-सुख, सुख नहीं है। जो विषयजन्य-सुख, विषयजन्य-भोग या ऐसी कोई चीज, ऐसा सुख मोक्ष में

नहीं है। किंतु आत्मा का निजी सुख, वह मोक्ष में रहा हुआ है। संसार के सुख क्षणिक होते हैं और आदमी इनमें मुग्ध हो जाए तो वह कितना कष्टकर होता है? कितना दुःख-दायक होता है? आप से यदि पूछा जाए कि नरक में जाना चाहोगे या स्वर्ग में जाना चाहोगे? आवाज नहीं आ रही है। आप लोग संकोच में पड़ जाते हैं कि महाराज को बोलेंगे तो आगे क्या कहेंगे? देखो, स्वर्ग में जाने के लिए मरना पड़ेगा। मरने के लिए कौन-कौन तैयार है? अरे! वाह-वाह! यहां पर तो बहुत शूरवीर बैठे हैं। स्वर्ग के सुख के लिए तैयार हो? तैयार होना नहीं चाहिए। क्योंकि वह भी संसार ही है। और वह भी मृत्यु आने के बाद मिलेगा। लेकिन अपेक्षा से ठीक है– कम-से-कम नरक तो नहीं मिले। किंतु यदि विषयों का भोग भोगते रहोगे, आसक्त बने रहोगे, मुग्ध बने रहोगे तो फिर नरक मिलेगा या स्वर्ग? फिर कौन-सा रास्ता खुला रहेगा? कौन-सी गति में हम आगे बढ़ पाएंगे?

आसक्ति से जीव की क्या दशा होती है जंबू चरित्र में उस पर एक कहानी है। सुनें– नर्मदा नदी के तट पर एक हाथी मरा हुआ था और वैसे तो बहुत सारे कौए थे, किंतु एक कौआ हाथी के मांस को नोच रहा था और मलद्वार का मांस उसे कोमल लगा। उस मांस खाने में लुब्ध बना वह उसमें इतना मग्न हो गया और मलद्वार के भीतर घुस गया और उसी में लुब्ध हो गया। उधर गर्मी बढ़ी और मलद्वार सिकुड़ गया। बाहर निकलने का रास्ता बंद हो गया। वह भीतर ही रह गया। बाहर निकलना नहीं हो पाया। संयोग से नदी में पानी का प्रवाह/बहाव आया और हाथी उसमें बह गया और बहता-बहता समुद्र में चला गया। कौआ उसी मलद्वार में फंसा हुआ था। जब हाथी पानी में बह गया तो पानी के कारण उसका मलद्वार खुल गया। खुलने पर कौआ बाहर निकला। बाहर निकल कर देखा तो चारों ओर जल ही जल दिखाई दे रहा था। वह भयभीत हो गया। इतने में उसे दूर पर एक नौका नजर आई। उसने नौका को अपनी ओर आते देखा और सोचा कि इस नौका के साथ चला जाऊंगा। किंतु एक बार कम-से-कम वापस थोड़ा-सा मांस तो ले ही लूं। अभी टाइम है तो थोड़ा मांस खा लूं फिर नौका में चढ़ूंगा। कौआ फिर से भीतर चला गया और मग्न हो गया मांस खाने में। उधर नौका वेग से आगे निकल गई। जब कौआ बाहर आया तो उसे नौका नहीं दिखाई दी। थोड़ा इधर-उधर उड़ा और देखा तो उसे कोई नजर नहीं आया। क्या हालत हो गई? कुछ देर उड़ान भरता रहा फिर वापस उसी हाथी पर बैठना पड़ा। और कोई चारा नहीं था। उसके अलावा अन्य कोई उपाय भी नहीं था।

किंतु अब हाथी की लाश में पानी भर गया तो हाथी डूबने की स्थिति में आ गया। अब कौआ क्या करे? अब उसकी हालत क्या होगी? आखिर वहां से उड़ा। हाथी से भी बिछुड़ गया और वह भी समुद्र में डूब गया।

यह कहानी सुनाते हुए जंबू कुमार कहते हैं– प्रिये! हाथी के शरीर के समान स्त्री का शरीर है, कौए के समान मनुष्य। वह उसमें लुब्ध होता है और समुद्र के समान यह चतुर्गति रूप संसार है– जहां पर वह हाथी चला गया, कौआ भी चला गया। उसके सामने कोई साधन नहीं है। अब वह परेशान हो रहा है और उसी समुद्र में डूबकर मर जाता है। खत्म हो जाता है। यही दशा भोगी भ्रमर की होती है। क्या तुम चाहती हो कि मेरी भी ऐसी दशा हो? पुण्य के जैसा वह जहाज था किंतु मनुष्य रूपी वह कौआ उस पर नहीं बैठा। उड़कर यदि बैठ गया होता तो समुद्र के गोते नहीं खाने पड़ते। वह बच जाता। उसका बचाव हो जाता और जहाज के सहारे वह किनारे पर पहुंच जाता। बोलो, उस कौए ने जहाज का सहारा नहीं लिया। उसने यह अच्छा किया या बुरा किया? (प्रत्युत्तर– बुरा) क्या करना चाहिये था?

जंबू कुमार तो कहते हैं– प्रिये! कौए की तरह मुझे मूर्ख नहीं बनना है। मुझे नौका के रूप में, जहाज के रूप में सुधर्मास्वामी मिले हैं। जो संसार सागर के किनारे तक पहुंचाने के लिए तैयार है। यदि यहां पर आई हुई जहाज को जाने दूं और कौए की तरह मैं भी भोगों में लुब्ध हो जाऊं तो आने वाले समय में फिर ऐसी पुण्य की जहाज कहां मिलेगी? (प्रत्युत्तर– नहीं मिलेगी) तो क्या करना चाहिए? जंबू कुमार को क्या करना चाहिए? कौन-सा जहाज पकड़ लेना चाहिए? जंबू कुमार को पुण्य रूपी सुधर्मास्वामी का हाथ पकड़ लेना चाहिए और आपको नहीं पकड़ना चाहिए! आपको क्या करना चाहिए?

बैठो बैठो भैया आज, आया जैन का जहाज

यह जैनत्व का जहाज आया है। बाकी जो प्लेन होते हैं वे उड़ान भरते हैं। वे कभी क्रैश हो जाते हैं। कभी प्लेन टूट जाता है, गिर जाता है। किंतु यह जैनत्व का जहाज आपको निरापद गति से मंजिल पर पहुंचाने वाला बनेगा। यह संसार महादुःख रूप है और वह नौका है जिसके माध्यम से हम मुक्ति के मार्ग को प्राप्त कर सकते हैं।

पर्युषण-पर्व तीव्रगति से देखते ही देखते आ गये। अरे! यह कयामत की रात आने वाली थी पर इतनी जल्दी आ गई। मैंने तो अच्छी तरह से

धारणा भी नहीं की। न अच्छी तरह से खाना-पीना किया। अच्छी तरह से चूरमा-बाटी जीम लेता तो शरीर में ताकत आ जाती। फिर म.सा. को कहना नहीं पड़ता हम अठाई कर लेते। क्या खाने से अठाई हो जाएगी? शोभालाल जी मेहता उदयपुर के थे, वे हमको पढ़ाते थे। एक बार उन्होंने बात बताई कि घर वालों ने कहा, संवत्सरी पर्व आ गया है। धारणा कर लेते हैं तो तपस्या सोरी, आराम से हो जायेगी। उस पर उन्होंने कहा, तपस्या अच्छी होगी तो धारणा कर लेते हैं। श्रीखंड खाया, धारणा कर लिया किंतु धारणा की रात ऐसी हो गई कि वैसे सुबह जल्दी भूख नहीं लगती थी और उस दिन धारणा की सुबह 4-5 बजे ही तेज भूख लग गई। लगा पेट खाली हो गया है। धारणा कर लिया और अब कहूंगा कि उपवास नहीं कर पाऊंगा तो कैसे कहूंगा? लोगों में हालत बड़ी खराब हो जायेगी। धारणा के चक्कर में कोई बात होती नहीं है, बिना धारणा के जहां लंबी तपस्या कर लेते हैं। और धारणा करने के बाद भी कइयों की गाड़ियां अटक जाती है।

हम मन को मजबूत बनाएं। तपस्या हो सके तो करो अच्छी बात है। नहीं तो कोई बात नहीं है। मैं तपस्या के लिए ज्यादा आग्रह करता नहीं हूं। जितना हो उतना तो करें। किंतु एक बात जरूरी है, आने वाले आठ दिन और एक दिन पारणे का, कुल नौ दिन तक, किसी की भी प्रतिक्रिया नहीं करें? हम किसी की शिकायत नहीं करेंगे यह तो चलेगा ना? न खाना छूटे, न पीना छूटे। न गद्दी-तकिया छूटे। प्रतिक्रिया में ऐसा भी नहीं कहना कि म.सा. उसने तपस्या नहीं की। उसने संवर नहीं किया। शिकायत नहीं होनी चाहिए। दूसरी बात कि उसने कितना किया या नहीं किया कोई बात नहीं। स्वयं को देखो आपने क्या किया? आपने क्या कर लिया अब तक? किया या नहीं किया? नहीं होगा तो चलेगा। नहीं हो रहा है तो नहीं हो रहा। किंतु शिकायत नहीं और प्रतिक्रिया नहीं– घर में, व्यापार में, दुकान में, धर्म स्थान में, समता भवन में, सड़क पर, गाड़ी में बैठते हो तो किसी भी स्थान पर, इन नौ दिनों तक केवल दो चीजें नहीं करेंगे, एक तो प्रतिक्रिया नहीं करेंगे और दूसरी शिकायत नहीं करेंगे। बोलो, कौन-कौन है तैयार? सारे हाथ खड़े नहीं हो रहे हैं। करा दूं पच्चक्खाण? बहिनों को भी? सोच-समझकर पच्चक्खाण करना। प्रतिक्रिया नहीं और दूसरे की शिकायत नहीं, चाहे श्रीमान जी हो चाहे सासू जी हो। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देते हैं।

25 अगस्त, 2019

8

रणभेरी बाज रही

पर्युषण की आई रे बहार, जोधपुर नगरी में,
जागो-जागो करें मनुहार, जोधपुर...।
आओ-आओ पर्व मनाए,
त्याग, तप की झड़ी लगाए,
आलस दूर निवार, जोधपुर..
आठ दिनों के पर्व सुहाने,
करें नहीं अब कोई बहाने,
खोलें घट के द्वार, जोधपुर...
मन मंदिर को कर लें चंगा,
जिन वाणी से बनें सुरंगा,
'राम' पाप प्रक्षाल, जोधपुर...

पर्व पर्युषण आ गए। कल तक चर्चाएं थीं कि पर्युषण आ रहे हैं। आने वाले हैं। थोड़े दिनों के बाद में चर्चाएं होगी कि पर्युषण चले गए। आए और चले गए। यही तो कुदरत का नियम है। सृष्टि का वैसा ही रूप है। सूर्य उदय होता है और शाम को चला जाता है– उदय होना और फिर अस्ताचल में चले जाना। जैसे सूर्य की गति है वैसे ही हमारे जीवन की गति है। एक-एक पल बीत रहा है। बहुत सारा भविष्य भूतकाल में चला गया। आने वाला भविष्य भी भूतकाल में चला जाएगा। हमारी जिंदगी एक-एक क्षण घटती हुई व्यतीत हो जाएगी। जन्म लिया, मृत्यु को वरा। मरे और फिर जन्म लिया– पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं। पुनः जन्म और पुनः मरण। इस जन्म और मरण की प्रक्रिया से हम गुजर रहे हैं। आज तक का यदि हिसाब लगाया जाए तो हम गणित लगाने में सक्षम नहीं होंगे। इतने सारे हमने जन्म ले लिये और मृत्यु

के गाल में समा गए। आज इस भव में, इस जन्म में हम फिर मौजूद हैं और देखते ही देखते वह मृत्यु आएगी और अपने मुंह में समा लेगी। क्या ऐसा ही रूप, ऐसा ही ये व्यवहार चलते रहना चाहिए। या उसमें कुछ अंतर भी लाना है? धर्म हमें यह प्रेरणा देता है कि जन्म और मरण यह तुम्हारे स्वभाव की स्थिति नहीं है। कर्मों की गति से ये क्रियाएं घट रही हैं। व्यक्ति जन्म लेता है, मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। किंतु हकीकत में तुम्हारा स्वरूप इससे भिन्न है। तुम न जन्म लेने वाले हो और न मृत्यु से मरने वाले हो। 'अमर अजोणि आत्मा रे', आत्मा अमर है। नहीं मरने वाली है। और अजोणि कभी भी योनि को प्राप्त करने वाली नहीं है। वह स्वरूप हमारा है। वह स्वरूप आत्मा का है। जन्म और मरण शरीर का हो रहा है। होता रहा है, होता रहेगा। किंतु हमें इस शरीर को हटाना पड़ेगा। यदि शरीर की शृंखला को नहीं रखना है, जन्म और मरण के चक्कर से स्वयं को निकालना है तो उसका एक उपाय है। दलदल में फंसे हुए हाथी को निकालने का उपाय है तो संसार के कीचड़ में फंसे हुए आदमी/व्यक्ति को भी निकालने का उपाय है ही।

एक हाथी राजा का बड़ा ही प्रिय था जिसने अनेक युद्धों-संग्रामों में शीर्ष स्थान पर रहकर युद्ध किया। और सारे युद्धों में विजय प्राप्त की। सम्राट को विजयश्री हासिल कराई। राजा के प्राण के साथ उस हाथी का अटैचमेंट हो गया। संबंध हो गया। एक बार वह पानी पीने के लिए उतरा तालाब में और कीचड़ की बहुलता से हाथी के पैर धंस गए और इतना धंसा कि निकलने के लिए जोर लगाए तो और नीचे गहरा जा रहा है। निकल नहीं पा रहा है। वह जोर से चिंघाड़ रहा है। उसकी चिंघाड़ में करुण-क्रन्दन है। सम्राट उस चिंघाड़ को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं। उनका दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा है। महावत को बुलाया गया। उसने अंकुश फेंककर यह किया, वह किया। बहुत कुछ किया। किंतु वह हाथी वहां से नहीं निकाल पाया। कइयों ने बांस के धक्के लगाए, कई उपाय किए गए। किंतु हाथी नहीं निकल पाया तो नहीं निकल पाया। निरन्तर चिंघाड़ रहा है। बड़ी दयनीय दशा हो गई। सम्राट को उसकी मृत्यु नजर आने लगी कि शायद अब यह इस कीचड़ से नहीं निकल पाएगा और खड़ा भी कब तक रहेगा? लंबे समय तक खड़ा नहीं रह पाएगा। गिर जाएगा और मृत्यु के मुंह में समा जाएगा। राजा के दिल में चोट लगी कि मेरा प्रिय हाथी क्या, इस प्रकार अकाल मौत मरे, बेमौत मरे? नहीं-नहीं, मैं पूरा प्रयत्न करूंगा।

राजा तरकीब लगा रहा है। कोई उपाय सोच रहा है। यह मंत्रणा हो रही है कि कैसे निकाला जाए?

एक सज्जन व्यक्ति ने कहा, राजन्! पहले जो महावत था, उसको भी बुलाया जाए। उसकी भी राय ली जाए। वह वर्षों तक हाथी के साथ रहा है। अब भले ही वृद्ध हो गया किंतु अनुभवी है। उसे बुलाया गया। यद्यपि शरीर में इतनी ताकत नहीं थी, फिर भी राजा के बुलाने पर आया और जब उसके सामने हाथी की दशा रखी गयी तो उसने कहा, राजन्! युद्ध की तैयारी करवाइए और युद्ध के समय चारण, भाट आदि के द्वारा जो जोश भरे गीत गाए जाते हैं, वे गीत चालू करवाइए। राजा ने महावत के कहे अनुसार वैसे ही जैसे 15 अगस्त के समय/गणतंत्र दिवस के समय में आप गीत सुनते हो, 'मेरा रंग दे बसंती चोला' और ऐसे-ऐसे गीत जिन्हें सुनकर योद्धाओं की भुजाएं फड़कने लगे। लगे कि बस, अब वार चालू करें। वैसा ही किया गया। उन शौर्य के गीतों को सुनकर हाथी के भीतर में ऐसा जोश जगा कि वह भूल गया मैं कीचड़ में फंसा हुआ हूं। गीतों को सुनकर उसके संस्कार, वे तबदील हो गए और उसने ऐसी चिंघाड़ भरी और कीचड़ के तालाब से बाहर आ गया। न अंकुश की, न डंडे की, न बांस की आवश्यकता पड़ी। विचार करें, हाथी कैसे निकल गया? संस्कार बहुत बड़ी चीज है। उसने ये गीत, युद्धों के समय पहले बहुत बार सुने थे और सुनकर वह शत्रु सेना पर टूट पड़ता था। इसलिए इन गीतों ने उसकी मनःस्थिति को उद्वेलित किया। आंदोलित किया और वह आंदोलन वर्तमान को भुलाने वाला बन गया और वह तालाब से बाहर आ गया।

हमने अब तक कौन-से गीत सुने हैं? हमने गीत सुने हैं कायरता के। कुछ थोड़ा-सा अटपटा हो तो बेटा, भीतर बैठ जा। जा चद्दर ओढ़ ले कहीं सर्दी नहीं लग जाए; माथा ढक ले, गर्मी नहीं लग जाए। लू नहीं लग जाए। हमने शौर्य के गीत सुने नहीं। शौर्य के गीत सुने भी हैं तो सुनने के बाद हमारे भीतर ऐसा आंदोलन चालू नहीं हुआ। हम अपने आप में आंदोलित नहीं हो पाए। यही कारण है कि आज हम इस दशा में हैं। यदि हमारा भीतर में भी वैसा आंदोलन उठा होता। हमारा भीतर भी वैसा आंदोलित हुआ होता तो हम कभी के इस संसार के कीचड़ से/संसार सागर से निकल गए होते। कोई कठिन बात नहीं है। निश्चित ही हम निकल गए होते। किंतु हमारी दशा कुछ भिन्न है। कैसी भिन्न है? एक सेठ, उसका लड़का गणित में बड़ा

कमजोर था। उसने विचार किया कि स्कूल में सबकी बराबरी में नहीं पढ़ पाएगा इसलिए अलग से ट्यूशन करवायी जाए। और उसने एक अच्छे टीचर को ट्यूशन के लिए नियुक्त किया। वह लड़के को पढ़ा रहा है। गणित का अध्ययन करवा रहा है। दो महीने निकल गए। तीन महीने निकल गए।

एक दिन सेठ के मन में विचार आया कि तीन महीने में लड़के ने गणित का कितना अध्ययन किया है, कहां तक ऊंचाई प्राप्त की है, मुझे परीक्षण करना चाहिए। सेठ पहुंच गया जहां ट्यूशन चल रही थी। टीचर ने सेठ का स्वागत किया। चेयर पर बिठाया, सेठ बैठ गये। लड़का भी कहने लगा कि पापा! आप खूब पधारे। सेठ ने कहा कि बेटा, आज मैं तुम्हारी परीक्षा लेना चाहता हूं। बोलो बेटे, चार और चार कितने होते हैं? उसने कहा, पापा! छह होते हैं। फॉर प्लस फॉर इज इक्वल टू सिक्स, यानी छः हुए। पिता को गुस्सा आ गया। तीन महीने क्या यही पढ़ाई की कि चार और चार-छह होते हैं? टीचर कहने लगा, सेठ! आप शांत हो जाइए। आपका लाडला प्रोग्रेस कर रहा है। पहले यह चार और चार, पांच बताता था और अब चार और चार छः बताने लग गया है (सभा में– हंसी) तीन महीने के अध्ययन में चार और चार पांच बताने वाला, छह बताने लगा है। और पढ़ता रहेगा, पढ़ता रहेगा तो कभी सात और आगे कभी (प्रतिध्वनि– आठ भी बताएगा)।

हम क्या बता रहे हैं? लड़के ने चार और चार-छह बताए तो हंसी आ गई। हम क्या बताने वाले हैं और क्या बता रहे हैं, यह बताइए? हमारी मति क्या काम कर रही है? हम किस ओर क्या जोड़ लगा रहे हैं? हम भी चार और चार-छह मान रहे हैं या चार और चार आठ की गणित कर रहे हैं? हो सकता है कि गणित में आप माहिर हों और चार और चार आठ बता दो। किंतु चार और चार आठ बता देने पर भी हम एकदम सही जानने वाले नहीं हो गए। ये गणित के खेल हम दिमाग से, बुद्धि से करते रहते हैं और करते रहेंगे। इन खेलों में हमें जीवन का सारभूत तत्त्व हासिल होने वाला नहीं है। व्यक्ति दिमागी कसरत में या जोड़-तोड़ में लगा रहता है। जोड़-तोड़ करता रहता है और उसका दिमाग चलता रहता है। जिसमें भी व्यापारी का दिमाग है तो चलता ही रहेगा। उसका दिमाग किस प्रकार चलता है और किसमें चलता है? जहां पांच पैसे कमाई की बात आती है। पांच पैसे बचाने की बात आती है वहां पर उसका दिमाग बहुत चलता है। किंतु धर्म में पांच और पांच कितना होता है या धर्म में हमने कितने कदम आगे बढ़ाए? इस

ओर उसका लक्ष्य कितना है? यह विचार करने की बात है। यदि उसका इस ओर लक्ष्य होता तो अभी तक हमारे भीतर एक बहुत बड़ा रूपांतरण घटित होता। हमारे भीतर बहुत बड़ा बदलाव घटित होता। मैं यह नहीं कहता कि आप साधु बन ही जाते। साधु बनने की हिम्मत पैदा होती तो साधु बन जाते– साधु बन सकते थे। मैं यह नहीं मानता कि हमारे भीतर शक्ति नहीं है। शक्ति हमारे भीतर है। जैसे हाथी के भीतर शक्ति थी। किंतु तब तक उसको जगाने वाला महावत/दिशा देने वाला महावत नहीं मिला था। वैसे ही शूरवीरों को शौर्य के गीत गाकर जगाने वाले भाट और चारण हमें अभी तक नहीं मिले। हमें साधु-साध्वियों का योग मिला होगा और उनकी शहनाई हमने सुनी होगी, किंतु शूरवीरता के गीत हम नहीं सुन पाए। माता जैसे लोरी गाती है, वैसे ही साधु-साध्वियों की लोरी के गीत हमने सुने हैं। और हमें वे थपकियां लगती हैं। जैसे मां हाथ से थपकी लगाती है वैसी ही थपकी लगती है और हमें अच्छी, सुहावनी नींद लग जाती है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे हम निद्रा की गोद में चले जाते हैं।

साथियो! विचार करें। मनुष्य जन्म की महत्ता को समझें। हाथी कीचड़ से निकल गया। हनुमान सीता की खोज में गए। अंगद, जामवंत साथ में थे। सामने समुद्र आ गया। विचार करने लगे अब क्या करें? हनुमान को बताया गया कि तुम्हारे भीतर ताकत है किंतु शाप के कारण तुम अपनी शक्ति को भूले हुए हो और यदि कोई तुम्हें शक्ति याद दिला दे तो तुम शाप मुक्त हो जाओगे। आज तुम्हें हम याद दिला रहे हैं, तुम अपनी शक्ति को जगाओ और आपने देखा होगा टीवी पर, चित्रों में...कि देखते ही देखते, क्षण-भर में हनुमान का शरीर बढ़ता हुआ चला गया और उन्होंने एक ऐसी छलांग लगाई कि एक बार तो पृथ्वी पर मानो भूचाल आ गया। भूकम्प आ गया। और वे छलांग लगाकर समुद्र पार कर गए। पता नहीं, हमें किसने शापित किया है। हमारी शक्ति किससे शापित हो गई है कि जगाए नहीं जग रही है! किंतु हमारे भीतर शक्ति है जरूर। हमारे भीतर वह शौर्य जरूर है। शौर्य को यदि हम जगा सके तो यह सुंदर पर्व, यह सुंदर अवसर हमारे लिए महत्त्वपूर्ण साबित होंगे। पर्व पर्युषण में ऐसे ही वीरों की गाथाएं सुनायी जाती है। अंतगडदसाओ सूत्र के माध्यम से हम उन वीरों की वीर गाथाओं को सुनते हैं और इन वीर गाथाओं को सुनकर यदि हमारे भीतर वह वीरता नहीं जगे तो देखना चाहिए कि जंग कहां लगी हुई है?

हमारी मां ने हमको कैसा दूध पिलाया है? यदि सचमुच में माता ने दूध पिलाया होता, बोतल या बकरी का दूध नहीं पीया होता तो ऐसे में शौर्य की गाथाएं, वीरता के गीत कानों में पड़ जाएं और वीर पुरुष युद्ध के लिए तैयार नहीं हो, ऐसा संभव नहीं है। हां, यदि बोतल का दूध पीया हो, पावडर का दूध पीया हो तो वह शौर्य कहां से जगेगा? शौर्य के लिए वह भूमिका भी होना जरूरी है। कम-से-कम पूछ तो लेना अपनी मां से कि मां तुमने कौन-सा दूध पिलाया? आया ने दूध पिलाया या तुमने स्वयं ने दूध पिलाया? बकरी का दूध पिलाया या पावडर का दूध पिलाया? तो तुमको मालूम पड़ जाएगा कि कौन-सा दूध पिलाया? सेठ धन्नाजी कहते हैं–

'आज बता दूं, मेरी मां ने, कैसा दूध पिलाया?'

वही मैं आपसे पूछ रहा हूं। अगली बार पर्युषण में आएंगे तो माता से पूछकर आएंगे? (सभा से– हां) आप कह रहे हो हां, पूछकर आएंगे मतलब अगले पर्युषण तक तो भाव जगने वाले ही नहीं हैं। अगले पर्युषण तक शौर्य जगने वाला है नहीं। महाराज! आप कितना ही जगाओ और आप कितना ही सुना लो, अगले पर्युषण के पहले वह जगने वाला नहीं है। अगले पर्युषण में आएंगे तो आपको बता देंगे कि मेरी मां ने कौन-सा दूध पिलाया था।

ये पर्व-पर्युषण, इसका संबंध आज श्रावकों से भी जुड़ गया है। वैसे देखें तो श्रावकों का कोई रोल नहीं है। कोई संबंध नहीं है। पर्युषण केवल साधुओं के लिए है। आगम के अनुसार पर्युषण के लिए बताया गया कि साधुओं को अपना कल्प तय करना चाहिए और पर्युषण की आराधना कर लेनी चाहिए। चातुर्मास लगने के बाद कभी-भी पर्युषण लगाया जा सकता है। कभी-भी पर्युषण की स्थापना की जा सकती है। अंतिम समय एक महीना और 20 दिन है। एक महीना और 20 रात्रि व्यतीत होने के बाद उसे पर्युषण कर लेना चाहिए। यदि उस पर्युषण के काल में पर्युषण नहीं करता है तो उसे प्रायश्चित्त का भागी बताया गया है। थोड़ा इस बात को अच्छी तरह समझ लो। पहले कच्चे मकान हुआ करते थे। आरसीसी के मकान कम ही थे। कच्चे मकान होते, गारे के नीपे हुए मकान होते। पानी पड़ने पर सीलन आ जाती। लीलन-फूलन हो जाती और भी कुछ अन्य कारण हो जाते– बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय आदि जीव पैदा हो जाते। उस जीवोत्पत्ति के कारण एक ही मकान में साधु लंबे समय तक नहीं रह सकता था। यदि ज्यादा दिन रुके तो उन जीवों के विराधना की बहुत संभावना होती। इसलिए ऐसा

बताया गया कि यदि मकान में ऐसी स्थिति बन गई हो तो हर पांच-पांच दिन या सात-सात दिन में स्थान परिवर्तन करे और ऐसे परिवर्तन करते-करते एक महीना, 20 रात व्यतीत हो जाए। फिर अपना एक स्थान निश्चित कर ले। उस दिन जहां वह प्रतिक्रमण करेगा, वह स्थान/वहां कल्प स्थापित हो जाएगा। अब पीछे के 70 दिन उस मकान में गुजारे जाएंगे। इसका कारण यह है कि संवत्सरी के बाद यानी एक महीना, 20 रात व्यतीत होने के बाद वर्षा काफी कम हो जाती है। चैन्नई आदि दूसरे क्षेत्र की बात अलग है। मैं सामान्य बात बता रहा हूं। और वर्षा जब शांत हो जाती है, वर्षा नहीं होती है, कम होती है तो फिर किसी प्रकार से उस मकान में कठिनाई नहीं रहेगी। आराम से पीछे के बाकी दिन व्यतीत किए जा सकते हैं।

अहिंसा के लिए/जीव रक्षा के लिए/करुणा के लिए/यतना के लिए ये पर्व-पर्युषण बताए गए हैं और पर्युषण की आराधना बताई गई है। आज यदि चाहे तो जिस दिन चातुर्मास लगता है, उस दिन या जब चाहे साधु पर्युषण की आराधना कर सकता है क्योंकि स्थान परिवर्तन के बहुत कम चांस होते हैं। किंतु जो परंपरा चल पड़ी, वह परंपरा चल रही है। उसको निभाया जा रहा है। आठ दिन का समय कब से चला? अभी हमारे पास उसका इतिहास नहीं है। जब से भी चला हो, जहां तक मैं सोचता हूं, श्रावकों से अटैचमेंट हुआ/श्रावकों से संबंध जुड़ा तो क्या होता है कि बीच-बीच में यदि कोई कार्यक्रम नहीं होते हैं तो सुस्ती छा जाती है। बहुत बार कोई पर्व का प्रसंग नहीं बनता है तो ठंडक आ जाती है। शिथिलता आ जाती है। इसलिए साधुओं का पर्व-पर्युषण मनाने के साथ श्रावकों के लिए भी धर्म आराधना का संबंध जोड़ दिया गया होगा। हालांकि एक दिन में क्या होगा वह तो 'ऊंट के मुंह में जीरे' की बात होगी। एक दिन में हमारी नींद उड़ती नहीं है। इसलिए हो सकता है, उस निमित्त से/आठ कर्मों का क्षय करने के लिए या यों कहें कि पांच समिति, तीन गुप्ति की आराधना करनी है उस प्रसंग से, या किसी भी निमित्त से आठ दिन का यह समय रखा गया हो। या हो सकता है कि साप्ताहिक आराधना का रूप देवों में चलने का उल्लेख होने से रखा गया हो (सभा में– किसी ने गर्मी के कारण रूमाल आदि से हवा की हो, उसे लक्ष्य करते हुए) सामायिक में, पंखा नहीं झला जा सकता। सहनशीलता बढ़ाने की आवश्यकता होती है। थोड़ी-सी गर्मी हमारा कुछ बिगाड़ेगी नहीं और हम यदि पंखा झलेंगे तो कितने वायुकाय के जीवों की विराधना हो जाएगी।

इसलिए रूमालादि से भी हवा न ली जाय वरन् हमें धैर्य रखना चाहिए। सही आराधना करने का लक्ष्य रहे और गर्मी को सहन करने की क्षमता बढ़ावें।

"किमेगरायं करिस्सइ" थोड़ी देर की गर्मी मेरा क्या बिगाड़ लेगी? यह तो हमें विश्वास होगा कि इस थोड़ी देर में कोई मौत आने वाली नहीं, तो भला है कि मेरा शरीर यह थोड़ी गर्मी को सहन करने वाला बने। मेरी सहनशक्ति बढ़े। मैं बता रहा था पर्युषण के विषय में कि देवता आठ दिनों का महोत्सव मनाया करते थे। तीर्थंकरों के कल्याणक आदि के प्रसंगों पर देवता आठ दिनों का महोत्सव मनाते थे आज भी मनाते होंगे। हो सकता है हमने भी आठ दिन चुन लिए हों कि हम भी आठ दिन का महोत्सव मनाएंगे और ये आठ दिन के महोत्सव की परंपरा चालू हो गई हो। और उसमें धर्म आराधना के लिए प्रेरणा की जाती है। हम उसमें सामायिक कितनी कर रहे हैं, पौषध कितने कर रहे हैं, तपस्या कितनी कर रहे हैं? यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसमें हमारे चित्त को कितना परिष्कृत कर रहे हैं, हमारा मन कितना पवित्र हो रहा है? क्यों है ये त्याग और तपस्या, संवर और साधना, दया और आराधना, यह पौषध और प्रतिक्रमण...? आखिर किसलिए? मन की पवित्रता, मन की प्रसन्नता ही के लिए कि मेरी प्रसन्नता बरकरार रहे। मेरी पवित्रता बनी रहे। इन भावों से यदि हम धर्म की आराधना करते हैं तो बहुत सुंदर बात है। हमको दया, पौषध आदि करने की जो भी बात कही जाती है, ये सारी बातें मन को पवित्र बनाने के लिए है। मन की प्रसन्नता जो लुप्तप्राय हो रही है, मन की प्रसन्नता कहीं गायब हो रही है, छू-मंतर हो रही है, वह प्रसन्नता प्राप्त हो जाए। वह प्रसन्नता गहरी बन जाए। अंतर भावों से ये त्याग और तपस्या करने के प्रसंग रहते हैं उसमें प्रयत्नशील बनें। अपने अब तक के सारे कचरे को/मन में भरे हुए कचरे को दूर करने का प्रयत्न करेंगे। एक दिन में भी साफ हो जाए तो बहुत अच्छी बात है। बहुत सुंदर बात है—नहीं तो कम-से-कम सात दिनों में हम अच्छी तरह से साफ कर लें। हम उसको सुंदर बना लें। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की स्थिति हम अपने चित्त की/अपने मन की बना लें। ऐसा यदि हमारा प्रयत्न होता है, लक्ष्य होता है तभी ये पर्व-पर्युषण हमारे लिए सार्थक हो पाएंगे।

कोई पूछ ले कि साबुन कौन-सा बढ़िया हो सकता है? तब कोई पैकिंग को देखेगा, कोई इसको देखेगा, कोई उसको देखेगा। किंतु साबनु वह सही है या वह बढ़िया है जो मैल को दूर कर सके। वैसे ही पर्व कौन-से अच्छे? जो

पर्व आपको प्रसन्नता दे सकें। जो पर्व आपको पवित्र बना सकें। वे पर्व अच्छे हैं। अन्यथा चाहे पर्युषण हो, होली हो चाहे दीवाली हो– हम तो जिस मैदान में जैसे खेल रहे थे वैसे ही गिल्ली-डंडा चलाते रहेंगे। तो ये पर्व हमारे लिए ज्यादा कोई कामयाबी हासिल कराने वाले नहीं बनेंगे। हाथी को जैसे शौर्य गीत सुनने को मिला और वह कीचड़ से निकल गया, वैसे ही हम भी मोह-ममता के कीचड़ जिसमें हम धंसे हुए हैं, इन शौर्य गाथाओं को सुनकर कीचड़ से अपने आपको निकालने के लिए अपना प्रयत्न करेंगे तो पर्व-पर्युषण हमारे लिए सार्थक हो जाएंगे। इतना ही कहते हुए गीत की एक दो पंक्तियों के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूं।

ये पर्व पर्युषण आए हैं, जन-जन के मन हर्षाये हैं
ये पर्व पर्युषण आए हैं...
इतिहास सुनो उन वीरों का, त्यागी और गंभीरों का
जो जीवन को सरसाये हैं, ये पर्व...

27 अगस्त, 2019
(पर्युषण पर्व का पहला दिन)

9

उठो! बढ़ो और बढ़ते रहो...

शांति जिन एक मुज विनति...।

शांति की चाह लिए व्यक्ति इधर से उधर, उधर से इधर गति करता रहता है। शांति की खोज कर रहा है पर शांति, मिल नहीं पा रही है। उस मृग की भांति हमारी दशा है जिसकी नाभि में कस्तूरी रही हुई है और उस गंध की चाह में पागल बना हुआ है। वह जहां बैठता है वहां जमीन पर उसकी गंध आती है तो वह वहां की जमीन को खोदता है। पर वहां क्या मिलेगा? कस्तूरी कहां पर है? (प्रत्युत्तर–नाभि में है) और जब वह बैठता है तो नाभि जमीन पर लगती है और वहां पर भी गंध आने लग जाती है। वह सोचता है कि इस जमीन में वह कस्तूरी रही हुई है। उसको पाने के लिए वह उस जमीन की खुदाई करता है। खोदता है किंतु वहां पर क्या मिलेगा? वही दशा हमारी है। कस्तूरी हमारे भीतर रही हुई है। यहां कस्तूरी का मतलब है शांति; वह हमारे भीतर रही हुई है। यदि हम बाहर में उसको ढूंढ़ते रहेंगे, जन्मों-जन्मों तक ढूंढ़ते रहेंगे तो भी वह मिलने वाली नहीं है। वह जब भी मिलेगी हमें अपने भीतर ही मिल पाएगी। हम अपने भीतर की ओर देखें। अपने भीतर में गहरे उतरें तो ही वह मिल पाएगी।

श्रीमद् आचारांग सूत्र, जिसमें मुनि जीवन को स्वीकार करने वाले व्यक्तियों की तीन दशा बताई गई है। पहला विकल्प दिया है–पूर्व उत्थित नो पश्चात निपात। पहले उठा, बाद में पतन नहीं हुआ। पतित नहीं हुआ। उठा और बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया। वह न पीछे मुड़ा, न बाद में उसके विचार गिरे–बढ़ता रहा, बढ़ता रहा, बढ़ता रहा। ऐसे भंग में गणधर भगवंतों को धन्ना, शालिभद्र को ग्रहण किया गया है कि जो उठे और उठे तो उठ ही गए, नो निपात–बाद में उनका निपात नहीं हुआ। गिरना

नहीं हुआ– विचारों से गिरे नहीं, भावों से गिरे नहीं और काया से भी वे गिरे नहीं। दूसरा भंग, पूर्व उत्थित पश्चात् निपात– पहले उठा, बहुत उमंग, बहुत उत्साह और अद्भुत संवेग के साथ संयमी जीवन स्वीकार करता है। किंतु मोह के कारण पश्चात् निपात। बाद में उसका निपात हो जाता है। संयम जीवन में स्थिर नहीं रह पाता है। ऐसे घटनाक्रम भी आगमों में उल्लिखित हैं।

जैसे मेघ कुमार के विचार गिरे। कंडरीक निपात की ओर गया। प्रसन्नचंद्र राज ऋषि का हम कथन सुनते रहे हैं, कथा हमने सुनी भी है। भावों से/विचारों से उनका भी निपात हुआ, किंतु वह निपात क्षणिक था। एकदम से गृहस्थ में नहीं चले गए। कंडरीक संयमी बना पर बाद में संयमी जीवन में नहीं रह पाया। उसने गृहस्थ वेश स्वीकार कर लिया। तीसरा भंग बताया, न तो पहले उठा है और न ही पश्चात् पतित हुआ। जो उठेगा ही नहीं उसके गिरने की बात ही कहां रह जाएगी? इसमें श्रावकों को लिया गया है। गृहस्थों को लिया गया है। जो संयमी जीवन के लिए उत्थित ही नहीं हैं। संयमी जीवन के लिए उठे ही नहीं हैं। बहुत सुना है उन्होंने फिर भी अपना मन नहीं बना पाए। अपना विचार संयमी जीवन के अभिमुख नहीं बना पाए। अपनी भावना को संयम की दिशा में मोड़ नहीं पाए और जब संयम की दिशा में मोड़ ही नहीं लिया, संयम की दिशा में बढ़े ही नहीं तो पीछे लौटने की बात होनी ही कहां है? ये तीन विकल्प बड़े मनोवैज्ञानिक हैं और गहन मर्म को प्रकाशित करने वाले हैं कि मन की तरंगें सदा एक-सी नहीं होती हैं। मन तरंगित होता रहता है। मन में तरंगें उठती रहती हैं। जैसे समुद्र में लहरें उठती हैं वैसे ही मन में तरंगें उठा करती हैं।

हमने कई बार देखा होगा कि कई पेड़ (कभी-कभी) जब हवा नहीं चलती है वैसे तो चल ही रही है किंतु जैसे हमें हवा की थोड़ी आवश्यकता रहती है, उस रूप में नहीं चल रही हो। हम देखते हैं कि पेड़ का एक पत्ता भी नहीं हिल रहा और हम बोल उठते हैं कि एक पत्ता भी नहीं हिल रहा है। हवा आएगी कहां से? हवा होगी तो आएगी। हवा आएगी तो पत्ता हिलता है– कभी तो धीरे-धीरे हिलता है, और कभी थोड़ा तेज हिलता है। और कभी तो ऐसे हिलता कि लगता है अब बस गिर ही जाएगा। टहनी लेकर गिर जाएगा। ऐसा हमने देखा होगा ना। क्या कारण है? क्या उसमें यंत्र लगा हुआ है कि कभी धीरे-धीरे हिलता है तो कभी तेज हिलता है। और कभी बहुत तीव्र हिलता है। क्या कारण है इसका? कारण है पवन का झोंका। हवा

का वेग। हवा का वेग उसको जैसे धक्का देता है। उसके अनुसार वह पत्ता हिलता है। पत्ता अपने आप नहीं हिल रहा है। उसको हिलाने के लिए पवन की आवश्यकता होती है। पवन का वेग यदि धीमा हो तो वह पत्ता धीमे से हिलता है। जैसे नव-विवाहिता पुत्रवधू घर में प्रवेश करती है तो बड़े धीरे-धीरे कदमों से प्रवेश करती है। वैसे ही वे पत्ते धीरे-धीरे हिलते हैं। स्पंदित होते हैं और बड़े रमणीक लगते हैं। थोड़ा वेग जोर से आया तो थोड़ा और फड़फड़ाने लग जाते हैं। और तेज तूफान आता है तो उस समय तो कई पत्ते गिर जाते हैं। कई टूट जाते हैं। कुछ और भी हो जाता है यानी वे टूटकर नीचे पड़े हुए हैं और हवा के दबाव से कहां के कहां चले जाते हैं। इस पर अपन गौर करें तो एक मर्म की बात यह है कि जो पेड़ के साथ जुड़ा हुआ है वह हिला जरूर, बहुत तेज भी हिला किंतु रहा पेड़ के साथ-साथ। और जो पत्ते गिर गए, वे कहां से कहां उड़कर चले गए! मालूम पड़ेगा क्या? मेरे खयाल में पता ही नहीं चलेगा कि पत्ते कहां से कहां उड़कर चले गए? कुछ कहा नहीं जा सकता है। वैसे ही जो संयम के साथ जुड़ा रहता है, कभी मन में मोह के वेग से तरंगें तरंगित होती हैं। जैसे बाहर पवन के वेग से ये पत्ते हिलते हैं, वैसे ही मोह के वेग से हमारा मन तरंगित होता है। कभी कुछ तरंगें उठती हैं तो कभी कुछ तरंगें उठती हैं। विचार होता है कि ऐसी तरंगें क्यों उठती हैं? कभी कैसी तरंगें उठती हैं, तो कभी कैसी ही तरंगें उठ जाती हैं।

उसका कारण है—मोह। मोह एक है किंतु उसके प्रकार भिन्न-भिन्न हैं। किस समय कौन-सा प्रकार आवेग देता है पता नहीं चलता है। कंस के सामने अहंकार था/भय था, उस भय के कारण उसके भीतर स्पंदन हो रहा था। उस भय ने देवकी और वसुदेव को निवेदन करके वचन ले लिया कि मेरे घर में ही सारे प्रसव होंगे। वह आवेग भय के कारण, अहंकार के कारण था। दूसरी तरफ यदि हम कंडरीक की बात करें तो उसके भीतर काम का वेग था। उस काम के वेग से वह विचलित हो रहा था। इसी प्रकार कोई लोभ से, तो कोई ईर्ष्या से—इस प्रकार अनेक प्रकार से मोह के आवेग होते हैं। किस के मन से कौन-सा वेग जाकर टकराता है और उसी के अनुसार उसमें तरंगें उठने लग जाती हैं। प्रसन्नचंद्र राज ऋषि के सामने राजकुमार का ममत्व भाव था। वहां ममत्व के रूप में तरंगें उठीं और उनसे पांच सौ मंत्रियों का वध कराने वाली बन गई। ये तरंगें चलती रहती हैं। हम सोचें कि शांत हो जाएं, या कोई सोचे कि जब सारी तरंगें शांत हो जाएंगी तब साधु बनना ठीक रहेगा!

तब तो भरत चक्रवर्ती की तरह हमें इंतजार करना पड़ेगा। रोज अरिसा भवन में जाओ और अपने शरीर को सजाओ। रोज ब्यूटी पार्लर चले जाओ और अपने शरीर पर शृंगार सजाते रहो। फिर ऐसे (एक्शन) अंगुलियों में से अंगूठियां उतार-उतार कर देखते जाओ। फिर शायद किसी दिन जैसे भरत चक्रवर्ती में भाव जगा वह भाव भीतर में पैदा हो जाए कि नहीं, नहीं, ये तो रौनक जड़ पदार्थों की है। मेरी आत्मा की रौनक नहीं है। वह दशा (क्षीण-मोह) यदि प्राप्त हो जाए तो फिर मन तरंगित नहीं होगा– वीतराग बन जाने पर। वीतराग को मोह धक्का नहीं लगा सकता है। मोह का वेग उस मन को आंदोलित नहीं कर सकता। उनके मन पर वह अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता– वीतराग बनने के बाद। जहां कोई वीतराग बन जाता है वहां पर मोह के वेग शांत हो जाते हैं। फिर मोह का कोई असर वहां पर चल नहीं पाता है।

तीनों महासतीवर्याएं जिन्होंने पहले सामायिक चारित्र स्वीकार किया और आज उनकी बड़ी दीक्षा का प्रसंग बन गया। इन्हें मुख्य रूप से यह सावधानी रखनी है कि ये मन की तरंगें चलती रहेंगी किंतु इनसे हमें विचलित नहीं होना है। इन तरंगों को शांत रखना है। इन तरंगों से अपने आपको सुरक्षित रखेंगे तभी हम अस्थिर होने से बच सकते हैं। संयम भाव स्थिर और प्रखर रहेगा तो ये तरंगें तरंगित नहीं हो पाएगी। किसी ग्लास की पेटी में या शोरूम में गमले लगे हैं वहां पर पत्ते होंगे पर वे हिलेंगे नहीं। चूंकि वहां पर हवा नहीं होगी। हवा नहीं लगेगी तो पत्ते नहीं हिलेंगे उसी प्रकार मन संयमित रहेगा तो तरंगें नहीं उठ पाएंगी। तरंगें नहीं उठेंगी तो संयम से प्रकंपित नहीं होंगे। हम हवा को नहीं रोक सकते। हमारे कषायों को कौन रोक सकता है? हमारे भीतर पड़ा हुआ मोह, अभी आज ही समाप्त नहीं हो गया! उस मोह को अभी रोका नहीं जा सकता है। उसका उदय भाव होगा। किंतु यदि हमने संयम को सुरक्षित रखा। संयम का आधार ले लिया, संयम का सहारा बनाए रखा तो संयम के सहारे वे पत्ते कभी थोड़े बहुत हिल सकते हैं। तरंगें इधर-उधर कर (हिला) सकती हैं। किंतु उस पेड़ से हमारे पत्ते को अलग-थलग नहीं कर पाएंगी। इसलिए संयम की साधना, संयम का प्रखर तेज, वह हमारे भीतर निरंतर बना रहना चाहिए। और उस स्थिति में हम पूर्व उत्थित, पहले साधु जीवन में उठे हुए हैं, किन्तु 'नो निपात' हमारा निपात नहीं होगा। हमारा गिरना नहीं होगा। हम पेड़ से गिरे पत्ते की तरह अलग-थलग गिरकर अपने जीवन को खत्म करने वाले नहीं बनेंगे। हम अभी छद्मस्थ हैं। छद्मस्थ को

मोह की हवा विचलित करती रहती है। उसमें विचलन पैदा होता रहता है। बड़े-बड़े धुरंधर योगी, महायोगी भी स्थिर नहीं रह पाते हैं। किंतु यदि संयम रहेगा तो जैसे स्थूलभद्र मुनिराज...! स्थूलभद्र मुनिराज ने, जो संयमी थे, उस संयम को उन्होंने जबरदस्त थाम लिया कि कितने ही थपेड़े आएं, कितनी ही आंधियां आए, कितने ही तूफान आएं किंतु रंच मात्र भी इधर से उधर विचलन नहीं होगा। एक सूत...। एक सूत जितना भी मन में कोई अंतर नहीं आया। किंतु वह एक दिन की साधना नहीं थी। वह साधना एक दिन की नहीं थी। जिस समय वह चीज हाथ में आ जाएगी, मैंने 'मुट्ठी बांध ली। मुट्ठी बंधती है और मुट्ठी बंधी रहनी चाहिए। अपनी मुट्ठी में हिम्मत है। खुल जाने के बाद? मुट्ठी बंद है तभी ताकत है।' बचपन में मुट्ठी बंद होती है। बच्चा जन्म लेता है उस समय मुट्ठियां बंद होती हैं। मतलब ताकत लेकर आया है। और जाते-जाते, जाते-जाते... सारी ताकत, सारी ऊर्जा, सारी शक्ति निचोड़ कर मैंने यहीं खत्म कर दी। वापस मुट्ठियां बंद करनी हैं या हाथ पसारे जाना है? संयम की मुट्ठी बंद रहेगी तो ताकत रहेगी। कहीं भी जाएंगे तो वह ताकत रहेगी। ऐसा नहीं है कि यहां से चले गए तो हमारी ताकत यहीं निचोड़ दी गई। परभव में भी जाएंगे तो वहां पर भी ताकत बरकरार रहेगी।

आगम प्रमाण है। हमारे लिए आगम ही प्रमाण है। वही दर्पण है। उसी के आधार पर हम विचार कर सकते हैं। आगम में दुर्लभ बोधि के पांच कारण बताए हैं। वे कौन-कौन से हैं? कमल जी! दुर्लभ बोधि के कारण कौन-कौन-से हैं जीव जिससे दुर्लभ बोधि बन जाता है? अरिहंतों का अवर्णवाद करना, अरिहंत प्ररूपित धर्म का अवर्णवाद करना, आचार्य-उपाध्याय का अवर्णवाद करना, चतुर्विध संघ, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएं, इनका अवर्णवाद करने से और पांचवां भेद बताया कि तप और संयम की आराधना करके जो आत्माएं देवलोक में पहुंची हैं, उन आत्माओं का अवर्णवाद किया जाता है तो वह भी दुर्लभ बोधि का कारण है। उससे भी बोध दुर्लभ हो जाएगा– ज्ञान, दर्शन, चारित्र की स्पर्शना कठिन हो जाएगी।

अभी मैं यह बता रहा था कि तप, संयम की आराधना से जो देव बने हैं उनकी मुट्ठी बंद थी। इसलिए वह शक्ति कहां ले गई? शक्ति ऊपर की ओर ले गई और पतन नीचे की तरफ होता है। हमारी शक्ति रहेगी तो हम ऊपर की ओर जाएंगे। नीचे की ओर? (प्रत्युत्तर– नहीं जाएंगे) बोलो, नीचे

की ओर नहीं जाएंगे। और वह शक्ति हमारे स्वयं की है। हमारी साधना की है, हमारे संयम की है। उस संयम की शक्ति से आने वाले मोह के वेग को भी हम पछाड़ सकते हैं। ऐसी एक दीवार हम खड़ी कर सकते हैं जिससे मोह के पवन का झोंका आकर उस दीवार से टकराकर वापस चला जाता है। जैसे बांध बंधा हुआ है तो पानी आकर टक्कर लेता है किंतु आगे जा नहीं पाता। उसको रिवर्स होना पड़ता है। वैसे ही ये मोह के थपेड़े हिलाते रहेंगे किंतु हम अपने आप को कभी विचलित नहीं होने देंगे। हमारे मन की तरंगें चलती रहेंगी किंतु संयम के पेड़ के साथ हम यदि जुड़े हुए हैं तो यह मन की तरंगें पत्ते को खाली थोड़ा खड़खड़ाएगी। खाली हिलाएगी। किंतु उसमें ताकत नहीं है कि उस पत्ते को पेड़ से अलग-थलग कर सके। वैसे ही हमें साधना करनी है। यदि इस प्रकार से मन को साधने का प्रयत्न करेंगे तो हम समझ पाएंगे कि वस्तुतः, मन में कैसी ताकत है। मन में इतनी शक्ति है जिससे मोह को खदेड़ा-पछाड़ा जा सकता है। किंतु हमारा ही घरभेदू मन जब संयम के साथ खेल खेल लेता है– वैसी स्थितियां यदि अभी भी रही तो वह हमें नीचे की ओर ले जाने वाली हो सकती है। किंतु हमें सावधान रहना है। हमें हर वक्त सजग-सचेत रहना चाहिए। सावधान रहेंगे तो किसी की हिम्मत नहीं कि वह हमारे को पछाड़ दे। हमारे को संयम से च्युत कर दे। संयम से हिला दे। सावधानी बहुत जरूरी है। सजगता बहुत जरूरी है। यह सजगता यदि रहेगी तो कोई शक्ति हमें विचलित करने वाली नहीं बनेगी। हम इसी प्रकार से अपनी साधना में गतिशील हो जाएं। और खासतौर से तीनों महासती जी को यह बात ध्यान में रखनी है कि कैसे भी थपेड़े आवें? जैसे यह पंचम आरा है, यहां क्या-क्या बातें सामने आ सकती हैं। संयम जीवन से हटाने-डिगाने के लिए कई मनोरम बातें आ सकती हैं जो सुनने में तो अच्छी लगती हैं। किंतु जब उसका आचरण होता है तो वह दुःखद हो जाता है।

वर्तमान युग प्रचार का है। हमें अमुक-अमुक साधनों को उपयोग में लेना चाहिए। क्यों उपयोग में लेना चाहिए? बहुत से लोग आते हैं, वे आपकी वाणी सुनने के लिए तत्पर होते हैं। आपके व्याख्यान से पता नहीं कितने लोगों की भावनाएं जग जाएंगी! ऐसी कई मनोरम बातें– तर्क, सामने आ सकते हैं। पर ध्यान रहे 'ऐसा नहीं हो कि हम सो जाएं और दुनिया जगे'। ऐसा काम हमें नहीं करना है। दुनिया जगे यह अच्छा है पर हम सो जाएं! ऐसा विचार किस काम का? ऐसा प्रचार किस काम का? ऐसा विकल्प हमारे

काम का नहीं है। ऐसे विकल्पों को स्वीकार नहीं करना है। माया-कपट नहीं करना है। क्योंकि दूसरे महाव्रत में मुनि प्रतिज्ञा करता है– क्रोध से, लोभ से, भय से, हास्य से किन्हीं भी कारणों से मृषावाद का प्रयोग नहीं करना है। चाहे गर्दन चली जाए किंतु मेरे सत्य वचन नहीं जाए।

तन जाये तो जाये, मेरा सत्य धर्म नहीं जाये...।

समय हो गया है, इसलिए अन्य महाव्रतों को भी यथायोग्य यथासमय समझा जा सकता है। इतना कह कर विराम...।

28 अगस्त, 2019
(पर्युषण पर्व का दूसरा दिन)

10

सदा सुखदाई गोद धर्म की

शांति जिन एक मुज विनति...

पर्युषण-पर्व का आज तीसरा दिन है। पर्युषण-पर्व की आराधना क्यों महत्त्व रखती है? सामायिक, पौषध क्यों किए जाते हैं? हम अच्छी तरह से विचार करेंगे। अनुप्रेक्षा-समीक्षा करेंगे तो हमें रिजन मालूम पड़ेगा कि इसके पीछे हेतु क्या है? कारण क्या है? किसलिए इसको करना है यह स्पष्ट हो पाएगा। मिठाई कभी भी खाओ वह मीठी ही लगती है। भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाइयां होती हैं, वह मीठी लगती है और भूख में रोटी भी बहुत मीठी लग जाती है। मुख्य रूप से सबसे पहले हमें अपनी जीवन चर्या पर ध्यान देना चाहिए कि मेरी दिनचर्या क्या है? मेरे जीवन की चर्या क्या है? हमारी जीवनचर्या सदाचारमय होनी चाहिए। एकदम सात्त्विक चर्या होनी चाहिए। परस्पर के संबंधों को हम संबंध समझें किंतु उसमें अनुरक्ति-आसक्ति नहीं हो। जहां हमारी दृष्टि गड़ जाती है वह हमारे भीतर में फफोला पैदा करती है। जहां आसक्ति लग जाती है उससे फफोले पैदा हो जाते हैं। उससे हमारे भीतर में पस पड़ने जैसी स्थिति बन जाती है। मतलब यह है कि आसक्ति बाहर के पदार्थ से होती है या बाहर के व्यक्ति से होती है। किंतु उसका प्रभाव हमारे भीतर होता है। वह अछूता नहीं रहता है। उसमें फफोले हो जाएंगे। उसमें पस पड़ जाएगा और उससे दर्द पैदा होगा। बाहर जो प्रक्रिया हो रही है उसका असर हमारे पर होने लगेगा। इसलिए जीवन जीना है, जीवन जीएंगे। जी रहे हैं और जीना है। पर किसी से लाग-लपेट नहीं करेंगे। किसी से अनुराग नहीं बढ़ाएंगे।

यहां अनुराग का मतलब है कि ऐसा अनुराग जिसमें हम अपने आपको भूल जाएं। जिसमें हमारी चेतना कुंठित हो जाए। वैसी आसक्ति और

वैसा राग हमें नहीं बनाना चाहिए। तो ही हमारी जिंदगी शांति से चलेगी। समाधि से चलेगी। हम शांति व समाधि का जीवन जी पाएंगे। अन्यथा चाहे शांतिनाथ भगवान की हम स्तुति कर लें! चाहे हम उनके नाम की माला जप लें किंतु विशेष लाभ होने वाला नहीं है। उससे हमें जो क्षणिक लाभ महसूस होता है वह भी मानसिक दशा का लाभ है। थोड़ी देर के लिए मन उसमें रम गया। इसलिए ऐसा लगा कि हमको शांति मिल गई है। पर वह शांति हलदी के रंग के समान होती है। जैसे हलदी होती है ना, उसके रंग को धूप लगी नहीं कि उसका रंग उड़ जाता है। वैसे ही थोड़ा-सा ताप लगा नहीं कि वह शांति छिन्न-भिन्न हो जाती है। इसलिए शास्त्रकार हमें बार-बार यह संबोधन कर रहे हैं– यह कि मेरेपन के भाव को जमने मत दो।

जो मेरेपन के भाव को, मेरापन की बुद्धि को छोड़ता है वही सच्चे मायने में सुखी हो सकता है। घर-परिवार को छोड़कर भी यदि मेरेपन की बुद्धि का त्याग नहीं किया तो मुनि बनने की भी सार्थकता नहीं है। मुनि के लिए तो यहां तक बताया गया है कि उसको यह भूल ही जाना चाहिए कि मैं कौन हूं? मैं किस परिवार से आया हूं? मेरे परिवार में कौन-कौन सदस्य हैं? इन सबकी स्मृति रखने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने में ही रमे। अपने में ही चले। और गृहस्थ में रहने वालों के लिए भी कहा गया है– यदि वे पूर्णतया त्याग नहीं कर पा रहे हैं तो कम-से-कम यह त्याग तो हो ही सकता है कि किसी पर भी आसक्ति नहीं हो। किसी पर गृद्धि भाव नहीं हो। गृद्धि भाव का तात्पर्य यह बताया गया है कि गिद्ध आकाश में बहुत ऊंचा उड़ता है किंतु उसकी नजरें मांस के लोथड़े पर लगी रहती हैं। उसकी आसक्ति-लगाव, प्राप्तव्य, यानी वह प्राप्त क्या करना चाहता है? मांस के लोथड़े को वह प्राप्त करना चाहता है। इसलिए उस पर उसकी दृष्टि बनी रहती है। हम इस बात पर बहुत अच्छी तरह से समीक्षा करें। अपने दिल की गहराई में पहुंचें और अनुभव करें कि मेरा प्राप्तव्य क्या है? मैं किसे प्राप्त करना चाहता हूं? हमारे भीतर धन प्राप्ति की आकांक्षा है या धर्म की प्राप्ति की आकांक्षा है? कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमें स्वयं में, अपने में विचार करना होगा। हम यदि गहराई में ढूंढ़ेंगे तो मेरे खयाल से ज्यादा गहरा जाना नहीं पड़ेगा। एक दरवाजा खोलने पर ही मालूम पड़ जाएगा कि वहां पर क्या स्थिति रही हुई है?

अधिकांश लोग धन की दौड़ में दौड़ते हैं भले ही नाम शांति का ले रहे हों। भले ही गीत समाधि के गाते हों। भले ही शांतिनाथ भगवान की स्तुति

करते हों। किंतु उनका प्राप्तव्य है धन। दिशाएं देखें तो भिन्न-भिन्न हो गईं। प्राप्त, मैं क्या करना चाह रहा हूं और गीत किसके गा रहा हूं? कर क्या रहा हूं? 'खावे-पीवे खसम रो, गीत गावे वीरे रो' मन में धन बसा है और ऊपर से हम भगवान की माला जपते हैं। तो मन में शांति कहां से आएगी? (हाथ में रहा हुआ वस्त्रखंड दिखाते हुए) यह एक कपड़ा है। अगर इसी जगह पर एक इलास्टिक हो! इसको एक उधर से खींचता है, एक इधर से खींचता है तो उसकी क्या हालत होगी? इलास्टिक को किसी ने इधर पकड़ लिया और एक ने उधर से पकड़ा और दोनों उसको खींच रहे हैं तो उसकी हालत क्या होगी? एक स्प्रिंग होती है। देखी हुई है ना? मालूम है ना क्या होती है स्प्रिंग? उसको दोनों तरफ से खींचा जा रहा है तो उसकी हालत क्या होगी? उसमें जो, (स्प्रिंग में) संकोच और विस्तार का सिस्टम रहा हुआ होता है, खींचने पर उसका क्या होगा? वह भाव-सिस्टम लुप्त हो जाएगा। इलास्टिक को बार-बार खींचेंगे तो वह लूज हो जाएगा। वही हमारी स्थिति है कि हमारी मानसिकता/मनःस्थिति, वह लूज हो गई। अब वह निर्णय नहीं कर पा रही है, धन को छोड़ूं या पकड़ूं? धर्म को छोड़ूं या पकड़ूं? न तो धन छोड़ने का मन हो रहा है न धर्म को। किन्तु धन के साथ धर्म मिले तो तैयार हूं। और धन नहीं मिले तो तैयार हैं क्या? धन को छोड़कर धर्म करने का बोलें तो उसके लिए? म.सा.! आठ दिन हम छोड़कर आए हैं। मोबाइल से हाल-चाल तो नहीं लिए ना? आठ दिन मोबाइल का त्याग करने वाले कितने लोग हैं? कितने लोग हैं कमलजी को छोड़कर? जिन्होंने मोबाइल का आठ दिन के लिए त्याग कर दिया है। देख लो, चंद लोगों के हाथ खड़े हुए हैं। भले ही हम यहां पर रह रहे हैं किंतु लगाव, खिंचाव किधर हो रहा है? एक बार हाल-चाल तो पूछ लूं! और पूछ भी लेंगे तो क्या होगा? कहीं-न-कहीं हमारा मन अटका हुआ है। और मन जहां अटका हुआ रहता है तो वह हमें आगे नहीं बढ़ने देता।

देवकी महारानी के घर में मुनिराज आए। आए, वहां तक सब ठीक है किंतु उसे पुरानी एक स्मृति/याद आ गई? अतिमुक्त कुमार मुनि ने कहा था कि देवकी! तुम जिन पुत्र रत्नों को जन्म दोगी, वैसे पुत्र भरत क्षेत्र में दूसरी माता की कुक्षि से जन्म नहीं लेंगे और जब उसने 6 ऐसे साधकों को देखा/6 ऐसे रत्नों को देखा तो उसके मन में विचार पैदा होने लगे। यह भ्रान्ति कहां है? मुनि की वाणी कभी खाली नहीं जाती। मुनि के वचन कभी अन्यथा नहीं होते हैं। 'जे भाखे वरकामिणी, जे भाखे मुनिराज।' शीलवती नारी मुंह से जो

बोल दे या मुनिराज के मुंह से जो निकल जाए वह कभी अन्यथा नहीं होता। मुझे अतिमुक्त नामक कुमारश्रमण ने बताया था कि मैं आठ संतानों की मां बनूंगी और मेरी कुक्षि से जन्म लेने वाले ऐसे धुरंधर रत्न होंगे जिनकी सानी भरत क्षेत्र में, दूसरे नहीं कर पाएंगे। वह सौभाग्य 'केवल' मुझे मिलने वाला था। मुझे मिलेगा, यह मुनिराज की भाषा रही है। ये मुनिराज के वचन रहे हैं। किंतु मैं जो देख रही हूं, वह भिन्न है। और अभी 'अंतगडदसाओ' सूत्र के माध्यम से आप यह बात बहुत अच्छी तरह से सुन चुके हो। हर वर्ष सुनते हो कि भगवान अरिष्टनेमि से देवकी महारानी समाधान लेती है। उसके मन में विचार आया कि मैं क्यों तनाव में जाऊं? भगवान जब हमारे यहां पर विराजमान हैं तो अपने मन की उलझी हुई गुत्थी को उन्हीं से सुलझा लूं। अपन थोड़ा बारीकी से विचार करेंगे कि उलझी हुई गुत्थी का समाधान नहीं हुआ। बल्कि वह सोच-सोच कर और उलझती हुई चली गई। क्या हो गया है? कैसे हो गया है? संशय-डाउट उत्पन्न हो रहे थे लेकिन उसके पास कोई समाधान था नहीं।

यथार्थ उसे ज्ञात नहीं था। सत्य क्या था, वह जान नहीं रही थी। किंतु एक उलझन बनी हुई थी और वह अपने ही विचारों में उलझती हुई चली गई। शंकाएं उठती हुई चली गईं किंतु समाधान मिल ही नहीं रहा है। अकस्मात् उसे ध्यान में आया। उसकी बुद्धि में आया एवं विचार पैदा हुआ कि मैं इस उलझन में क्यों उलझूं। जब सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान स्वयं यहां मौजूद हैं तो इस समस्या का समाधान मुझे भगवान से ही कर लेना चाहिए। और भगवान से समाधान मिल गया कि देवकी! जिन साधुओं को तुमने देखा और देखकर जो तुम्हारे मन में विचार पैदा हुआ, प्रश्न पैदा हुआ, वे पुत्र सुलसा के नहीं हैं। वे पुत्र तो तुम्हारे ही हैं। सुलसा केवल उनका पालन-पोषण करने वाली रही है। ये सुनते ही देवकी का चेहरा एकदम हर्षित हो गया। पुलकित हो गया। हर्षोल्लसित हो गया। वह मन में विचार करने लगी कि मेरे पुत्र हैं! मैं उनके दर्शन करना चाहती हूं। उसने दर्शन किए और कितना हर्ष! आज की माताओं का ममत्व ज्यादा है या पहले की माताओं का ममत्व ज्यादा था? (प्रत्युत्तर– पहले की) आप भी बोल रहे हो कि पहले की माताओं में ममत्व ज्यादा था। पहले की माताओं में ज्यादा था तो अभी कम क्यों हो गया? व्याख्यान ज्यादा सुन लिया कि ममत्व भाव नहीं रखना। मेरेपन की बुद्धि नहीं रखनी चाहिए इसलिए ममत्व कम पड़ गया। वात्सल्य कम पड़ गया? आगम

वचन ये हैं कि पुत्रों को वात्सल्य भाव से निहारती है और उस समय देवकी महारानी के स्तनों में दूध आ गया। आप विचार करें, माताओं के स्तनों में दूध कब आता है? जब मातृत्व-भाव का जन्म होता है, तब। बच्चे के जन्म से माता के स्तनों में दूध आ जाएगा जरूरी नहीं है। बच्चे के प्रति जो वात्सल्य भाव पैदा होता है। उसके भीतर में जो मातृत्व पैदा हुआ वह मातृत्व भाव उसके स्तनों में दूध लाने वाला बन गया। आज उस मातृत्व भाव का अभाव होता जा रहा है। मतलब मातृत्व कम होता जा रहा है।

हमने यह तो बहुत बार सुना है कि जैसे ही कोई राजकुमार अपनी मां से दीक्षा की बात करता है तो माता धड़ाम से बेहोश होकर गिर जाती है अर्थात् वह ऐसा कभी सुनने के लिए तैयार नहीं थी। अपूर्व श्रुत, जो पहले कभी नहीं सुना गया। पहले कभी सोचा नहीं। कभी ऐसी कोई विचारणा नहीं बनी। ऐसा अप्रिय सुनने से बेहोश हो जाती है वह। सुन नहीं पा रही है। बिलखती है। किंतु, वह वैरागी खड़ा है। एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या उसकी इंसानियत खत्म हो गई है? क्या वह इतना निष्ठुर हो गया? इंसानियत खत्म नहीं हो गई। निष्ठुर नहीं हो गया। किंतु उसके भीतर का राग भाव हट गया। राग हमें रुलाता है। राग से हमारे भीतर क्रन्दन पैदा होता है। राग से हमारे भीतर शोक पैदा होता है। राग से हमारे भीतर वेदना पैदा होती है। और जब राग को वहां से हटा दिया– विराग के/वैराग्य के भाव आ गए; वहां व्यक्ति द्रष्टा बन जाता है। वह जानता है कि मेरे करने से कुछ भी होने वाला नहीं है। मैं केवल उपचरित हूं। मैं केवल औपचारिकता का निर्वाह कर सकता हूं। बाकी मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है।

व्यक्ति का जैसा उपादान होता है वह उपादान ही फलता है। एक कुत्ता खड़ा है किसी ने उस पर लाठी चलाई। हाथ में लाठी लेकर उसे लाठी से मारने का प्रयत्न किया तो कुत्ता क्या करेगा? उस लाठी को पकड़ने का प्रयत्न करेगा। और सिंह पर कोई वार करता है तो सिंह क्या करता है? वो वार को नहीं देखता है। वार किससे किया गया है वह उसको नहीं देखता है। वह देखता है कि वार करने वाला कौन है? सिंह पर जो वार करता है, सिंह उस वार करने वाले पर झपटता है। जिसकी दृष्टि में वह तत्त्व आ गया तो वह निमित्तों को नहीं देखता है। वह उपादान को देख रहा है। उसकी दृष्टि इस पर है कि कर्ता कौन है? बाकी सब चीजें औपचारिक हैं। जिसने जैसे कर्म किए हैं उन कर्मों का भोग उसे करना ही होगा। वे यदि उदय में आएंगे तो वह उनसे नहीं बच

पाएगा। यह बात अलग है कि द्रष्टा बन जाए। ज्ञान की आंख खुल जाए तो उन कर्मों का परिणाम, उन कर्मों के फल को वह निरस्त कर सकता है।

एक टाइम बम समझ लीजिए उस प्रकार की चीज किसी अनाड़ी या नासमझ के हाथ में लगी। वह उसको हाथ में लेकर इधर-उधर कर रहा है। वह बम फूट जाता है और उसको चोट लग जाती है। वही बम, किसी बम निरोधक दल के हाथ में जाता है तो वह उसके फल को/उसकी शक्ति को निरस्त कर देता है। अब चाहे कितना ही कोई कसे, अब उस टाइम पर वह नहीं फटेगा क्योंकि उसकी शक्ति को निरस्त कर दिया गया है। जैसे एक चना होता है और एक भूंगड़ा होता है। चने को खाद-पानी मिलता है तो उसमें अंकुरण हो जाता है। और भूंगडे को भी खाद, पानी दिया जाए तो उसमें कितने दिनों से अंकुरण होगा? अंकुरण नहीं होगा। उसमें कुछ था जो अंकुरित होने वाला था। उसको वहां से निकाल दिया। निकाल दिया तो अब अंकुरित नहीं हो रहा है। वैसे ही जो कर्म हमने किए हैं, उदय में आएंगे तो वे हमें परिणाम देंगे ही। किंतु हमारे भीतर वह ताकत होनी चाहिए कि उसके भीतर की शक्ति को निरस्त कर दें ताकि आगे उसके परिणाम हमको नहीं मिले और परिणाम आगे बढ़े नहीं। वह बम समय से पहले निरस्त हो जाए ताकि फूटे नहीं। यह बात जिसकी समझ में आ जाती है वह यह सोचता है कि कुल्हाड़ी से कोई काटे तो भले ही काटे। कोई मेरा कुछ भी बिगाड़े मेरा कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है।

जब मैं आगम की बात करता हूं और कभी उस पर विचार जाता है तो दिल की कली-कली खिलने लग जाती है। भगवान ने साधु से कहा कि कोई तुम्हारे पर मारणान्तिक हमला करे तो तुम शांत रहो। तुम्हें कोई प्रतिकार नहीं करना चाहिए। किंतु श्रावकों के लिए यह बात नहीं कही। श्रावक पर कोई हमला करे तो? श्रावक पर हमला करे तो क्या करना चाहिए? यदि उसमें ताकत है तो प्रतिकार करने की आवश्यकता नहीं है। यदि शांत नहीं रह पा रहा है तो उसे प्रतिकार करने की छूट है। वह प्रतिकार कर सकता है। आपके पहले व्रत में यह बात बताई है। जो शरीर को कष्ट पहुंचाने वाला है वह अपराधी है। ऐसे अपराधी को दंड देने का अधिकार है। चेड़ा महाराज ने युद्ध किया वे 12 व्रतधारी श्रावक थे। उनकी प्रतिज्ञा में दोष नहीं लगा क्योंकि उनके सापराधिक हिंसा खुली थी। किंतु मुनि के लिए ऐसा नहीं है कि कोई उसे मारने के लिए तत्पर है तो वह उससे लड़ने लग जाए। भिड़ने लग जाए।

उसके साथ धक्का-मुक्की करने लग जाए कि देख लेता हूं तुमको! ऐसा मुनि को नहीं करना चाहिए। 'नत्थि जीवस्स नासुत्ति' मुनि! तुम विचार करो जीव का नाश होने वाला नहीं है। मुनि, तुम्हारी दृष्टि तुम्हारे पर वार करने वाले पर नहीं जानी चाहिए। तुम्हारी दृष्टि उस पर जाए कि वह वार क्यों कर रहा है? अर्थात् मैंने कभी उस पर ऐसा वार किया होगा। मेरे उपादान में वैसा होगा। वही उपादान यहां निमित्त पाकर फलित हो रहा है, तो मुझे उपादान को ठीक करना है, न कि निमित्त हो। यदि कोई सेठ का मुनीम/सेठ का आदमी किसी कर्जदार के घर पर उगाही (वसूली) करने के लिए जाए तो उससे लड़ने से क्या होगा? उसको धक्का देने से क्या होगा? वह निमित्त है। कर्जा हमने सेठ से लिया। सेठ ने अपनी उगाही के लिए अपने नौकर-कर्मचारी को, मुनीम को भेजा है। यदि आपकी हिम्मत है तो सेठ से जाकर बात करो। झगड़ा करो या कुछ भी करो। बीच वाले/मीडियम से बात करने से क्या होगा? यदि सेठ ने उसे अधिकृत किया कि तू जो भी समझौता-सेटलमेंट करना है, कर लेना तो उससे बात करने से फायदा है। अन्यथा कोई मतलब नहीं है।

इसलिए यदि कोई तुम्हारे पर वार कर रहा है तो समझो वार करने वाला कोई दूसरा नहीं है। तुम्हारा उपादान ही आकार लेकर खड़ा हुआ है और वह तुम्हारे उपादान को दूर करने वाला है। यदि कापी में लिखा होगा तो वह लिखा हुआ मौजूद रहेगा। उसको हटा देने पर ही रफा-दफा होता है। हटता है। अन्यथा वह चीज वहां पर बनी रहेगी। लोकसभा-विधानसभा में कोई कुछ असंगत बात बोल जाता है तो सामने वाली पार्टी ऑब्जेक्शन करती है और उनका विचार रहता है/आग्रह रहता है कि संसदीय रिपोर्ट में यह वाक्य अंकित नहीं होना चाहिए। उसको वहां से हटा देना चाहिए। ऐसी कार्यवाही होती है तो हटा भी दिया जाता है। जो संसदीय कार्य में समाविष्ट नहीं होती है, संसदीय रिपोर्ट में उसको जोड़ा नहीं जाता है। हटा दिया जाता है। हटा दिया तो अब उसकी कोई कीमत नहीं है। कोई मूल्य नहीं है। वैसे ही हमारे उपादान पर जो लिखा हुआ है वह हटा दिया तो फिर कोई मतलब ही नहीं है। फिर कोई आकृति खड़ी नहीं होगी। फिर कोई मेरे को मारने वाला नहीं रहेगा। जब तक उपादान में वह चीज है तो उसके कई आकार-प्रकार खड़े होंगे। किंतु यह ज्ञान इतना आसान भी नहीं है।

हमने ग्रेजुएशन किया होगा। बी.ए., एम.ए. किया होगा। एम.बी.ए., एल.एल.बी. की होगी। सी.ए. किया होगा। और भी पता नहीं कौन-कौन

सी डिग्रियां प्राप्त कर ली किंतु एक स्वयं की पहचान नहीं की तो उन डिग्रियों का मूल्य क्या है? भौतिक जगत में उस पढ़ाई का मूल्य हो सकता है किंतु आध्यात्मिक जगत में उसका कोई मूल्य नहीं है। एक तरफ हमारे से अनीति हो रही है। हम अन्याय रूप जीवों की विराधना कर रहे हैं। जो कार्य श्रावक की अवस्था में नहीं किए जाने चाहिए वैसे कार्य किए जा रहे हैं। दूसरी तरफ सामायिक, प्रतिक्रमण किया जा रहा है। पौषध किया जा रहा है। दोनों का तालमेल क्या जुड़ेगा? सामायिक की आराधना हमारी शक्ति-पावर, ऊर्जा को बढ़ाने के लिए है। यदि मैं अन्याय कर रहा हूं तो वह शक्ति अन्याय की तरफ जाएगी या न्याय की तरफ जाएगी? बिजली पैदा कर ली तो वह बिजली कहीं-न-कहीं खत्म होगी। उपयोग में आयेगी। चाहे उसे जलाने के लिए काम में लो या उस बिजली से ठंडक पैदा कर लो। बिजली का उपयोग होगा या नहीं होगा? जलाने के लिए भी बिजली का उपयोग होता है और एक आदमी को दाह-ज्वर हो गया, लू लग गई उसके लिए भी बिजली का उपयोग किया जाता है। एक तरफ बिजली जलाती है। किसी को भस्म करती है (शार्ट सर्किट हो गया तो भस्म करेगी) और दूसरी तरफ किसी बीमार को राहत भी पहुंचाती है। वैसे ही हमारे भीतर ऊर्जा पैदा होगी। किंतु हमारी दृष्टि यदि सही नहीं होगी तो उस ऊर्जा का उपयोग किधर करोगे? वह शक्ति किधर पहुंचेगी? कौन-से तारों से किन विचारों में बहेगी? क्या वह हमें सही रास्ता दिखाने वाली होगी? या गलत रास्ते पर बढ़ाने वाली होगी?

पहले हमें आस्रवों का त्याग करना चाहिए अर्थात् अन्याय, अत्याचार का परित्याग करना चाहिए। वह भूमिका मजबूत होने पर बात सही होगी। नहीं तो एक तरफ हम मटके-घड़े में पानी भर रहे हैं और दूसरी तरफ उसमें छेद बने हुए हैं। मटका कई जगह से फूटा हुआ है तो वह पानी कितने समय तक टिकेगा? धर्म, जो हम सुन रहे हैं वह हमारे भीतर कितनी देर तक टिकेगा? जिस धर्म को, जिस प्रवचन व ज्ञान की बात को सुन रहे हैं वह ज्ञान की बात हमारे भीतर कितनी देर तक रहेगी? व्याख्यान हॉल तक रहेगी या पौषधशाला तक रहेगी? या भोजनशाला तक रहेगी? वह बात कहां तक रहेगी? उसका असर-प्रभाव कहां तक रहेगा? यदि लगे कि भूमिका सही नहीं है तो पहले भूमिका को सही करना जरूरी है। जहां पर आप बैठे हुए हो वहां पर आपने चना (बीज) रखा और पानी दे दिया। खाद दे दी। क्या उसकी जड़ें फैलेंगी? आप जिस टाइल्स पर बैठे हो वह टाइल्स (भूमिका) उसकी

जड़ों को बढ़ने देगी? (प्रत्युत्तर–नहीं) फिर क्या होगा? उसकी जड़ें स्थान ग्रहण नहीं कर पाएंगी। वैसे ही जब तक हमारी भूमिका सही नहीं है तब तक की गई धर्म आराधना जड़ें ग्रहण नहीं करेगी। वह धर्म की पौध ऊंची नहीं बढ़ेगी तो उसमें जो मधुरता, सरलता, सहजता के फूल और फल लगने चाहिए वो नहीं लग पाएंगे। कहां से लगेंगे? जड़ें ही जगह नहीं पकड़ रही हैं। इसलिए पहले हमारी भूमिका को हमें सही करना चाहिए।

यहां चातुर्मास के प्रारंभ में, आदर्श श्रावक के जीवन की शैली कैसी होनी चाहिए, वह शिविर लगाया गया। आपने शिविर में भाग भी लिया होगा। किंतु आप में बदलाव कितना आया? बंजर भूमि में हल कितना भी चलाओ और कितने ही बढ़िया बीज बो लो, वे फसल देने वाले नहीं होंगे। वैसे ही जब तक हमारी भूमि को हम उपजाऊ नहीं बनाएंगे तब तक कितने ही बढ़िया से बढ़िया धर्म के बीज बो दिये जाएं हमारे को शांति-समाधि नहीं मिल पाएगी। शांति, समाधि के लिए सबसे पहले हमारी भूमिका साफ-सुथरी होनी चाहिए। सबसे पहले हमें उस पर ध्यान देना चाहिए। उस पर यदि आपने अपना ध्यान केंद्रित कर लिया तो आपका पर्युषण सफल हो जाएगा। सार्थक हो जाएगा। नहीं तो भले ही हमारी कितनी ही संवत्सरियां चली गईं और शायद आगे भी हम कितनी ही संवत्सरियां और मना लें–हमने कितने ही हल चला लिए कितने ही बीज डाल कर खाद दे दी, पानी दे दिया तब भी वह बीज ज्यों-का-त्यों पड़ा रहेगा। उगता नहीं है। उगता भी है तो जड़ें नहीं ले रहा है। उगता है और कुम्हला जाता है। आगे बढ़ता नहीं है। हमें नहीं लगता कभी कि हम इतना धर्म ध्यान कर रहे हैं यह कि इतनी शांतिनाथ भगवान की माला गिन रहे हैं, नवकार मंत्र की इतनी माला गिन रहे हैं! फिर भी मुझे वह समाधि क्यों नहीं मिली? क्योंकि हमने अपने आचरण को सुधारा नहीं है।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा., आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. और आचार्य पूज्य श्री नानालालजी म.सा. ने फरमाया और मैंने भी कई बार कहा–क्या कहा? मोतीलालजी की माला फेरने वाली बात सुनाई है। गुलाबजी! क्या बात है उनकी? यहां पर कौन-कौन है नाम-राशि? हमनाम?

मोतीलालजी के दो पत्नियां थी। पहली पत्नी से कोई संतान नहीं हुई तो दूसरी शादी कर ली और घर में दूसरी पत्नी आ गई तो बड़ी कहने लग गई है कि मेरा अब क्या काम? मैं तो भक्ति करूंगी। बड़ी वाली ने दरवाजे के पास जो रूम था वहां मोटा गादी तकिया लगाया और मोटे मनके की

बड़ी माला बना ली–छोटे मनके से काम नहीं चलता। हाथ से छूट जाता है इसलिए बड़े मनके की माला बना ली। बड़े-बड़े मनकों की माला लेकर दरवाजे के पास बैठ गई और मोतीलालजी, मोतीलालजी, मोतीलालजी! यह माला जपने लग गई। उसने समझा कि पतिव्रता का धर्म यही है इसलिए यह भक्ति करो। उसकी समझ जो भी रही हो। एक बार का प्रसंग। जेठ का महीना, तपती धूप। नीचे तो धरती तपे, ऊपर तपे आकाश और ऐसी स्थिति में मोतीलाल जी कहीं बाहर से आए। जीभ भीतर को खिंच रही है। मतलब क्या हुआ? जब प्यास लगती है। धूप ज्यादा होती है तो व्यक्ति प्यास से व्याकुल हो जाता है तब जीभ अंदर की तरफ खिंचने लगेगी। भयंकर प्यास लग रही है। चक्कर भी आ रहे हैं। दरवाजा खटखटा कर आवाज लगाई। बड़ी जी पास ही में थी तो आवाज पहुंच गई और उसने बोला, ठहरो-ठहरो अभी मैं आपके नाम की माला फेर रही हूं। माला पूरी हो जाए फिर खोलती हूं दरवाजा। उधर लौड़ीजी को आवाज पहुंची। वह झट से उठकर आती है और दरवाजा खोल मोतीलालजी को भीतर लेती है–पलंग, पाट पर बिठाती है। पैर पोंछती है। और क्या करती है? (प्रत्युत्तर–पानी पिलाती है) 'ऐड़ो इ करी थाणे' ऐसी भक्ति क्या काम की? तपे हाड़ में पानी पिला दिया! पानी ठंडा और हाड़ गर्म तो क्या होगा? युद्ध हो जाएगा शरीर में। बीमार हो गया। हॉस्पिटल ले जाना पड़ेगा और कभी राम नाम सत्य है। अंदर से शरीर गर्म है और ऊपर से ठंडा पानी पिलायेगी तो क्या होगा?

लौड़ीजी पसीना पोंछती है। पांव धोकर पंखा झलती है। जब शरीर का ताप थोड़ा लेवल पर आ गया तो फिर पानी पिलाती है। पानी तो पिलाना है। लेकिन कब? शरीर का तापमान क्या है? शरीर का तापमान ज्यादा है और पानी पिलाया तो दोनों में अंदर जाकर लड़ाई होगी। हमारे शरीर में युद्ध होगा और जिस क्षेत्र में युद्ध होता है वह क्षेत्र बर्बाद हो जाया करता है। वह क्षेत्र यानी हमारा शरीर बर्बाद हो जाएगा। पहले राजा युद्ध का प्रसंग उपस्थित होने पर अपने क्षेत्र से हटकर दूसरे क्षेत्र में जाकर युद्ध करते थे। वे नहीं चाहते थे कि मेरे क्षेत्र में युद्ध हो। मैं, मेरे क्षेत्र को बर्बाद-तबाह नहीं होने दूंगा। किंतु शरीर रूपी क्षेत्र में इधर तो गर्मी और उधर ठंडक! तो दोनों में युद्ध होगा। कौन-सी भूमि पर? मनुष्य शरीर की भूमि पर। उसकी मार शरीर पर पड़ेगी। वह ठंडा कर रही है। वह ठंडा हो जायेगा फिर पानी लड़ेगा नहीं। इसलिए पहले के लोग ऐसे तपे हाड़ पर पानी नहीं पिलाते थे और अभी के लोग क्या

बोलते हैं? क्या बोलोगे? घर पर पहुंचे, क्या पूछवाओगे? चाय या ठंडा? अब बताओ मोतीलाल जी किस पर खुश होंगे? और हम पौषध कर रहे हैं मोतीलाल जी, मोतीलाल जी। उस बड़ी जी की तरह कर रहे हैं क्या? हम माला जप रहे हैं– नमो अरिहंताणं, नमो अरिहंताणं, नमो अरिहंताणं, नमो अरिहंताणं की। क्या इससे हम अरिहंत बन जायेंगे? नाम जपने से अरिहंत बनेंगे या अरिहंत बनने की दिशा में कदम बढ़ाने के काम से अरिहंत बनेंगे? अरिहंत बनने की दिशा में बढ़ने का काम करना है या अहंकार बढ़ाने की दिशा में काम करना है? अरिहंत बनना है या अहंकारी बनना है? (सभा से धीरे से आवाज– अरिहंत) आवाज कहां है? ऊपर से हम कह रहे हैं। किंतु भीतर से हम जान रहे हैं कि हम अरिहन्त बनने की तैयारी में हैं या हम अहंकार बढ़ाने की तैयारी में रहते हैं!

हकीकत में यानी जीवन में झूठ-सांच करोगे तो आवाज में सचाई ही आएगी। आप ऐसे बातों को ढकने की कोशिश करोगे तो वे खुलेंगी कब? बाहर कब आएगी? ऐसे झूठ बोलोगे तो उपचार कैसे होगा? समझ लो शरीर में कहीं फोड़ा हो गया। आप उस फोड़े को ढककर रखोगे और उसमें यदि मवाद पैदा हो गई तो वह फोड़ा कभी ठीक होगा नहीं। उसको ओपन करे बिना वह ठीक होने वाला नहीं है। वैसे ही अपने भीतर के फोड़े को ओपन कर लो। हकीकत में तय कर लो कि मैं क्या करना चाहता हूं? अभी म.सा. ने फरमाया कि जब कृष्ण वसुदेव, देव की आराधना करके सफल होकर आए तो सफलता की डींगें हांकते हुए अपने अहंकार को नहीं बढ़ाया बल्कि अपने विनय भाव को बनाए रखा। यह नहीं जताया कि मैंने तीन दिन की तपस्या की। उसे कोई कम नहीं कहा जा सकता। कभी भी अहसान जताने की बात नहीं होनी चाहिए। तुमने बहुत अच्छा काम किया होगा। दूसरे के लिए परोपकार-भलाई का काम किया होगा! किंतु अहसान यदि जता दिया तो कोई मतलब नहीं है, 'कात्यो-पिंज्यो कपास'। जो कुछ किया उस पर धूल डाल दी है। धूल डाल दी मतलब सबकुछ निरर्थक हो गया। बेकार हो गया। किसी पर अहसान जताओ मत। किंतु एक बात ध्यान रखना कि यदि किसी के द्वारा तुम्हारे ऊपर कोई भी उपकार किया गया हो, तुम्हारा किसी ने भला किया है, थोड़ा-भी उपकार किया है तो उसके उपकार को भूलना कभी मत। हमें उपकार करके भूल जाना चाहिए किंतु हमारे पर कोई उपकार करे तो उसको कभी भूलना नहीं है। वरन् यह

कहना कि आपका बड़ा उपकार है। और तुमने किसी का किया तो ये नहीं कहना कि मैंने इतना कुछ किया लेकिन क्या मिला? (जोर देते हुए) मुझे क्या मिला? मुझे सुनने को क्या मिला? इतनी गालियां और सुननी पड़ी है। कोई बात नहीं, गालियों से कौन-से गूमड़े हो रहे हैं? दे दी गालियां तो दे दी। हम गालियों को क्यों लिए बैठे हैं? मेरा कर्तव्य है और मुझे निभाना है। यही सब बातें हमारे मन में रहनी चाहिए। यह सोच कब आएगा? जब हमारा धरातल सही होगा।

लौडीजी दौड़ी ना! उसकी यह तमन्ना नहीं थी कि मुझे पति के द्वारा शाबासी मिलेगी। मुझे पति का प्रेम मिलेगा। पति मेरे पर खुश हो जाना चाहिए। उसने जो कार्य किया वह पति को खुश करने के लिए किया या कर्तव्य के भाव से किया? कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। कर्म करो किंतु ये भाव नहीं रहे कि मुझे इसका परिणाम यह मिले। पति खुश हो जाए और मेरे से प्यार ज्यादा करे। मेरे को ज्यादा सुख-सुविधाएं दे। ये सब भावनाएं तुच्छ भावनाएं हैं। इससे हम अपने कर्तृत्व को बौना बना रहे हैं। इससे हमारा कर्तृत्व सही नहीं बनेगा और उसके परिणाम अच्छे आने वाले नहीं हैं। फल की अपेक्षा क्यों? यदि पेड़ ही पूरा नहीं फलेगा, उसकी जड़ें ही नहीं जमेंगी तो फल मिलेगा कहां से? आपने आम का पौधा लगा दिया और कह रहे हो कि यह ऊंचा होता ही नहीं है। होगा कहां से? क्योंकि उसकी जड़ें गहरी नहीं जा रही हैं। जब पेड़ बराबर बढ़ेगा नहीं तो फलेगा कैसे? उस पर फल आएंगे कैसे? यही अपन लोगों की स्थिति है। यदि हमारे भीतर वह समता, वह समाधि नहीं आ रही है तो इसका कारण है कि कहीं-न-कहीं अपने भीतर को हमने उर्वर नहीं बनाया है। हमारे भीतर उर्वरा शक्ति नहीं है। इसलिए हमें पहले अपने भीतर ध्यान देना चाहिए कि मैं उसे कैसे उर्वर बनाऊं? मेरे भीतर कषायों के जो झाड़-झंखाड़-जंगल पैदा हुए हैं, कंटीली झाड़ियां पैदा हुई हैं पहले मैं उनको हटाने की कोशिश करूं एवं उसको साफ-सुथरा करूं। जब जमीन को समतल करूंगा फिर उसमें बीज बोऊंगा तो वह हमारा भीतर (भूमि) फल देने वाला होगा। और हम अपने जीवन को सफल करेंगे। 'सत्यं शिवमं सुन्दरम्' की दिशा में आगे बढ़ेंगे। फिर हमारी भूमिका वैसी बन जाएगी जैसी पूर्व के श्रावक सामायिक करते थे। हमारी सामायिक भी वैसी ही हो जाएगी। हो जाएगी या नहीं हो जाएगी? हमारी सामायिक, वह कीमती हो जाएगी या नहीं हो जाएगी?

आज हमारी सामायिक की कीमत कितनी है? कोई सौ-पचास रुपये दे दे तो भी ज्यादा ही होंगे। हमारे सामायिक की कीमत देखो। रोज यहां मदन मुनिजी और कभी कोई अन्य संत प्रेरणा देते हैं और आज यदि यह घोषणा हो जावे कि पांच सामायिक एक साथ करने वालों को सौ-सौ रुपये देंगे। सौ रुपये के लिए कौन करेगा? बिना पैसे दिए पांच सामायिक करने के लिए कहो तो कोई कहता है कि मेरे तो घुटने दर्द करते हैं। वो कहेंगे कि एक साथ पांच सामायिक तो नहीं होती और सौ रुपये का इनाम घोषित हुआ तो कितने तैयार हो जाएंगे? नानेशवाणी के भाग कितने हैं? नानेशवाणी कितने भागों में प्रकाशित हो चुकी है? (सभा से अलग-अलग आवाजें– 51, 52 या 53) 52 तो हो ही गए होंगे। कितने भी हो किंतु हमारे में से कितने लोग हैं जिन्होंने एक वर्ष पहले तक 15 भाग/15 पुस्तकें पढ़ ली हैं। पूरी पुस्तक! पूरी 15 पुस्तकें किसने पढ़ ली है? एक-दो हाथ खड़े हो रहे हैं। अभी नानेशवाणी के ऊपर प्रश्न पूछे जाएंगे। परीक्षाएं होंगी। परीक्षाओं की घोषणा हो रही है कि नानेशवाणी की परीक्षा रखी गई है तो कितने लोग पढ़ रहे हैं? फर्स्ट प्राइज के लिए पढ़ रहे हो या किसलिए पढ़ रहे हैं? आप फर्स्ट प्राइज के लिए नहीं, ज्ञान बढ़ाने के लिए पढ़ रहे हो तो इतने दिनों तक तुमने क्या किया? किसी ने नहीं पढ़ी इतने दिनों तक। किताबें तो वर्षों से छपी हुई हैं। पचास से ज्यादा भाग छपे हैं किंतु अभी तक 15 भी नहीं पढ़े और घर में पचास पुस्तकें पड़ी होंगी। अभी परीक्षा की घोषणा की तो फर्स्ट प्राइज है...? (सभा– ढाई लाख रुपये) बंपर पुरस्कार। बंपर ऑफर निकाला गया है। यह पुरस्कार रखा गया तो पढ़ने के लिए हमारा मन हो गया, नहीं तो पढ़े कौन? परीक्षा रखी गई तो सोचा कि पढ़ लेते हैं और परीक्षा दे देते हैं। शायद कुछ इनाम मिल जाए। कुछ भी मिल रहा हो लेकिन इनाम तो मिलेगा। हमने वह पढ़ी जरूर किंतु आकर्षण किधर बना? किधर बना आकर्षण? यह गलत रास्ता हो गया। यह रास्ता गलत हो जाता है। ज्ञान बढ़ाने के लिए पढ़ना है, न कि पैसों के लिए। आप कहते हो कि आजकल तो सारा काम ही पैसों के लिए हो गया है– 'पैसा फेंको तमाशा देखो'।

आज यदि व्याख्यान के बाद सभी को सौ रुपये देने की प्रभावना रख दी जाए तो कल यह पंडाल...! (प्रत्युत्तर– पूरा भर जाएगा) आप कह रहे हो कि म.सा.! ये पंडाल पूरा भर जाएगा। तो दूसरा पंडाल बनाना पड़ेगा उसके लिए पैसे खर्च करने पड़ेंगे। तो ऐसा काम करना ही क्यों कि पैसे भी दो और

फिर पंडाल भर जाए तो फिर अन्य पंडाल बनाने के लिए पैसा खर्च करो। पैसे भी दो और फिर पंडाल बनवाने का पैसा भी खर्च करो। हमें ऐसा खर्च क्यों करना भाई? ये बात मैं इसलिए कह रहा हूं कि हमारा लगाव, वह किधर बना हुआ है? हमारा लगाव-खिंचाव किधर है? वह खिंचाव हमें किधर खींच रहा है? एक तो खींच रहा है धन और दूसरी तरफ पर्युषण-पर्व चल रहे हैं। हर साल मैं जा रहा हूं और इस साल नहीं जाऊंगा तो ठीक नहीं रहेगा इसलिए ड्यूटी निभाने के लिए आ रहा है। ड्यूटी देने लिए आ रहा है। उसे हाजिरी लगानी है। जैसे कोई विद्यार्थी कॉलेज में जाता है और चक्कर लगाकर आ जाता है। क्लास में जाता नहीं। हाजिरी लगा दी। हाजिरी भले ही लगती हो। किंतु हमारा मन कहां होता है? स्कूल की क्लास में तो हाजिरी लगी और क्लास में जाकर देखें तो! वह है ही नहीं। वहां पर खड़ा ही नहीं है। पढ़ ही नहीं रहा है। बोलो, क्या कर रहा होगा? हम भी हाजिरी लगाते हैं। किंतु हमारा मन कहां है? क्या कर रहा है? वह क्लास में है या नहीं है? क्लास रूम में उपस्थित है या नहीं है? यदि क्लास में उपस्थित नहीं हुए तो क्या पाया? या क्लास में बैठता जरूर है किंतु मूड नहीं है। पढ़ता तो दीख रहा है किंतु कौन-सी किताब हाथ में है? बाहर तो कोर्स की किताब है और उसके भीतर क्या है? भीतर उपन्यास रखकर पढ़ रहे हैं? बोलो। क्या होगा? कैसे होगा कल्याण? 'कैसे हो कल्याण करनी काली है, नहीं होगा भुगतान हुंडी जाली है।' ऐसी स्थिति में कल्याण नहीं होगा। वह स्थिति कल्याणकारी नहीं बन पाएगी।

आप यह चाहते हो कि जाली नोट चल जाए। जाली नोट तो फिर भी चल जाएगा। नकली नोट भी कभी-कभी चल जाता है। एक बच्चा 12-13 साल का रहा होगा उसको बड़ी खुशी हुई। बहुत खुशी हुई और वह दौड़ते हुए बोलता जा रहा था कि चल गई रे, चल गई रे। चल गई रे, चल गई, चल गई रे, चल गई। संवेदनशील धारा 370 का मामला चल रहा था। क्या हो गया! जैसे ही धारा हटी, प्रशासन-पुलिस आदि सकते में आ गए कि क्या हो गया! ऐसे में वह बच्चा बोलते हुए जा रहा है कि चल गई रे, चल गई। सभी लोग दुकानें बंद करने लग गए। बाजार बंद होने लग गया। पुलिस उसको पूछती है कि क्या चल गई और कहां चल गई? गोली कहां चली? वह बोलता है कि मुझे क्या मालूम गोली कहां चली? वापस पूछा कि तू बोल रहा है ना, चल गई, चल गई। वह बच्चा कहता है कि मैं तो किराने की दुकान पर गया

था। अंधेरा था। बादल छाए हुए थे और दुकानदार को दिखा नहीं और एक खोटी चवन्नी थी वह चल गई। क्या चल गई? (प्रत्युत्तर– खोटी चवन्नी चल गई) ध्यान रखना, वहां पर खोटी चवन्नी चल गई। खोटे नोट भी चल रहे हैं। अखबार में खबर आती है कि इतने नकली नोट पकड़े गए। नोटबंदी हुई तो कितने नकली नोट आए? कितने नकली नोट लोगों से/घरों से और कहां-कहां से आए? और सरकार के पास जो पैसे जमा हुए उसमें भी नकली नोट चले गए। उनमें भी कई नोट जाली आ गए। वहां पर जाली नोट भी चल गए। किंतु धर्म के क्षेत्र में खोटा सिक्का नहीं चलेगा। यहां पर नकली नोट नहीं चलेगा। धर्म के क्षेत्र में नकली धर्म की आराधना नहीं चलेगी। हमको नकली आराधना करनी है या असली आराधना करनी है? हमें कैसी आराधना करनी है?

देवकी महारानी, वह क्या विचार कर रही है? और हमारे विचार क्या चलते हैं गर्भ में आने वाली संतान के लिए। वह तो आज विलाप कर रही है। वह कहती है कि मैंने सात रत्नों को जन्म दिया किंतु एक को भी गोद में नहीं खिला पाई। मैं अपने मातृत्व के कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर पाई। जो संस्कार मां के द्वारा अपने बच्चों को/अपनी संतान को दिए जाने चाहिए वे मैं नहीं दे पाई। धिक्कार है मेरे मातृत्व को! वह क्या बोल रही है? धिक्कार है मेरे मातृत्व को!

ले लो मां का आशीर्वाद, फले शुभकामना रे,
मत लोपो मां की आण, सदा शुभ भावना रे॥
देवकी तेरे लाल महान्, चमके जग में पाकर ज्ञान,
उपकृत होता सकल जहान,
माता भरत क्षेत्र में नामी वचन सुहावणा रे॥ ले लो...
घर पहुंची बदला संसार, बहती अंखियां अश्रुधार,
मन में उपजा गहन विचार,
धिक्-धिक् धिक्-धिक् देवकी तुमको, नहीं घर पालना रे॥ ले लो...।

कल म.सा. ने फरमाया कि पर्युषणों के व्याख्यान, जैसे होने चाहिए वैसे नहीं हुए। मैंने कहा, पहले दिन तो गला ही खराब हो गया और दूसरे दिन दीक्षा का कार्यक्रम हो गया और फिर बारिश शुरू हो गई तो टाइम पूरा हो गया। खैर, जो भी हुआ किंतु पर्युषण में जब तक देवकी रोये नहीं

और एवन्ता की नाव तिरावे नहीं तब तक पर्युषण का आनंद नहीं है। आप कहते हो कि 'कितो ही जीमा दिया लेकिन पापड़ नहीं खिलायो तो कई जीमायो' ?

इम झूरे देवकी राणी, माता पुत्र बिना बिलखाणी रे...।
मैंने सातों नंदन जाया,
पिण एक न गोद खिलाया जी। इम झूरे...

देखो, हम एक पार्ट यह देख रहे हैं वहां कौन रो रही है? कौन रो रही है? देवकी रो रही है। और यहां एक बालक रो रहा है।

मां, ऽऽ ओ मां मेरी, तू बोल करे क्यूं देरी,
मौन तुम्हारा दिल धड़काता, रूह कांपती मेरी॥ मां ऽऽ ओ...।

कहां पुकार कर रहा है? कहां गुहार कर रहा है? कहां पर? एक कत्लखाने में। मां वहां पर खड़ी है। मां का एबोर्शन जहां होना है वहां पर मां खड़ी है। डॉक्टर अपनी तैयारी करके उपस्थित है। ऐसे समय में वह अपनी मां को पुकार रहा है।

मां ऽऽ ओ मां मेरी, तू बोल करे क्यूं देरी...।

यहां कौन रो रहा है? एक तरफ मां रो रही है। बच्चे का जन्म नहीं हुआ था उस समय माताएं रो रही थीं। उस समय माताओं का दिल दुःख रहा था। और आज किसको रोना पड़ रहा है? बोलो ना, बोल क्यों नहीं रहे हो? भूले भटके आ जावे, वो वापस किणे रुलावे? भूले भटके अपनी पुण्याई से या पूर्व के कर्मों के योग से अगर जन्म ले लेता है तो फिर उस समय क्या होता है? बन्धुओ! उस बच्चे के रुदन को सुनें। वह रोते हुए कहता है...

'तूं ममतालु है माता, मां कहते ही दिल भर आता,
मात-पिता गुरु तीरथ है, आगम से यह स्वीकृत है,
मुझको तेरी गोद मिली, जिससे जीवन कली खिली,
इसे सजाओ और संवारो, भर दो रंग सुनहरी। मां ऽऽओ...।

वो कह रहा है कि मां, तू ममतालु है और तुम्हारा नाम लूं तो दिल की कली-कली खिल जाती है। माता-पिता और गुरु– ये तीनों तीर्थ होते हैं और यह बात आगम भी स्वीकार करता है। और तुम क्या कर रही हो? क्या हो रहा है? तुम्हारी मुझे गोद मिली है। इसके अलावा मैं कहां जाऊं? मेरे

लिए एकमात्र दुनिया में यही स्थान है। मां का मातृत्व और मां की गोद यदि शून्य हो गई तो उस बच्चे को दूसरा स्थान कहां मिलेगा? हम कहते हैं कि बेचारा अनाथ हो गया। कौन हो गया अनाथ? माता की गोद और पिता की छाया जिसकी हट गई वह बालक अनाथ हो गया। फिर उसको कहीं पर भी स्थान नहीं मिलेगा। बालक यदि रो रहा है और मां ने लगा लिया सीने से, वह बालक सुबकियां लेते-लेते दो मिनट...! दो मिनट तो बहुत लंबा समय हो जाएगा, दो सेकंड में उसकी सांस में सांस आएगी। वह रोना बंद हो जाएगा। एकमात्र मां की गोद है और मैं तुम्हारी गोद में आया। मुझे तुम्हारी गोद प्राप्त नहीं हो तो अब मेरा क्या होगा? अब क्या स्थिति बनेगी? उसके रुदन को कौन सुनेगा? धर्म क्षेत्र में बैठने वाली बहिनें और माताओ!

म्हाने अबके बचा ले, म्हारी माय, दूजो तो किणरो आसरो...
चार गति में मिनख जमारो, संता री आवाज,
कर विश्वास अठे मैं आयो,
माथे पड़ी है म्हारे गाज, दूजो तो...।

मां! मुझे नहीं मालूम था कि यहां ये खेल खेले जाते हैं। मैंने किसी समय संतों की आवाज सुनी कि चार गति में मिनख जमारो यानी मनुष्य गति बढ़िया है। मैंने भी टिकट ले लिया और मैं भी जोधपुर चला गया। और यहां आते ही सीधा जेल में! यहां उतरते ही पकड़ लिया मुझे कि संदेह में तुमको गिरफ्तार करते हैं। संतों की आवाज सुनकर और भूले-भटके आ गया तो अभी तो आने दो। प्लेन लेकर उड़े राहुल जी और कहां चले गए? कश्मीर-जम्मू, श्रीनगर और वहां पहुंचे तो कहा कि यू केन गो, यहां से रिवर्स ले लो। वापस उनको लौटने के लिए कह दिया, वहां पर जाने ही नहीं दिया। रोक लिया। वैसे ही हम क्या करते हैं? आने ही नहीं देते हैं। आने के पहले ही बोर्ड लगा देते हैं कि यहां जगह खाली नहीं है। पहले ही संयम रख लेते! पहले ही संयम रख लिया होता तो...! यह दुविधा क्यों मोल ली? एक तरफ तो मुंहपत्ती बांध रहे हैं और नीचे देखते हैं कि कहीं जीवों पर पैर नहीं पड़ जावे और दूसरी तरफ! क्या हो रहा है?

सन् 2000 के सर्वे में बड़े चौंकाने वाले आंकड़े हमारे सामने आए। अक्षरी ज्ञान में जैनी सबसे अव्वल हैं। जैन समाज के लोगों में अक्षर ज्ञान बहुत बढ़ा। और एबोर्शन में सबसे आगे नंबर मिला तो, किसको मिला? जैनियों को मिला। सबसे ऊंचा, सबसे ऊंचा नाम! अब माथो नीचे करने

कई रोवो। क्या काम आएगा यह अक्षरी ज्ञान? किस काम का यह ज्ञान! एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में कटार लिए खड़े हो। क्या करोगे पर्युषण की आराधना? कैसे करोगे पर्युषण की आराधना? जब तक यह पाप भीतर में पल रहा है। पलता रहेगा तब तक पर्युषण की आराधना कहां से हो पाएगी? वह चीख आज भी हमारे कानों में सुनाई पड़ रही होगी। बहुत-सी माताओं को ऐसा कहते सुना है, जाना है जो कहती हैं कि म.सा.! उसके बाद हालत खराब हो रही है। बार-बार वह चीख कानों में पड़ रही है। बार-बार वह चीज दिखाई दे रही है। उस सदमें से/उस घटना से मैं उबर नहीं पा रही हूं। जब एबोर्शन से बच्चे की जान ली जाती है तब खाली बच्चा ही नहीं जाता है। मातृत्व भाव भी उसके साथ में समाप्त हो जाता है। उसको वेदना– मानसिक वेदना होती है। मानसिक संताप होता है। पता नहीं कितना शारीरिक कष्ट होता है। किंतु व्यक्ति ने इसे आसान काम समझ लिया है। ब्रह्मचर्य का पालन करना नहीं चाहते। अब्रह्म-असंयम सेवन के परिणामस्वरूप कोई मेहमान आ जाय तो उसे बाहर का रास्ता दिखा देते हैं।

जरा सोचिए, बंधुओ! भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य की साधना बतायी यदि ब्रह्मचर्य की साधना हो सके। यदि ब्रह्मचर्य में मन लग जाए तो क्यों ऐसी रंगत बने? क्यों ऐसी स्थितियां बने? आज नाम हाइलाइट हो रहा है कि कहां पर एबोर्शन ज्यादा हुआ। सबसे ज्यादा किस कौम में एबोर्शन होता है? उस आंकड़े के अनुसार देखें तो एबोर्शन किसमें सबसे ज्यादा है? यद्यपि मैं उस आंकड़े को पूरा सही नहीं मानता क्योंकि जनगणना में सारे जैनी जैन लिखाते नहीं हैं। अनेक लोग अपनी गोत्र आदि लिखाते हैं जिससे जैनों की संख्या जनगणना में कम होती है। पर एबोर्शन में व्यक्ति जात लिखाने के बजाय जैन लिखाता है। इससे आंकड़ा सही हो ऐसा नहीं कह सकते।

एक छोटा-सा उदाहरण और एक मुद्दे की बात और कर लेते हैं। चलो जाने दो, समय भी हो गया है। 10:30 होने वाले हैं। बाद में कर लेंगे (सभा– फरमाओ-फरमाओ) आप कह रहे हो अभी बता दो। मुद्दे की बात तो ठीक है या मुद्दे की बात बाद की है पहले धरातल बनना चाहिए। धरातल ठीक होता है फिर काम की बात होती है। आज हमें विचार करना चाहिए और यह लगभग तय हो जाना चाहिए कि पूरे जैन समाज में आने वाले समय में कोई एबोर्शन नहीं होगा। ये बात हमारे भीतर से उठनी चाहिए। यह बात आंदोलन के रूप में होनी चाहिए। नरेंद्र मोदी, वे आंदोलन कर रहे हैं।

पहले सफाई अभियान का आंदोलन किया, दूसरा आंदोलन किया 'पानी बचाओ' का, तीसरा आंदोलन था 'बेटी बचाओ' और अब चौथा है कि प्लास्टिक उपयोग में नहीं लाना है। वैसे ही एक आंदोलन क्या होना चाहिए? आंदोलन होना चाहिए कि कोई एबोर्शन नहीं कराएगा। उसके लिए क्या करना है, कैसे करना है, समाज की क्या व्यवस्थाएं हो सकती हैं? उस पर बहुत अच्छी तरह से विचार किया जा सकता है। किंतु जब तक हम पैसे के खेल खेलते रहेंगे– 'पइसो म्हारो परमेश्वर, लुगाई म्हारी गुरु, छोरा-छोरी शालग्राम सेवा यां री करूं।' जब तक हम ये खेल खेलते रहेंगे तब तक इसका चिंतन हमारे मन में नहीं आ सकता। तब तक उत्क्रांति के भाव नहीं आ सकते। समाज हित का चिंतन मन में नहीं हो सकता। दौड़ लगी है। मुझे तो स्वार्थ दीख रहा है। मेरी कमाई कैसे हो, मुझे धन कैसे मिले? मेरे पांच पैसों की कमाई कैसे हो, मैं पांच पैसे कैसे बचा सकता हूं? यह बात हम अवश्य सोचते रहते हैं। पांच पैसे बचाने की बात पर एक बात बताता हूं।

एक डॉक्टर, एक इंजीनियर और एक बाणिया, तीनों जने गए एक मंदिर। वहां पर कुछ लिखा हुआ था। जैसे यहां पर जगह-जगह कुछ-कुछ लिखा हुआ है वैसे ही वहां पर एक बोर्ड पर लिखा हुआ था कि इस मंदिर में जाने के लिए 100 पेड़ियां हैं। 100 पेड़ियां चढ़ोगे तो मूर्ति के दर्शन होंगे। आप ऊपर जा सकते हो किंतु आपने साथ में कोई भी पैसा नहीं रख सकते हो। आप साथ में कोई पैसा नहीं ले जा सकते हो। यदि आपको पैसे ले जाने हैं तो यहां एक पेटी है, उस पेटी में 100-100 के नोट की गड्डियां हैं। आप जितनी गड्डियां ले जाना चाहो ले जा सकते हो किंतु जितनी गड्डियां आप ले जा रहे हो एक-एक सीढ़ी पर उतने नोट रखते हुए जाना है। उतने नोट डालने पड़ेंगे। कितनी गड्डी ले सकते हो? जितनी चाहो गड्डी ले सकते हो किंतु जितनी गड्डियां ली है उतने ही नोट हर एक पेड़ी पर डालने होंगे। चार गड्डियां ली है तो चार-चार नोट रखने होंगे। पांच ली है तो पांच-पांच नोट रखने होंगे। जितनी चाहो ले सकते हो पर एक-एक पेड़ी पर उतने-उतने नोट डालते-डालते जाना होगा। उन लोगों ने भी गड्डियां उठाई, सोचा कि एक क्यों दो-दो उठाते हैं। उन तीनों ने भी दो-दो गड्डी ले ली और नोट डालते-डालते चढ़ गए। सौ पेड़ियां चढ़ने के बाद कितने नोट बच सकते हैं? कितने पैसे बचेंगे? (प्रत्युत्तर– कुछ नहीं) कांई रा बाणिया हो? इतनी जल्दी जवाब क्यों दे रहे हो? कुछ सोचना तो चाहिए कि क्या बात हो सकती है? मैंने कहा कि एक डॉक्टर है, एक इंजीनियर है और एक बाणिया

है। पछे बाणिये री कीमत काईं है? उसकी बुद्धि होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए? उसके पास कुछ तो बचना चाहिए या नहीं बचना चाहिए? उसने दोनों साथ वालों से कहा, आपके पास कितने रुपये बचे। उन्होंने कहा—रुपये कैसे बचेंगे। सौ पेड़ियों पर सारे चढ़ा दिये। उसने कहा—उसके पास पचास नोट बच गए। डॉक्टर ने कहा, कैसे? तुमने तो कानून तोड़ दिया है। जब सब जगह पैसे रखने थे, सभी सीढ़ियों पर दो-दो नोट चढ़ाने थे तो तुम्हारे पास पैसे कैसे बच गए? तुमने यहां का कानून तोड़ा होगा। उस बाणिये ने कहा कि साहब, मैंने कोई कानून नहीं तोड़ा है। मैंने सीए तो किया नहीं है किंतु फिर भी मैं बचाना जानता हूं और मैंने बचा लिए। जितनी गड्डी आपके पास थी, उतनी ही मेरे पास में भी थी। किंतु मैंने पैसे बचा लिए। क्या किया उसने? उसने पहले एक गड्डी को खोला और सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते दो-दो नोट रखते गया तो पचास सीढ़ियों तक उसकी एक गड्डी खत्म हो गई। अब उसके पास एक गड्डी बची तो वह एक-एक नोट डालता गया। आगे के पचास नोट डालने पर सीढ़ियां समाप्त हो गई तो उसके पास कितने नोट बच गए? (प्रत्युत्तर—50) पचास नोट बचा लिए। कैसे नहीं बचाता, वह बाणिया था। बाणिया तो बचाएगा ही। बाणिये ने बुद्धि लगाई या नहीं लगाई? यह बुद्धि तो लग गई, अब धर्म की बुद्धि कैसे पैदा होगी? वह पैदा करनी जरूरी है। वह बुद्धि यदि पैदा हो जाएगी तो सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। सारी समस्याओं को दूर करने के लिए हमें अपनी भूमिका को सुदृढ़ बनाना होगा ताकि अन्याय, अत्याचार, अप्रामाणिकता—यह सब दूर हो जाए।

मार्गानुसारी के 35 गुण और श्रावक के 21 गुण यदि जीवन में आ जाते हैं तो फिर सामायिक हमारी अनमोल हो जाएगी। उसकी कीमत बढ़ जाएगी। वह सौ-पचास में बिकने वाली नहीं है। सारे लोग देखने गए किंतु सुलसा न ब्रह्मा के पास गई, न विष्णु और न शिवजी के पास। सुलसा की कहानी सुनी होगी कि अम्बड़ ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप बनाये और 25वें तीर्थंकर का रूप भी बना लिया। किंतु सुलसा किसी के पास नहीं गई। हम भी संकल्प करें कि यहां आएंगे तो धर्म के लिए आएंगे। सौ रुपये की प्रभावना के लिए नहीं आएंगे चाहे कोई भी कैसी भी प्रभावना दे। चाहे सौ रुपये की दे चाहे हजार की और चाहे एक लाख रुपये की प्रभावना दे। किंतु हम उस प्रभावना के प्रभाव में नहीं आयेंगे—बल्कि धर्म के लिए यहां पर आएंगे। ये लक्ष्य हमारा होना चाहिए कि हम किसके लिए आएं? (प्रत्युत्तर-धर्म कार्यों के लिए) आप

सभी बोल रहे हो कि धर्म की आराधना के लिए आए हो। यहां इस क्षेत्र में सभी सच बोलना, झूठ मत बोलना। सच्ची-सच्ची बात और ईमानदारी की बात करें तो हमें ऐसी प्रभावना और प्रलोभनों में जाना ही नहीं चाहिए। चाहे कोई कैसी भी प्रभावना दे। कोई प्रभावना कितनी ही लाभदायक क्यों न हो किंतु हम केवल आत्मकल्याण की दिशा में बढ़ेंगे। आत्मकल्याण की दिशा में हमको कार्य करना है। वैसी भावना हमारी बनेगी तो हमारी आंखों की धूल साफ हो जाएगी। दृष्टि एकदम साफ हो जाएगी। हमें धर्म चाहिए धन नहीं। धर्म रहे तो चलेगा और धर्म के साथ धन भी आ गया तो चल सकता है। किंतु धर्म को छोड़कर धन नहीं लेना हमें यह लक्ष्य रखना है–

धर्म करता धन बढ़े, धन बढ़ता मन बढ़े।
मन बढ़ता मनसा बढ़े, बढ़त-बढ़त बढ़ जाय॥

इसके विपरीत, धर्म घटता है तो धन घटता और धन घटता है तो मन घटता और सबकुछ घटता चला जाता है। आज हालत खराब है। आज हालत खराब है किंतु कल जब अच्छी हालत थी तो समाज में बैठना चाहते थे। आज हमारी हालत खराब हो गई तो अब समाज में नहीं जा पाते हैं, ऐसा क्यों? क्योंकि हम धन के पीछे दौड़े, इसलिए। यदि धर्म के पीछे दौड़े होते तो जो कल था वही आज है। इसी भावना से हमें आगे बढ़ना चाहिए। इसी प्रकार की प्रेरणा करनी चाहिए। हमारे दिमाग में यह बात नहीं आनी चाहिए कि रुपये मिले तो सामायिक कर लें। ऐसा नहीं कि पैसे दे रहे हों तो सौ सामायिक भी कर ले। ऐसी जमीन पर फल प्राप्त होना कठिन है। इसलिए पहले देखो कि हमारी जमीन का धरातल– वह सही है या नहीं है? यदि सही नहीं है तो ये सौ सामायिक भी क्या काम की? वह काम की रहेगी ही नहीं। हमें अपनी जमीन को मजबूत बनाना है। धर्म को सुदृढ़ करना है।

यहां उपस्थित, विशेष रूप से सभी बहिनें एवं सभी भाई आज यही पचक्खाण लें– प्रतिज्ञा लें कि आज के बाद हममें से कोई भी एबोर्शन नहीं करायेंगे और न ही कराने देंगे। इस प्रकार का लक्ष्य हम बनाएंगे और अपने जीवन को धन्य करेंगे।

"समाज सुरक्षित रहेगा, हम सुरक्षित रहेंगे"

29 अगस्त, 2019
(पर्युषण पर्व का तीसरा दिन)

11

ज्वाला जला सकी ना ज्योति

'शांति जिन एक मुज विनति'

एक गुण व्यक्ति को बहुत ऊंचा बना सकता है। एक गुण व्यक्ति को बहुत ऊंचाइयां दिला सकता है और एक दुर्गुण व्यक्ति को पतन के गर्त में डालने वाला हो जाता है। महान् यदि हमको बनना है। महापुरुष बनना है तो एक गुण की आराधना कर ली जाए। 'एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाये।' एक को साध लो तो सारे सिद्ध हो जाएंगे। सब जगह हाथ मारने लगोगे तो न एक ही पूरा प्राप्त हो पाएगा और न सारे हाथ आ पाएंगे। मतलब एक में भी निपुण नहीं हो पाएंगे। अतः एक में योग्यता हासिल करें। एक में निपुणता हासिल करें। उस एक गुण को सही तरीके से समझ लिया–सही तरीके से जीवन में आ गया तो हमारी महानता में कोई बाधा नहीं पहुंच सकती। कोई बाधक बन नहीं सकता। मन में जिज्ञासा हो रही है कि एक गुण कौन-सा बता रहे हैं, हम झट से ले लें। सुनना एक बात है और उस गुण को जीवन में उतारना! वह बहुत कठिन है। 'धीरज मन धरी सांभलो', धीरज रखें वह गुण भी आएगा और वह गुण धीरज ही है। धैर्य ही है। कठिन परिस्थिति में व्यक्ति यदि धैर्य रख लेता है तो उसे कोई जीवन में हरा नहीं सकता। 'धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत्ति काले परखिये चारी' कहा है कि धैर्य की परीक्षा करनी है तो विपत्ति के समय देखो कि मन चंचल होता है, डांवांडोल होता है या अडोल बना रहता है। विपत्ति के क्षणों में मन को अडोल बनाए रखने वाला गुण धैर्य होता है और उसकी जड़ें जितनी गहरी होगी, उतना ही व्यक्ति सुदृढ़ रहेगा। अटल रहेगा, अडोल रहेगा। दृढ़ बना रहेगा। विपत्तियां आएंगी और ऊपर से निकल जाएंगी। उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर पाएगी। और यदि धैर्य नहीं है तो छोटी-छोटी बातें भी हमें डांवांडोल बना देंगी।

बातें न तो कोई छोटी होती हैं और न कोई बड़ी होती हैं। हम जिसको चाहें उसको बड़ा बना सकते हैं और जिसको चाहें उसको छोटा बना सकते हैं। जिससे मेरा प्रेम-अनुराग है वो कितने भी चांटे लगा दे तो भी उसको लाड़ लडाएंगे। पूज्य गुरुदेव कई बार इस बात को फरमाया करते थे कि एक बार एक बादशाह/सम्राट ने प्रश्न पूछ लिया कि यदि कोई मेरे चांटा लगा दे भरी सभा में, तो उससे कैसा बर्ताव करना चाहिए? लोगों ने अलग-अलग जवाब दिए। किसी ने कहा, उसको फांसी के फंदे पर चढ़ा देना चाहिए। किसी ने कहा कि उसको मार देना चाहिए। किसी ने कहा– उसको पीटना चाहिए। बहुत सारे जवाब आए किंतु एक सधा हुआ उत्तर आया कि उसको गोद में उठाना और प्रेम करना, लाड़-प्यार करना चाहिए। सारे लोग कहने लगे, क्या सम्राट को, बादशाह को चांटा जड़ने वाले को गोद में लेना चाहिए! यह कैसा जवाब है? बहुत स्पष्ट है कि भरी सभा में बादशाह को चांटा लगा कौन सकता है? वह शहजादा होगा। पोता-पड़पोता होगा जो गोद में बैठ जाएगा। गोद में बैठकर चांटा लगाएगा तो फिर क्या उसे मारना-पीटना, धक्का देना चाहिए? क्या करना चाहिए? वह कितने भी चांटे लगा दे वे हमें मंजूर हो जाएंगे क्योंकि उसके पीछे 'मेरे मन में वात्सल्य का भाव है। अपनेपन का भाव है। तो मैं उसकी बड़ी से बड़ी बात को भी नगण्य कर दूंगा। वे बातें बड़ी नहीं बन पाएंगी। 'हां, मन में यदि प्रद्वेष के भाव हैं, थोड़ा भी प्रद्वेष है तो वहां से निकलने वाली छोटी-सी बात भी विस्तार ले लेगी।'

'गीली लकड़ी में लगी हुई चिनगारी सफल नहीं होगी। बुझ जाएगी। पत्तों में, तृणों में, घास में, सूखी लकड़ी में वही चिनगारी गिरे तो प्रचंड ज्वाला का रूप ले सकती है, वैसे ही प्रद्वेष की चिनगारी कहीं भी लगेगी उस बात को बहुत विस्तार दे देगी। बहुत विस्तृत कर देगी।' हम यदि देखना चाहें द्रौपदी की एक बात कि 'अंधे के अंधे होते हैं'। यह एक बात दुर्योधन को चुभ गई और वह भीतर इतनी पीड़ा पैदा करने लगी कि मन में द्वेष की भावना बन गई। बदला लेने का भाव बन गया और उसी का परिणाम महाभारत के रूप में दुनिया को देखना पड़ा। दूसरी तरफ हम देखते हैं– रामायण में मंथरा का पार्ट, कैकेयी के द्वारा वरदान की मांग। वरदान की याचना और राम का वन गमन। बात बहुत बड़ी थी, वहां तो द्रौपदी ने केवल इतना ही कहा था कि अंधे के अंधे होते हैं और यहां तो 'यू केन गो', तुम यहां से जाओ। राम को अयोध्या से हटा देना। राजगद्दी मिल रही थी उससे वंचित कर देना। फिर

भी राम ने उस बात को छोटी माना या फिर बड़ी बात बनाई? उन्होंने उस बात को महत्त्व दिया ही नहीं। 'जो बात महत्त्व में आ जाती है वही विस्तार पा जाती है। और जो बात महत्त्व नहीं पाती वह यूं ही पड़ी रह जाती है। वह गुमनामी में खो जाती है।'

घटनाएं दोनों तरफ हुई थी—एक ने महाभारत रच दिया और दूसरी ने रामायण। राम ने इतनी तवज्जुह ही नहीं दी। विचार ही नहीं किया कि कैकेयी ने मेरे साथ ऐसा क्या कर दिया। यदि वह बात उनको चुभी होती, उनके मन में प्रद्वेष पैदा हुआ होता तो बहुत संभव है कि उसका प्रतिकार होता। उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया। किंतु समय ने सारी चीजें अपने आप परिष्कृत कर दी। परिष्कार कर दिया। राम का मान घटा या बढ़ा? (प्रत्युत्तर—बढ़ा) हमें कौन-से पदचिह्नों पर चलना चाहिए? दुर्योधन के पदचिह्नों पर चलकर...। बात को खींचते-खींचते, खींचते-खींचते मरने तक उस बात को नहीं छोड़ेंगे? उसे तो नहीं छोड़ूंगा। मार दूंगा उसको। मैं मर जाऊंगा पर उसको नहीं छोड़ूंगा। मैं नरक में चला जाऊंगा किंतु सामने वाले को जिंदा नहीं रहने दूंगा। उसका बदला लेकर रहूंगा—ऐसे भी विचार आदमी के मन में आ जाया करते हैं। यह एक प्रकार से रौद्र ध्यान का भाव हो गया। वैर का अनुबंध करना—इसका बदला लेकर रहूंगा। यह वैर का अनुबंध करना है और इस प्रकार से कर्मों का बंधन होगा। उन परिणामों से क्लिष्ट कर्मों का बंध होगा फिर उसको भोगे बिना छुटकारा मिलना कठिन हो जाएगा।

भगवान महावीर ने त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में जो शीशा डलवाया था जिसके कानों में, उस समय उसकी ताकत नहीं थी कि वापस प्रतिकार कर सके। बदला ले सके। लेकिन उसके मन में ये भाव पैदा हुए और वही व्यक्ति कानों में कीलें ठोक रहा है। बदला ले रहा है या नहीं ले रहा है? इसलिए बदले की भावना को बनने मत दो। ये बड़ी भयंकर है। मन में कभी नहीं आये कि इसका बदला लेकर रहूंगा और वह बात बार-बार घर कर गई मन में तो आर्त ध्यान से बढ़कर रौद्र ध्यान में चली जाएगी। दूध घर में लाया जाता है। लाया ही जाता है क्योंकि वर्तमान में गाय-भैंस घर में है नहीं तो बाहर से लाया जाता है। हो सकता है कुछ घरों में आज भी गाय-भैंस हो। दुधारू जानवर होंगे। घर में गाय-भैंस का दूध या दुधारू पशु जो भी है, उनका दूध है या कैसे भी बाहर से लाए उसको गर्म किया जाता है। एक तो गर्म किया जाता है और एक औटाया जाता है। दो प्रकार से प्रक्रिया होती है। एक तो गर्म करते

हैं। जब उसमें उफान आ गया तो उसे नीचे उतार, ढककर किनारे रख देते हैं। और दूसरा होता है औटाना। औटाना होता है तो उसको रड़ाना पड़ेगा। उसको हिलाते रहना पड़ेगा नहीं तो नीचे से जल जाएगा। वैसे ही एक बात को बार-बार दिमाग में लेते रहेंगे मेरे साथ ऐसा किया कि भूल नहीं सकता। जिंदगी भर मैं याद रखूंगा। रात में सोता है और जब भी नींद खुलती है। बात याद आ रही है। यह औटाना हो रहा है। रड़ाना हो रहा है। गाढ़ा बनाना हो रहा है। उसे जितना औटायेंगे– जितनी बात बढ़ाएंगे उतना ही संक्लेशपूर्ण कर्मों का बंध होने लग जाएगा। और वह रौद्र ध्यान के भाव में चली जाएगी। जिस समय उसका उदय होगा उस समय हमारे परिणाम कितने रौद्र होंगे?

अभी सुन रहे थे सोमिल ब्राह्मण को। वह ब्राह्मण था। ब्राह्मण शांत स्वभाव का होता है। एक ब्राह्मण, जन्म से होता है और एक ब्राह्मण कर्म से होता है। कर्म से जो ब्राह्मण होता उसके लिए बताया गया है कि वह बहुत शांत होता है। समभावी होता है। समाधि में रहने वाला होता है वह! उत्तेजना में नहीं आता।

'वस्तुतः, जो तत्त्व को समझ लेता है वह उत्तेजना में क्यों आएगा? वह जान लेता है कि उत्तेजना मेरा स्वभाव नहीं यह विकार है। उत्तेजना के क्षणों को भी वह टालने का प्रयत्न करेगा।'

दो प्रकार के लोग होते हैं। एक व्यक्ति देखता है कि कब मौका मिले और कब आग लगायी जाए। वह आग लगाने का काम करता है। आग लगाने की तैयारी में रहता है। उसको मौका चाहिए और वह कोई-न-कोई बात को उठाएगा। मतलब क्रोध को पैदा करने के अवसर को डिफाइन करेगा। क्रोध पैदा करने के अवसर को ढूंढ़ेगा और वह प्रसंग को उकसाना चाहेगा। चाहे वाणी से, चाहे शरीर से– ऐसा प्रयत्न करेगा कि सामने वाले के मन में आग पैदा हो जाए। क्रोध पैदा हो जाए। वह बात बढ़े और बढ़ते-बढ़ते बढ़ती जाए। यानी एक आदमी उसको बढ़ाने की फिराक में रहता है। और दूसरा व्यक्ति? यदि आग लग रही है, लगने की तैयारी में हो तो उसके कारणों को हटाने का प्रयत्न करेगा। मतलब बुझाने का काम करेगा। आग को बढ़ने नहीं देगा। आग को बढ़ने से रोकेगा।

यह सोच मनुष्यों की है। दोनों विचार मनुष्यों के हैं। एक विचार संक्लेशी जीव का है और एक विचार शांत जीव का है। जिसको संक्लेश प्रिय होता है वह संक्लेश के अवसर ढूंढ़ा करता है। मौका मिलना चाहिए, चाहे परिवार

हो और चाहे समाज हो, जहां पर बैठा है वह मौका नहीं चूकेगा। आग लगाने वाला और आग बुझाने वाला, दोनों में से पाप किसे ज्यादा लगेगा? (प्रत्युत्तर– लगाने वाले को) आप बोल रहे हो लगाने वाले को। क्यों भाई? आग लगाने वाला भी तेउकाय के जीवों की हिंसा करता है और तेउकाय के जीवों की हिंसा आग बुझाने वाला भी कर रहा है! दोनों तेउकाय के जीवों की हिंसा कर रहे हैं। जो आग लगा रहा है वह तेउकाय के जीवों को मारेगा और जो बुझा रहा है वहां भी तेउकाय के जीवों की हानि होगी। हमको क्या प्रिय है? आप लोग आग लगाने वाले हो या आग को बुझाने वाले हो? (प्रत्युत्तर– बुझाने वाले) आप लोग बोल रहे हो कि बुझाने वाले हैं। बोलने में क्या बोल रहे यह बात अलग है। हमारा मन क्या कहता है? हम मन में बात बढ़ाने की करने वाले हैं या घटाने-बुझाने की बात करने वाले हैं? आग बुझाने से भी तेउकाय के जीवों की विराधना तो हुई। किंतु यदि जलती रहती तो कितना विस्तार लेती और कितनी हिंसा होती? उसमें कितने-कितने जीव घमासान हो जाते, जल जाते? वह बहुत सारी प्रक्रिया रुक गई। आग लगाने वाले से आग बुझाने वाले को कम पाप करने वाला बताया गया है। आग लगाने वाला तो महापाप करने जैसी स्थिति में आ जाता है– परिणाम कैसे हैं उसके आधार पर। यदि परिणाम खूंखार हैं, सोमिल ब्राह्मण जैसे परिणाम हैं तो उसके कर्मबंधन कैसे होंगे?

एक सब्जी बनाई। हलका-सा ऊपर से नमक डाला। वही सब्जी है और अच्छा नमक डाल दिया और फिर एक बार और अच्छा नमक डाल दिया। जितना नमक डालोगे तो खारापन और बढ़ेगा। तीखापन उतना ही ज्यादा आएगा। वैसे ही हमारे जैसे संक्लेश परिणाम होंगे उससे कर्मबंधन वैसा ही होता है। उसके अनुरूप होता है। हलके परिणाम हैं तो हलका बंध होता है और जटिल परिणाम है तो कर्मबंधन भी वैसे ही होंगे। उनको भोगते हुए वे उसको उसी प्रकार का परिणाम देने वाले बनेंगे। गजसुकुमाल का वृत्तांत हमने अभी अंतगडदसाओ सूत्र के माध्यम से सुना और बहुत बार सुन चुके हैं। बहुत सारी बाते हैं यदि लेना चाहें तो जीवन व्यवहार में हमारे लिए उपादेय हो सकती है। सबसे पहली बात मां के कर्तव्य की करते हैं, माता का क्या कर्तव्य होता है संतान के प्रति? जन्म देना ही पर्याप्त नहीं है। उसे संस्कारित करना, सुंदर संस्कार देना। वीरता के, धीरता के संस्कार देना। बालक को भय नहीं दिखाना चाहिए। बालक बहुत कोमल होता है। बहुत

कोमल मस्तिष्क होता है बच्चे का। यदि उसके सामने भय की बातें की गईं तो वे उसके मस्तिष्क पर जाकर आघात करती हैं और ऐसा वहां पर घाव होता है कि जिंदगी भर वह घाव मिट नहीं पाता। ठीक नहीं हो पाता। उसके भीतर भय के संस्कार जम जाते हैं और वे उसकी उन्नति के रास्ते में बाधक बन जाते हैं। उसको खुलने-घुलने नहीं देते हैं। अरे! कुछ हो जाएगा। उसके मन में डाउट, भय-शंका बनी रहेगी। इसे सबसे बड़ी बात समझनी चाहिए। थोड़े से अपने कार्य को निकालने के लिए बच्चे के साथ जैसा व्यवहार कर लिया जाता है वह उचित नहीं। उसको खिलौना मत समझो। मैंने पहले भी जंबू कुमार के प्रसंग से बात बताई थी कि वह राष्ट्र की एक धरोहर है। वह धर्म-जगत् की एक धरोहर है। राष्ट्र के लिए वह बहुत कुछ करने में समर्थ है। धर्म के लिए बहुत कुछ करने में समर्थ है।

झगड़ूशाह पेथड़शाह आदि जो महापुरुष हैं इनके नाम लिए जाते हैं। क्या कार्य उन्होंने किये कि लोग आज तक उनको याद करते हैं? वस्तुतः, किसी रूपवान को, धनवान को आदमी याद नहीं करता है। किंतु समाज के लिए जिसने जीवन समर्पित कर दिया– अपने धन को, मन को, मान-सम्मान को– सबको समर्पित कर दिया उन्हें याद करते हैं। बोलने में आज भी हम बोलते हैं किंतु करते कितना हैं? मैं नहीं कह सकता। अभी दो मुस्लिम देशों में भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को सर्वोच्च सम्मान दिया गया। दो जगह दिया ना? (सभा– तहत्ति) और मोदी ने क्या कहा? मोदी ने कहा कि यह सम्मान भारत की 130 करोड़ जनता को समर्पित है। कुछ वर्षों के बाद में इसकी और चर्चा करना, ध्यान रखना, वापस याद दिलाना। कभी-न-कभी नरेंद्र मोदी की जीवनी देखना उसमें इन दोनों सम्मानों की बात होनी नहीं चाहिए कि वहां-वहां पर सम्मान मिला। होगा या नहीं होगा (प्रत्युत्तर– होगा) आप लोग बोल रहे हो कि इसका जिक्र होगा तो जब समर्पित कर दिया तो उनका रहा कैसे? जब 130 करोड़ की जनता को समर्पित कर दिया तो उनकी चीज़ रही नहीं है। हम भी बोलते ज़रूर हैं कि यह गुरु चरणों में समर्पित है। मासखमण कर किसको समर्पित किया? गुरुदेव को समर्पित किया। तपस्या की, मासखमण किया उन्हें जब गुरु को समर्पित कर दिया तो फिर कठे रयो मासखमण? गुरुदेव के चरणों में डाल दिया तो अब थाणो कठे रयो?

अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे चरणों में...।

बोलते हैं, बापजी मांगलिक सुना दो। 'चत्तारि सरणं पवज्जामि...' अरिहंतों की शरण को स्वीकार कर रहे हैं। सिद्धों की शरण को स्वीकार कर रहे हैं। किंतु कभी अरिहंत की शरण को स्वीकार किया? 'सिद्धे सरणं पवज्जामि' कभी सिद्ध भगवान की शरण को स्वीकार किया? 'अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि।' कितनी बार सुन ली मांगलिक? एक बार भी हमने समर्पण किया? एक बार भी मन की गांठें हमने छोड़ दी? अब मेरा है ही नहीं। अष्टावक्र ऋषि की बात कुछ समय पहले कही थी कि जनक के यहां पहुंचे और वहां उन्होंने कहा– यहां तो सब चमार ही चमार हैं। ये चमड़ी को देख रहे हैं और चमड़ी के आधार पर किसी की कीमत कर रहे हैं। मतलब चमार चमड़ी की कीमत करता है। राजऋषि जनक को लगा यह आदमी खरा है। जनक ने कहा– ऋषिवर! मैं आत्मा के दर्शन करना चाहता हूं। मैं ब्रह्म के दर्शन करना चाहता हूं। क्या आप मुझे करा सकते हो? ऋषि बोले, Okay ओके, एकदम करा सकता हूं। जनक ने पूछा, कितना समय लगेगा? समय कितना लगेगा? बंधुओ! यह बताओ कितना समय लगेगा? एक महीना लगेगा या दो महीना?

आपके मन की बात बताओ कि आपको वैराग्य कब आ जाएगा? आप में से एक भाई बोल रहा पांच साल में आ जाएगा। पांच साल में पक्का है ना? पांच साल के बाद वैराग्य आ जाएगा ना? आप बोल रहे हो कि 99 प्रतिशत आ जाएगा। उसके बाद अपनी धर्मपत्नी से आज्ञा लेंगे? वैराग्य आने में एक क्षण लगता और वैराग्य आ जाता है। एक क्षण! जिनको भी वैराग्य आया एक क्षण ही लगा। प्रैक्टिस से नहीं आया। वैराग्य प्रैक्टिस से नहीं आता वह तो जगता है। गजसुकुमाल को वैराग्य आया तो कितनी देर में आया? सुने बार-बार व्याख्यान? कृष्ण वासुदेव ने कितने व्याख्यान सुने? गजसुकुमाल ने एक व्याख्यान सुना और आ गया वैराग्य। पूर्व की पुण्याई के योग बिना ये काम इतना आसान नहीं है। हां, कभी-न-कभी शुरुआत भी होती है। कभी-कभी वैराग्य इसी जन्म में भी आता है। कभी पूर्व कर्म से आ रहा है यानी पूर्व की पुण्याई काम आ गई। किंतु कभी-न-कभी तो नया वैराग्य आया ही। नहीं आया क्या? मेघ कुमार के जीव को पहली बार सम्यक्त्व रत्न मिला। पहली बार वैराग्य आया। भगवान महावीर को सम्यक्त्व कब आया? नयसार के भव में थे उस समय सम्यक्त्व के, संवेग भाव जगे। संवेग के पुष्प खिल उठे कि मुझे आत्मा का उद्धार करना चाहिए।

कभी-न-कभी शुरुआत होती है। किंतु कोई तो एक छलांग लगा लेते हैं और उसी से तर जाते हैं और कोई जन्मो-जन्मों तक इकट्ठा करता रहता है! किंतु जब जगता है, पहले की प्रैक्टिस भले कुछ रही होगी किंतु जगने में तो एक क्षण लगता है। दीये में तेल भरने में कितना टाइम लगा होगा और माचिस लगाने में? माचिस की रगड़ लगती है और एक क्षण में ज्योति प्रकट हो जाती है। ऋषि ने जनक को कहा कि एक छलांग लगाकर घोड़े पर बैठने में आपको जितना टाइम लगता है उतने टाइम में मैं आत्मा के दर्शन करा सकता हूं। जनक ने कहा कि मैं तैयार हूं। कहा, सोच लो। जनक ने कहा कि तैयार हूं मुझे आत्मा के दर्शन करने हैं। कहा कि एक संकल्प करो। ब्राह्मण संस्कृति में एक संकल्प की विधि है। क्या विधि है संकल्प की? हाथ में पानी देते है और उसके बाद कुछ संकल्प कराते हैं—यह संकल्प कराने की विधि है। अलग-अलग जगह की विधियां अलग-अलग होती हैं। उन्हें संकल्प कराया गया कि 'अब से मेरा कुछ भी नहीं है। अब से मेरा नहीं कुछ भी।' कहा कि तुम्हारा जो भी है वह दान दे दो। जो कुछ है मुझे दे दो। सब कुछ आपको दे दिया। वैदिक संस्कृति में दान बिना दक्षिणा फलीभूत नहीं होता है।

हरिश्चंद्र राजा ने राज्य दान में दे दिया। उन्हें कहा गया कि अभी तुमने दक्षिणा नहीं दी तो दान सार्थक कैसे होगा? जैसा दान वैसी दक्षिणा! एक रुपये का दान दिया तो दक्षिणा 10 रुपये की नहीं होगी। एक हजार का दान दिया तो दक्षिणा क्या होगी? जैसा दान होता है वैसी ही दक्षिणा होनी चाहिए। दक्षिणा देने के लिए राजा हरिश्चंद्र, चांडाल के यहां खुद बिकने के लिए पहुंच गए। बिकना मंजूर किंतु सत्य से मुकरना, मंजूर नहीं है। जनक को कहा गया कि अब दक्षिणा दो। जनक ने आदेश दिया कि तिजोरी में से/राज खजाने से इतने पैसे ले आओ। ऋषि ने कहा, अभी तुमने क्या बोला था? अभी तुमने मुझे सारा समर्पित कर दिया। आपने सब कुछ मुझे दे दिया—राज्य को, खजाने को मुझे समर्पित किया है। अब दक्षिणा के लिए क्या दोगे? कहां से आएगा? यह राज्य तो दे चुके हो। ऋषि ने कहा, अब राज्य तो मेरा है। दक्षिणा दो। ऐसी किंवदन्ती है या कहा जाता है कि छत्रपति शिवाजी से उनके गुरु रामदास जी ने भिक्षा मांगी तो उन्होंने राज्य समर्पित कर दिया। रामदास ने कहा, शिवा! मैं राज्य का क्या करूंगा। मैं तो संन्यासी हूं। शिवाजी ने कहा—गुरुदेव! मैंने तो इसे समर्पित कर दिया

है। अब आप सोचें कि आप इसका क्या करेंगे? गुरुदेव ने कहा, ठीक है, अब राज्य मेरा है। मैं तुमको इसकी सुरक्षा करने का दायित्व सौंप रहा हूं। इसकी रक्षा करने का दायित्व तुम्हारा है। और वे सुरक्षा करने के दायित्व को लेकर चलते रहे। प्रोपर्टी किसकी है? प्रोपर्टी किसकी है और रक्षा कौन कर रहा? आज हमने चेरिटेबल ट्रस्ट बनाए हैं। बहुत-सी सम्पत्ति के ट्रस्टी हैं। वह ट्रस्ट हमने बनाया है। ट्रस्ट ईमान से बनाया है समझ लो किंतु उसमें बेईमानी हम कर लेते हैं। पैसे उसमें से दान दिए जाते हैं और दान देने वाला कौन? नाम किसका लिखाते हैं? चेरिटेबल ट्रस्ट का नाम लिखा दिया हो। ट्रस्ट का नाम लिखा दिया हो तो थोड़ी ईमानदारी रहेगी। यदि ऐसा सोचो कि ट्रस्टी भी घर का आदमी है। वही सबकुछ देने वाला है और वह अपना नाम लिख पैसे देता है तो वह किसमें से देता है? पैसे तो ट्रस्ट में से देता है तो यह क्या कहा जाएगा? क्या यह धोखाधड़ी नहीं है? बेईमानी है या नहीं है? बेईमानी-धोखाधड़ी और क्या है? यह धोखा हम अपने आपसे करते जा रहे हैं। यह हम क्यों करते जा रहे हैं? क्योंकि मुझे अपनी प्रशंसा प्रिय है। मुझे प्रशंसा प्रिय है इसलिए सारे खेल हो जाते हैं। एरण की चोरी करे और करे सूई का दान...। पहले टैक्स में चोरी करता है। चोरी किए हुए का दान करता है। फिर देखता है देवलोक से कोई विमान आ जाए। किने वास्ते आई? देवलोक में सुनयाड़ कोनी। सुनयाड़ कोनी कि सगलां ने भर्ती कर दो। उसको पहले परखना पड़ेगा। देख-देखकर लोगों को लेना पड़ेगा। हर किसी के लिए वहां ऐसे स्थान खाली नहीं मिलेगा। किंतु आज ये सारी धांधलियां चलती है। समझने की बात है। हमारे पास में पांच पैसे हैं तो पांच पैसों का दान भी बहुत है। हम किसी ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं और हम ट्रस्टी हैं तो उस ट्रस्ट की संपत्ति? वह हमारी नहीं है।

छत्रपति शिवाजी केवल उस राज्य को धरोहर समझकर उसकी सुरक्षा करते हैं। जैसा भरत ने किया। बहुत लंबी कहानी है वो तो। इतना समय नहीं है। किंतु भरत ने राम की खड़ाऊं ली और लेकर सिंहासन पर रख दी। चौदह वर्षों तक वे उस सिंहासन के पास में बैठे रहे। किंतु एक बार भी सिंहासन पर बैठने का उनका मन नहीं हुआ कि एक बार बैठकर देखूं तो सही कैसा लगता है। कैसा आनन्द आता है यहां पर बैठने का। बना क्या उनका मन? कितनी बड़ी तपस्या की! कितनी बड़ी तपस्या! हमने उपवास किया और कोई लपटें आ रही हैं? क्या लपटें आ रही हैं? अरे कोई भी मिठाई, कोई भी बढ़िया

पदार्थ या भोजन के पास गए तो उसकी महक आ रही है। खाने का मन हो रहा है और मुंह में थोड़ी लार भी पड़ने लग जाती है। कभी मन होगा कि एक उठा लूं क्या? कोई देख तो नहीं रहा है? कोई देख तो नहीं रहा? (सभा में– लोगों ने सिर हिलाया) अरे भाई, माथा मत हिलाओ। दुनिया में सब एक जैसे नहीं हैं। मन डिग जाता है। एक चीज ली और ऊँह (मुंह में रखने का एक्शन) और फिर फटाफट मुंह को साफ कर लिया। (मुंहपत्ती पर हाथ फेरते हुए) किसी को लगा हुआ मालूम नहीं पड़ना चाहिए। किंतु ऊपर जो सैटेलाइट है वह देख रहा है या नहीं देख रहा है। अरे, जो भगवान का सैटेलाइट है– सिद्ध भगवान का, अरिहंत भगवान का सैटेलाइट है वह देख रहा है। क्या उस केवलज्ञानी से बच रहे हो? किंतु वहां आदमी का मन चंचल हो जाता है। आदमी का चित्त हिल जाता है। थोड़ा-सा पदार्थ देख डगमगाने वाले हो जाते हैं और ऐसे यदि चित्त डगमगाने वाला होगा तो बताओ 'अरिहंत सरणं पवज्जामि, सिद्ध सरणं पवज्जामि, साहु सरणं पवज्जामि' वह क्या काम आएगा? काम नहीं आएगा।

जनक कहते हैं कि मैं दक्षिणा लेकर आऊंगा। कहां से लाओगे दक्षिणा? क्या है तुम्हारा? अब बताओ, क्या है? सबकुछ ले लिया है, अब दक्षिणा कहां से लाओगे? मैं कुछ काम करके, कुछ मेहनत करके– किसी का कोई काम निकालकर, मजदूरी करके– पैसे इकट्ठे करके लाता हूं। ये शरीर किसका है, ये मन किसका है? किस मन से काम करोगे? किस शरीर से काम करोगे? है कुछ बही-खाता कि ये-ये चीज मेरी है? सबकुछ तो तुमने दे दिया है! ये आंखें भी किसकी हैं? किसकी हैं? जब आपने सब सौंप ही दिया है तो फिर किसकी है? बोलो, किसको आत्मा के दर्शन करने हैं? किसको वैराग्य उठाना है? है किसी के मन में वैराग्य की मन्नत कि हमारा वैराग्य उठ जाए। सब मौन हो गए हैं। इतनी बड़ी सभा में कोई ऐसा लाल नहीं है जिसकी मां ने उसको अपना दूध पिलाया है? "आज बता दूँ, मेरी मां ने कैसा दूध पिलाया?" बता दो, बता दो कि कैसा दूध पिलाया है? बता तो दो कि कैसा दूध पिलाया है? बकरी का दूध पिलाया या भैंस का दूध पिलाया? मां ने खुद का दूध पिलाया होता तो ये बातें नहीं होती। खुद का पिलाया होता तो उसका जोश अलग होता। उसकी रूपरेखा कुछ अलग ही बनती। किंतु व्यक्ति बोलने में तो बहुत बोल जाता है। बोलना तो आसान है किंतु करना बहुत कठिन।

एक बात मैंने बताई है कि हम अपने जीवन में क्या-क्या ले सकते हैं? माता का कर्तव्य क्या होता है? गजसुकुमाल की मां ने कैसे संस्कार दिए कि जिसको बचपन में भी, जवानी में भी कोई भय नहीं। कोई डर नहीं था। वीरता, धीरता और गंभीरता उसके जीवन में कहां से आए? हो सकता है कि उसके स्वयं के पूर्व जीवन के संस्कारों से या ईश्वरीय देन हो। पूर्व जीवन के संस्कार तो थे ही किंतु पूर्व जन्म के संस्कारों में इस जन्म के संस्कार भी मिल गए थे। और उन संस्कारों को पुनः जगाने का काम किसने किया? दीया था उसमें बाती भी थी और तेल भी था किंतु लाइटर का स्पर्श जब तक नहीं मिलता उसमें प्रकाश प्रकट नहीं होता। लाइटर-माचिस का स्पर्श पाते ही उसमें ज्योति पैदा हो गई।

अच्छा ये बताओ, किसी बात को घुमा-फिराकर कहना चाहिए या साफ-साफ कहना चाहिए? 'साफ-साफ कहना और सदा सुखी रहना।' किंतु आदमी साफ-साफ कहने की बजाय उस बात को घुमा-फिराकर/थोड़ा नमक लगाकर, थोड़ी मिर्ची लगाकर, थोड़ी शक्कर लगाकर, चाशनी चढ़ाकर कहता है ताकि मेरी बात स्वादिष्ट लगे। मधुर लगे। ठीक लगे। जितनी घुमा-फिराकर बात होती है वह उसको ही घुमाने वाली बन जाती है। उसको गुमराह करने वाली बन जाती है। कितनी ही साफ-सुथरी बात है किंतु उससे विवाद खड़ा होना होगा तो होगा ही। और यदि किसी बात से ऐसा बड़ा विवाद खड़ा होता है भले ही कितनी भी साफ-सुथरी बात है तो उसको गौण कर देना चाहिए। हमें उसके परिणाम को हमेशा देखना चाहिए कि इसके कहने से आग लगेगी या फिर आग बुझेगी। आग लगाने वाली हो तो ऐसी बात नहीं कहने में सार है और कहनी भी पड़ जाए तो इतनी मधुरता से कही जाए कि जो आग लगी हुई है वह भी बुझने वाली हो जाए।

यह हो गई एक बात। दूसरी बात, वैराग्य का स्वरूप। वैराग्य कैसा होना चाहिए? आप लोग कहते हो कि महाराज, भावना तो बहुत होती हैं। मन तो बहुत है। घरवाले आज्ञा दे दें तो आज ही तैयार हूं। व्यर्थ की बातें मत करो। ये सारी दिखावे की बातें हैं। ये सारे हाथी के दीखने वाले दांत हैं। ये सारी महाराज को राजी करने की बातें हैं। मेरा मन है तो फिर रोकने वाला कौन है? 'थोड़ा आटा गीला और थोड़ा मियां जी ढीला।' कोई नहीं है। कईं ठा, कईं ठा है? 'नाच न जाने आंगण टेढ़ा' अरे, नाचणो तो मन्ने आवे। मैं तो घणो चोखो नाचूं पर लागे कि आंगण टेढ़ो है। आंगण टेढ़ो है जणे नाचीजे

कोनी। नाचणो तो आवे पर नाचीजे कोनी।' जब नाचना ही नहीं आता है तो आंगन टेढ़ा है या कुछ भी बहाना कर लो। आप कहते हो कि मैं तो दीक्षा लेने को तैयार हूं लेकिन घरवाले आज्ञा दें तो। और बिना आज्ञा के ही ले सकते हो दीक्षा, तब तो तैयार हो? (प्रतिध्वनि– हां) कौन बोला? पीछे से कोई भी बोल रहा है कि तैयार हैं। पहले अच्छे से सोच लेना। सोच-समझकर कोई बात बोलना। यहां सभी प्रकार की बात चलती है। अर्जुनमाली को भगवान महावीर ने दीक्षा दी तो किसकी आज्ञा ली? किसने दी उसको आज्ञा? जो घर में अपने आप का स्वयं मालिक है वह स्वतंत्र है। हम लोग खाली व्यवहार के लिए ले लेते हैं– अनुमति। एक कागजी कार्यवाही। फॉरमल्टी करनी होती है तो कर देते हैं। मदन जी! आप खड़े होकर दीक्षा लेना चाहें तो पत्नी या बेटे से पूछने की क्या जरूरत है? घर का मालिक कौन है? घर के मालिक आप स्वयं है या पत्नी? या लड़का है? तो फिर किसकी आज्ञा चाहिए? (जोर देते हुए) आज्ञा किसकी चाहिए बताओ तो सही? किसका मुंह देख रहे हो? मेरा मुंह देखो ना। मुंह नीचा क्यों करना। मैं यह बता रहा था कि आप लोगों को मां ने कैसा दूध पिलाया।

एक बात सोचो। विचार करो कि वैराग्य कैसे जगता है? गजसुकुमाल के भीतर वैराग्य जगा और वे देवकी महारानी के पास में आए और कहा कि मैं दीक्षा लेना चाहता हूं। देवकी महारानी बेहोश हो गई। क्या-क्या भाव संजोये थे! क्या-क्या भावनाएं थी, क्या-क्या कल्पनाएं नहीं की। क्या-क्या सपने संजोये थे कि आठ-आठ बेटों को जन्म दिया है। लेकिन लालन-पालन करने के लिए भी एक ही बेटा हाथ में आया। पहले के सात बच्चों को प्यार भी नहीं दिया और वह प्यार भी अब किसके लिए ढुल रहा है? मां का सारा ममत्व का बरतन/उसका हृदय किसके लिए खुला है? गजसुकुमाल के लिए। और वो यदि बोले कि मां मैं दीक्षा लेना चाहता हूं तो मानो कोई सोट पड़ा हो उसके माथे पर! अरे, इतना प्रेम, इतना लाड़, इतना प्यार जिसके लिए और जिगर का टुकड़ा, वह कहे कि दीक्षा लेनी है तो माता पर क्या बीतेगी? सोचो। ऐसा सुनकर माता धड़ाम से नीचे गिर जाती है। कहते हैं कि माला के मोती एक धागे में पिरोये हुए होते हैं और वह धागा टूट जाए तो जैसे मोती बिखरते हैं वैसे ही वह माता बिलखती है। वैसे ही उसकी आंखों से आंसू टप-टप करके टपकने लग गए। किंतु गजसुकुमाल का दिल कुछ भी हिला नहीं चट्टान बन गया। क्योंकि आरसीसी का वैराग्य आ गया।

वह वैराग्य जिसमें आरसीसी लग गई। अब मोह का तंतु रहा ही नहीं। इस जीवन-संसार में कोई मेरा नहीं है। कौन है मेरा?

तू भूल के अपने आप, रहा कर पाप, ओ चेतन प्यारा,
दुनिया में कौन तुम्हारा।

किसको कहेंगे कि वह मेरा है? कौन है आपका? ये देखना आपके गले में जो है वह किसका है? चलो आज काउंटर से मोबाइल लेने का त्याग। (सभा में– हंसी, कुछ लोग बोले, तहत्ति) अरे! पांच-दस आदमी बोलें तो क्या होगा? जिन लोगों को जाना है, भागना है वे मोबाइल यहां छोड़कर जाएंगे कैसे? किसके भरोसे छोड़कर जाएंगे? किसको कहूं कि मेरा? कौन है मेरा? जिस समय अनाथी मुनि से पूछो कि कौन था उनका? नमिराजर्षि जिनके शरीर में वह दाहज्वर उठा। जो दुःख-दर्द शरीर में आया तो कौन बना उनका? किसने उस देह की वेदना को, ज्वाला को बंटाया? अनाथी मुनि के आंख की वेदना को किसने ठीक कर दिया? इलाज के लिए बड़े-बड़े डॉक्टर आ गए। दूर-दूर से चिकित्सक आ गए। सबने कहा कि ये कर लो, वो कर लो। किसी ने क्या किया, किसी ने क्या किया। सारे ताम-झाम कर लिए। सारी दवाइयां दे दी। सबकुछ कर दिया। किंतु क्या वह बीमारी शांत हुई? एक संकल्प जगा कि यदि यह बीमारी शांत हो जाती है तो 'खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइए अणगारियं'– अणगार धर्म को स्वीकार कर लूंगा। और बिजली चमकती है ना, उसमें कितना समय लगता है? इतना-सा समय भी नहीं लगा और पीड़ा ऐसी दूर हुई कि आराम की नींद आ गई। ये घटना तो बहुत बार सुनी है। पढ़ी है। पूज्य जवाहराचार्य ने पूरे चातुर्मास में व्याख्यान दिए हैं और जिसको हम 'अनाथ भगवान' के रूप में पढ़ते रहे होंगे।

गजसुकुमाल को भी वैराग्य जगा तो माता ने कितने ही भाव प्रकट किए। कितना ही समझाया कि ये क्या बातें कर रहे हो बेटा! क्या इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें जन्म दिया? मैंने तुम्हारे लिए ये किया, वो किया। तुम्हारे लिए क्या-क्या सपने नहीं देखे? गजसुकुमाल कहता है कि माता! ये सारे सपने ही हैं। कोई आंखें बंद करके सपना देख रहा है और कोई आंख खोलकर सपना ले रहा है। तुम मेरी मां हो तो यह भी सपना है और मैं बेटा हूं तो भी स्वप्न ही है। ये सबकुछ सपना ही तो है। मैं, मां तुमको देख रहा हूं सपने में और तुम मुझे बेटा मान रही हो तो भी सपने में ही मान रही हो

क्योंकि वस्तुतः, कौन किसका है? सारी आत्माएं स्वतंत्र है। ऐसी कोई भी आत्मा नहीं है जिसका आपस में कोई रिलेशन नहीं हो। वह ये सब कह रहा है और इतने में कृष्ण वासुदेव वहां आ गए। उन्होंने अपनी भाषा में अपने भाई को समझाया किंतु परिणाम कुछ नहीं निकला। अन्ततोगत्वा उन्होंने कहा कि मैं कम-से-कम एक बार तुम्हें राजा बनाना चाहता हूं। राजा बना हुआ देखना चाहता हूं। ये लास्ट परीक्षा की बात थी। कहा कि तुम दीक्षा लेना चाहते हो! चलो कोई बात नहीं किंतु एक बार राजा बनाना चाहूंगा। और उन्हें राजा बनाया गया। फिर उनसे पूछा गया, बताओ राजन्! क्या आदेश है। क्या संदेश है हमारे लिए। क्या संदेश है राष्ट्र के नाम पर? संदेश प्रसारित कीजिए। उन्होंने कहा कि ओघा, पातरा लाओ। नाई को बुलाओ मैं दीक्षा लेना चाहूंगा। वैराग्य जगने में कितने दिन लगे? माता और भाई को समझाने में कितने दिन लगे? एक क्षण (अल्प समय) लगा। और हमको वर्षों लग जाते हैं। आप कहते हो कि माने कोनी बापजी! घरवाला माने कोनी। माने कोनी? मनाने वाला कितना जान रहा है ये बताओ? मनाने वाला जान जाए तो फिर कौन नहीं माने? हमारे ही अंतर में मोह है तो बात अलग है। वह जब तक नहीं टूटे तो कौन मानेगा? किंतु जब वैराग्य खरा हो तो कितने ही आंटे दे दो वैराग्य को इधर से उधर मोड़ नहीं सकते। यह वैराग्य की बात आ गई।

एक है मनुष्य मन की कमजोरी। मनुष्य का मन कितना कमजोर होता है? अरिष्टनेमि भगवान से पूछा कृष्ण वासुदेव ने कि गजसुकुमाल मुनि कहां है? भगवान ने कहा कि उनका तो कार्य सफल हो गया है। पूछा कृष्ण वासुदेव ने कि कैसे हुआ और महाराजश्री फरमा ही गए कि ऐसे हुआ। कृष्ण वासुदेव के मन में क्रोध जग गया। यही मनुष्य की कमजोरी है। हमारे मन के प्रतिकूल होते ही मन भभक जाता है। भीतर से भभक जाता है। लवण समुद्र का पानी जंबू द्वीप में नहीं आ जाए इसलिए बहुत सारे देवता चारों तरफ से लहरों को दबाते रहते हैं, दबाते रहते हैं। पूछा गया भगवान से कि ये देवता पानी को रोक पाने में क्या समर्थ होंगे? भगवान ने कहा कि यह तो यहां के उन लोगों की पुण्याई, उन लोगों का त्याग-तप है। जब तक सत्य-अहिंसा है, संयम है तब तक यह लवण समुद्र का पानी जंबू द्वीप में प्रवेश नहीं कर पाएगा। किंतु हमारे भीतर भभकने वाले उस क्रोध को लोग कितना ही दबाना चाहें, हम अपने आप में कितना ही उसे दबाना चाहें तो भी कहीं-न-कहीं से कोई

पिचकारी छूट जाती है। छूट जाती है या नहीं छूट जाती है? और उसका बड़ा दुष्कर परिणाम होता है। इसलिए कहते हैं–

ओ क्रोध बड़ो चंडाल, कोई मत करजो जी

ये एक बहुत बड़ा चांडाल है। एक जमाने में चांडाल से लोग छुआछूत करते थे। किंतु इस चांडाल को आज लोग घर में बढ़ाते रहते हैं और यह भभक जाता है। कृष्ण वासुदेव भी एक मनुष्य थे और उनमें भी यह कमजोरी थी। बहुत बार यह देखा गया है कि जो बहुत समर्थ होता है वह दूसरों की बात को सुनने में समर्थ नहीं होता। शरीर से युद्ध में बलप्रयोग करने में समर्थ है। हजारों सुभटों को जीतने में समर्थ है किंतु अपनी आत्मा को/मन को जीतने में समर्थ नहीं होता है। वहां उसके घुटने टिक जाते हैं। वहां भगवान को कहना पड़ा कि कृष्ण तुम द्वेष मत करो। प्रद्वेष मत करो कोई फायदा नहीं है। उसने तो गजसुकुमाल को सहायता पहुंचाई है। ये ज्ञानी के वचन हैं। हमारी सोच कैसी है? विचार करो। 'हैं, थारे लिए ऐसो बोल्यो, छोड़नो नहीं उने। तुमको उसने ऐसा बोल दिया! तो अब उसको छोड़ना मत। विने चढ़ावनो या उतारनो' लोग किसी को चढ़ाने का या उतारने का काम करते हैं। आज हम चढ़ाने का काम कर रहे हैं या उतारने का काम कर रहे हैं। क्यों चढ़ाना? क्यों चढ़ाना किसी को? चढ़ाने वालों ने तो राम को भी चढ़ाने की कोशिश की होगी। राम को भी कहने वाले मिले होंगे कि कौन होती है कैकेयी। क्या उनके ऊपर हमला बोल देते? वे चाहते तो कह सकते थे कि तुम बोलने वाली कौन हो? साथ में लोग भी तैयार हो सकते थे कि आप थोड़ा-सा इशारा करो सब काम हो जाएगा। आप बोल तो दो ओके, पता ही नहीं चलेगा कि हड्डी-पसली कहां गई। आज ये खेल बहुत खेलते हैं। थोड़ा-सा कोई कुछ कह दे तो उसको भड़का कर कहां से कहां तक ले जाते हैं? किंतु राम इन सब में फंसने वाले नहीं थे। ये खेल तमाशा राम ने नहीं खेला। उनके मन में थोड़ा-सा भी विचार नहीं आया कि ऐसा कुछ करें। हमें क्या सीखना चाहिए? ज्ञानी वचन/अरिष्टनेमि भगवान कहते हैं कि प्रद्वेष मत करो।

और एक बात, महान् व्यक्ति का महत्त्व क्या होता है? वहां एक वृद्ध पुरुष एक-एक ईंट उठा रहा और घर में रख रहा था। कृष्ण वासुदेव ने यह देख एक ईंट उठा ली और उसके घर पहुंचा दी। कोई जरूरी था क्या? कोई जरूरी था कि कृष्ण वासुदेव उठावें? ये मन की बात है। ये महत्त्व की बात है। ये महापुरुषों की महानता की बात है। 'बिना महानता के उदारता

आ नहीं सकती। हम ताकते रहेंगे पर उदारता पैदा नहीं होगी। कहीं-न-कहीं हमारा स्वभाव, हमारा अहंकार, हमारा गर्व और हमारी अपनी थिंकिंग (सोच), जो भी समझ लीजिए वह रोकती रहेगी। नहीं-नहीं, हाथ खराब हो जाएगा। ईंट से हमारा हाथ खराब हो जाएगा। जब मन में उदारता का भाव आता है तो उस समय खराब और अच्छा नहीं दिखता है। हमने कई बार सुना-पढ़ा है। पुस्तकों में भी पढ़ा है कि अब्राहम लिंकन जा रहे थे संसद में और बीच में एक सूअर, जो कीचड़ में फंसा हुआ था उसको देखा। वे उसको निकालने का प्रयत्न करने लगे। सूअर ने अपना सिर हिलाया और कीचड़ के छींटे किसको लगे? अब्राहम लिंकन के कपड़ों पर लग गए। उसी हालत में ही वे संसद में चले गए। सभा में चले गए क्योंकि समय कम था। लोगों ने पूछा कि क्या हुआ? तो बोले कि ऐसा-ऐसा हुआ और ज्यादा समय नहीं था तो ऐसे ही आ गया। हमारी गाड़ी दौड़ती है तब कितने लोग फंसे हुए होते हैं? कितने लोग कठिनाई में होते हैं? हमारा दिल क्या बोलता है? हमारे में शम (सम), संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और वह आस्था सचमुच में है क्या? अनुकंपा कहां गई? यदि अनुकंपा नहीं है तो धर्म कहां निपजेगा। भूमि ही यदि उपजाऊ नहीं है तो फल कहां से प्राप्त होगा? अनुकंपा का मतलब है कि हमारी भूमि उपजाऊ होनी चाहिए। मन में अनुकंपा के भाव हैं तो वह उपजाऊ है और यदि अनुकंपा के भाव नहीं हैं तो मनो-भूमि का उपजाऊ होना, वह कठिन है।

एक अंतिम बात, हमने देखा और शास्त्र भी कहते हैं कि उनके लाखों भवों के जो पूर्वकृत कर्म थे गजसुकुमाल के, उन कर्मों को भोगाने में वह (सोमिल) सहायक बना। सहयोगी बना। उनके लाखों वर्षों के जो कर्म थे वे उदय में आए। इसका मतलब अपने किए हुए कर्म कौन भोगता है? अपने किए हुए कर्म जब तक नहीं भोगेंगे तब तक छुटकारा मिलेगा नहीं। यदि कोई विपत्ति आ जाए! कोई कठिनाई आ जाए तो हाय-हाय करने की आवश्यकता नहीं है। आज कर्म भोगने हैं तो मुझे भोगने और कल भोगने हैं तो भी मुझे ही भोगने हैं। न तो कोई कल उनको भोगने के लिए आने वाला है और न ही आज भोगने के लिए आने वाला है! कोई दूसरा सहयोग देने वाला नहीं है। मेरे कर्म मुझे ही भोगने हैं। गजसुकुमाल मुनि! उनके भीतर में कहीं से कहीं तक सोमिल ब्राह्मण के प्रति कोई द्वेष की भावना नहीं आई। इसीलिए हम कहते हैं कि–

अंगारे सिर पर धधक रहे,
समभाव से गजसुकुमाल सहे,
सिद्धत्व ज्योति प्रकटाए हैं, वैराग्य भाव सरसाये हैं॥

आहा! आहा! अनुभव करो कैसा लग रहा है। ज्योति मिल रही है या ज्वाला मिल रही है। यदि द्वेष भाव प्रबल होंगे तो ज्वाला का रूप बनेगा। यदि द्वेष के भाव होंगे तो वे अंगारे ज्वाला का रूप लेंगे। और यदि आत्मीय भाव है, आपके भावों में न राग है न द्वेष–समभाव है, मैत्री भाव है, शत्रु और मित्र दोनों के प्रति एक समान भाव हैं तो वहां पर ज्योति प्रकट होगी। ज्वाला प्रकट नहीं होगी। हमारे को थोड़ा-सा ईंधन मिलता है और हम भभक जाते हैं। इसका मतलब है कि हमारे भीतर वह मैत्री भाव विकसित नहीं हुआ है। अभी वह समभाव विकसित नहीं हुआ है। अभी शरीर के प्रति ममत्व नहीं हटा है। ये मेरा शरीर है कहीं जल नहीं जाए! इसको ज्वाला नहीं लग जाए! यह शरीर के प्रति ममत्व भाव रहा हुआ है जब तक शरीर का ममत्व बना रहेगा तब तक वह ज्योति नहीं जगेगी। गजसुकुमाल मुनि तो अन्तर में देह से उपरत हो गये थे–

'जहां देह अपनी नहीं, वहां न अपना कोय' इदं न मम।
हाड जिले जिम लाकड़ी, केश जले जिम घास,
जलती दुनिया देख के, हुए कबीर उदास॥

उदास हो गये। उदासीनता आ गई। वैराग्य आ गया, विरक्ति आ गई। यही विरक्ति के भाव हैं। गजसुकुमाल मुनि का अन्तर देह उपरत हो गया था। ये शरीर मेरा नहीं है। शरीर भिन्न है आत्मा भिन्न है–ये भाव, ये विचार हमारे भीतर ज्योति पैदा करने वाले होते हैं। हमें उस ज्योति का अनुभव करना है। हमारे मन में सबके प्रति मैत्री भाव रहे। शत्रु को भी मित्र बनाने वाला होता है, 'बुद्धिमान्।' और अपने मित्रों को भी शत्रु बनाने वाला... (मूर्ख)। अब हमें विचार करना है कि कौन-सी श्रेणी के अंदर हमारी गिनती हो रही है? हम बुद्धिमान् हैं या हम मूर्ख हैं इसका निर्णय कौन करेगा? हम यदि शत्रुओं को मित्र बना सकते हैं। शत्रुओं को मित्र बनाने की कला हमारे भीतर है तो हम बुद्धिमान् हैं और मित्रों को भी, मित्रों को ही, क्या बना लेते हैं? हम यदि मित्रों को भी शत्रु बना लेते हैं तो हम मूर्ख हैं। यदि हम ऐसा करते हैं तो हमारा मन, हमारी सोच वह किस कोटि में रहेगी? दुर्योधन ने

पांडवों को शत्रु बना लिया। किंतु रामायण में भरत ने शत्रु नहीं बना लिया। भरत ने राम को शत्रु नहीं बनाया। वह उनकी बुद्धिमानी थी। वह बुद्धिमानी थी और दुर्योधन ने जो किया क्या वह बुद्धिमानी थी?

यह पर्व-पर्युषण हमें क्या सिखा रहे हैं? हम क्या सीख रहे हैं? हमें ज्योति बनना है या हमें ज्वाला बनना है? हमें मूर्ख बनना है या बुद्धिमान्? हम कहने के लिए कहते हैं कि हमें बुद्धिमान् बनना है। किंतु कितना बुद्धिमान् बनना है? बुद्धिमत्ता के कुछ बिंदु हैं। कुछ क्राइटेरिया है, बिंदु हैं। उन बिंदुओं का पालन होगा तो हम बुद्धिमान् बनेंगे। हमारे भीतर शत्रु को मित्र बनाने की कला है। हम शत्रु को मित्र बनाने के लिए तैयार रहेंगे तो हमें कोई कह सकता है कि तुममें बुद्धि है। तुम मेधावी हो। इसी प्रकार शरीर के प्रति यदि हमारा ममत्व हट गया। हमने शरीर को अपना नहीं समझा। बड़े रूप में केवल जी रहा हूं– अनुभव से, ध्यान से, आत्म-रमणता से यह भाव पैदा हो कि आत्मा में रमण करना है। बाकी ये हमारा शरीर तो एक खोखा है। ये शरीर खोखला है। यह तो एक हेतु भर है। हमें जीवन जीने के लिए केवल एक खोखे की जरूरत है और यह शरीर उसका कार्य कर रहा है। इससे प्रेम क्यों? एक कल्पना करना है। ये कल्पना की कि शरीर पर तेल लगाया। बालों में तेल लगाया। खूब शृंगार किया लेकिन वह क्या काम आएगा? कितना ही मल लिया क्या काम आएगा? ये शरीर लकड़ियों में जाने वाला है। एक दिन ये चित्त नहीं रहेगा। यह चिता पर आरूढ़ होने वाला है।

बंधुओ! हम विचार करें, चिंतन करें ये पर्व-पर्युषण जो हमें एक संदेश देने के लिए प्रस्तुत है। संदेश प्रतिदिन हमें मिलता है। यह संदेश हमारे जीवन के हर क्षण में हमको मिलता है। हम संदेशों को अपने आप में उतारने के लिए तैयार रहें। उतारने की उतनी ही हमारी तैयारी होगी तो हर पल, हर क्षण हमें संदेश देने वाले बनेंगे। हमें बुद्धि देने वाले बनेंगे। शिक्षा देने वाले बनेंगे। हम स्वयं से शिक्षा लें। घटनाओं से शिक्षा लें। ऐसी शिक्षा लेकर हम धन्य बनेंगे और अवश्यमेव पर्व-पर्युषण की सम्यक् आराधना में अपने आप को लगाने में समर्थ बना पाएंगे।

अभी पर्युषण-पर्व चल रहा है और इस पर्व में कई तपस्याएं चल रही हैं। कई तपस्याएं संपन्न होने जा रही हैं। कई मासखमण की तपस्याएं भी चल रही हैं। कई बहिनें मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो चुकी हैं और कई होने की तैयारी कर रही हैं। कई बहिनें हैं जो मासखमण के बारे में विचार कर रही

हैं। हम तपस्या नहीं कर सकते हैं तो कोई बात नहीं। किंतु हम यह संकल्प अवश्य करें कि हम किसी के साथ धोखाधड़ी नहीं करेंगे। आप लोग अपनी कापी में लिखो, 'ईमान'। लिखो, विचार मत करो। लिखो ईमान। इसका इस्तेमाल आगे कैसे करोगे? ईमानदारी हमारी होनी चाहिए। ईमेल होता है ना उसमें ई का निशान क्या होता है? वैसे ही ई-मान, ई आ गया और पीछे रह गया मान। ईमान हम रखेंगे तो मान हमारा अपने आप आ जाएगा। मान हमेशा रहेगा। ईमान है आपके पास तो कौन आपके मान को घटा सकता है? कौन मान को लूट सकता है? यदि ईमान में से हम ई को हटाना चाहें तो पीछे मान रह जाएगा और वह मान किसी काम का नहीं है। ईमान में से ई हटा दिया और उसमें अप जोड़ दिया तो अपमान हो जाएगा। इसलिए ईमान है तो मान रहेगा। ई रहेगा तो मान भी रहेगा। वह नहीं हट पाएगा। ई हटेगा तो मान घटेगा। इसलिए क्या करना चाहिए? क्या रखना है? ईमान रखें तो मान मिलेगा। ईमान रखेंगे तो मान को अलग से मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्या रखना है हमें? (प्रत्युत्तर– ईमान) क्या रखना है? ईमान के साथ हम मान रखेंगे तो मान सदा मिलेगा। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूं।

30 अगस्त, 2019
(पर्युषण पर्व का चौथा दिन)

12

यह है अन्तर का राज

शांति जिन एक मुज विनति...

पर्युषण-पर्व चल रहे हैं और आज उसका छठवां दिन है। हमारी आत्मा पर भी छह शत्रु हैं। उन छह शत्रुओं को जीतना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। वे शत्रु हैं– काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा और मोह। कृष्ण वासुदेव के समय ऐसा बताया गया कि इनके प्रतीक रूप थे– शिशुपाल, दुर्योधन, कंस, पूतना, जरासंध... एक एक अपने-अपने दुर्गुण में माहिर थे। इन दुर्गुणों को हम कैसे जीतें? कैसे इन पर विजय प्राप्त करें? यह हमें विचार करना जरूरी है। मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा कर रहा था अर्जुनमाली, यह हम अंतगडदसाओ सूत्र में सुन गये हैं। छह गठीले पुरुषों ने अर्जुन को बांधा और वहां जो कुछ कार्य किया। जैसे उन गठीले पुरुषों ने अर्जुनमाली को बांधा, वैसे ही हमारी आत्मा को ये 6 शत्रु बंधन में डाले हुए हैं। बांधने वाले हैं। संसार में रोककर रखने वाले हैं। काम अर्थात् विषय वासना। जब तक पांच इन्द्रियों के विषय में हमारा मन गमन करता रहेगा संसार से मुक्ति संभव नहीं है। विषयों की अनुरक्ति हटेगी तो विरक्ति के भाव बढ़ेंगे। अब तक संसार में हमने इतने भोग भोगे कि कोई अंत नहीं है। और भी भोगते रहेंगे तो भी तृष्णा शांत होने वाली नहीं है। उसकी प्यास बुझने वाली नहीं है।

आचारांग सूत्र का स्वाध्याय करते हुए एक सूत्र आया, 'जस्स नत्थि पुरा पच्छा, मज्झ तत्थ कुओ सिया' जिसके पहले नहीं है, बाद में नहीं है मध्य कहां से होगा? सामान्य अर्थ यह बनता है। किंतु यह बहुत मार्मिक सूत्र है। इसमें जो कहा गया है उसका जीवन से गहरा सम्बन्ध है। वह, यह कि जिसके अतीत के भोगों की इच्छा शांत हो गई है। अतीत के संस्कार जिसने हटा दिए और भविष्य की कोई इच्छा, अभिलाषा नहीं है उसको वर्तमान में

विकल्प क्यों पैदा होंगे? उसको वर्तमान में विचार क्यों पैदा होंगे? ऊहापोह क्यों होगी? अर्थात् नहीं होगी। बहुत सुंदर सूत्र है। बहुत मार्मिक सूत्र है। इस संदर्भ में श्रीमद् भगवती सूत्र का एक पाठ याद आता है कि अतीत का प्रतिक्रमण करो अर्थात् भूतकाल को भुला दो। भूतकाल को विस्मृत कर दो। जो मैल आत्मा पर लगा हुआ है उसको धोकर, साफ कर दो। 'अइयं पडिक्कमामि', वर्तमान का संवर और भविष्य के लिए प्रत्याख्यान। यह त्रिपुटी बतायी गयी जिसे हम बोलते हैं कि गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान का संवर और भविष्य काल का पचक्खाण। कोई भी व्रत, नियम स्वीकार करने के पहले यदि अतीत का प्रतिक्रमण नहीं है। पहले के संस्कारों की सफाई नहीं की। उसकी धुलाई नहीं की है तो वर्तमान में संवर की आराधना मुश्किल है। वर्तमान में बिना ऊहापोह के जीना फिर कठिन है।

ऊहापोह– दिमाग में कुछ के कुछ विचार चलते रहना। यदि कुछ के कुछ मस्तिष्क में विचार चलते रहते हैं इसका मतलब है कि पिछले संस्कार हमने साफ नहीं किए हैं। पिछले संस्कारों को हमने धोया नहीं है। हमने आलोचना, प्रतिक्रमण के माध्यम से उस मन की धुलाई नहीं की। उसे परिष्कृत नहीं किया इस कारण से वे संस्कार हमारे भीतर बने हुए हैं। यदि ऐलोपैथिक चिकित्सा की अपन बात करें तो कैंसर के रोगी का इलाज करते हैं। इलाज करते समय उसमें एक जर्म्स भी बाकी रह गया, एक भी कीटाणु बाकी रह गया तो आपरेशन सक्सेस (सफल) नहीं रहेगा। एक भी कीटाणु कैंसर का यदि बना रह गया तो थोड़े दिन में वह पुनः अपनी संतति को इतना तैयार कर लेगा, इतना जल्दी वह फैलेगा कि कुछ कहा नहीं जा सकता। जैसे एक कीटाणु यदि बना रहता है तो वह कीटाणु, बहुत से कीटाणुओं को पैदा कर देता है। वैसे ही हमारी दबी हुई इच्छाएं, हमारी अभिलाषाएं-आकांक्षाएं जब तक शांत नहीं होंगी, जब तक उनको हम हटा नहीं देंगे तब तक हमारा मिशन सफल नहीं होगा। सार्थक नहीं होगा। यदि सच्चे मायने में हम आत्मिक सुख प्राप्त करना चाहते हैं– शांति और समाधि का अनुभव करना चाहते हैं तो हमें पिछले सारे संस्कार भुलाने पड़ेंगे। किस ने मेरे साथ क्या व्यवहार किया है? किसने मुझे गालियां दी हैं। किसने मेरी प्रशंसा की है– न प्रशंसा को याद रखना, न गालियों को। और अतीत में जो भी संस्कार मैंने भीतर डाले हैं मुझे उनको हटाना है। दूर करना है। और अवश्य दूर होते हैं।

जैसे शरीर पर या वस्त्र पर मैल लग जाता है। वस्त्र मैला हो जाता है तो उसको धो कर साफ किया जाता है और धोने से उस वस्त्र में से मैल निकल जाता है। वैसे ही हमारी आत्मा पर लगे हुए मैल– आशा और आकांक्षाओं को– हम दूर करेंगे तो ही वर्तमान में सुखी रह पाएंगे। अन्यथा हम केवल ऊपर-ऊपर की धर्म क्रियाएं करते रहेंगे और नीचे आंच बनी रहेगी। दूध में उफान आया और पानी के छींटे डाल दिए। पानी के छींटे डालने से उफान रुक गया किंतु दो मिनट, पांच-दस मिनट के बाद फिर वापस दूध में उफान आएगा। क्यों आएगा? किसलिए आ रहा है वापस उफान? नीचे की आंच हमने हटाई नहीं है। नीचे की आंच जब तक बनी रहेगी ऊपर से पानी के छींटे कितने ही दे दो किंतु जब तक नीचे की आंच नहीं बुझेगी तब तक दूध में आता हुआ उफान नहीं रुक पाएगा। हम भी जब तक अतीत का प्रतिक्रमण नहीं कर लेते हैं, अतीत का शुद्धीकरण नहीं कर लेते हैं, अतीत की धुलाई नहीं कर लेते हैं तो वर्तमान में चाहे सामायिक करें, चाहे पौषध करें, चाहे प्रतिक्रमण करें, ये उतने सार्थक नहीं होंगे। हमारी स्थिति यथावत् बनी रहेगी। सामायिक से पहले जो स्थिति थी वही बाद में है। पौषध के पहले जो हमारा स्वभाव था वैसा ही बाद में है। अर्थात् उसमें कोई बदलाव नहीं आया। अंतगडदसाओ सूत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण शास्त्र है, जिससे इतनी प्रेरणा मिलती है और एक-एक वृत्तांत बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं।

हमने सेठ सुदर्शन को सुना। कैसे उसके जीवन में इतनी दृढ़ता आ गई? कोई भय नहीं है। कोई चिंता नहीं है। कोई शंका नहीं है। यह कब होता है? यह कैसे होता है? हम सोच रहे हैं कि यह चौथे आरे की बातें हैं। चौथे या तीसरे आरे की बातों से मतलब नहीं है। ये यथार्थ बातें हैं। और जैसा सेठ सुदर्शन जीया वैसे यदि हम जी लें तो हमारे साथ वैसा ही घटेगा। हमें कहीं कोई भय नहीं होगा। अन्यथा काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा, मोह– ये हमें सताते रहेंगे। इनकी चपेट में हम आते रहेंगे। कभी काम हमारे पर हावी होगा कभी क्रोध हमारे पर हावी होगा। कभी अहंकार हमारे पर हावी होगा तो कभी ईर्ष्या की भावना बलवती हो जाएगी। और तृष्णा, जिसको लोग कहते हैं कि कभी बुझने वाली नहीं है, अमर धन की तरह है। जितना उसको देते जाओ वह चाहेगा और, और, और, और, और का कहीं छोर नहीं होता। आग में जितना ईंधन डालो। आग में जितना घी डालो। आग में जितनी चंदन की लकड़ियां डालो। आग में जितने नारियल की भेंट चढ़ाओ सारे क्या होते

जाएंगे? (सभा– स्वाहा) आग बुझ जाएगी क्या? आग बुझेगी क्या इनसे? आग बुझ नहीं पाती है बल्कि वह और अधिक जाज्वल्यमान होगी। वैसे ही हम सोचते हैं कि सामने वाला मेरे पर क्रोध कर रहा है! मैं उससे पीछे क्यों रहूं? क्रोध से क्रोध को मिटाया नहीं जा सकता है। क्रोध को क्रोध से दबाया जा सकता है। किंतु वह दबी हुई बीमारी फिर पैदा होती रहेगी। यदि दवाइयां लेकर एक बार बीमारी को दबा दिया तो वह बीमारी वापस कभी-न-कभी उभरेगी। चाहे उस रूप में उभरे। चाहे अन्य रूप में हो उसके भीतर में पड़े हुए वे कीटाणु कभी-न-कभी उभरेंगे। वैसे ही हमारे भीतर काम-क्रोध के कीटाणु, जो हमने दबा दिए वे कभी-न-कभी उभरेंगे। एक प्रश्न खड़ा होता है कि दबाना भी नहीं प्रकट भी नहीं होने देना। फिर आखिर में क्या किया जाए? 'संशोधन, सुधार।' सुधार प्रक्रिया को स्वीकार किया जाए और वह सुधार प्रक्रिया यदि सक्रिय हो जाएगी तो हम हमारे काम, क्रोध, मद, मत्सर इन सारे भावों को हटाने वाले बनेंगे। वे हट जाएंगे। नहीं हटें ऐसी बात नहीं है। कपड़े पर पड़े हुए दाग को हम प्रक्रिया की स्थिति में ले जाते हैं तो वे धुलकर साफ हो जाते हैं। दाग हट जाते हैं। जैसे कपड़े के दाग हट जाते हैं वैसे ही हमारे जीवन पर लगे हुए दाग भी, हमारी आत्मा की चादर पर लगे हुए दाग को हम धो सकते हैं। बशर्ते धोने का पूरा मन बन जाए और मन बन जाता है तो सफलता मिलती है।

अर्जुनमाली जिसका हम अभी वृत्तांत सुन रहे थे, 1141 व्यक्तियों की घात करने वाला। अपनी चद्दर को इतनी मैली करने वाला। किंतु कितने दिनों में उसने अपनी चद्दर को धो डाला? छह महीने में चद्दर को धो डाला। यह हमारे सामने आगमिक प्रत्यक्ष प्रमाण है। दूसरा सेठ सुदर्शन, जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं। आतंक से मुक्त। उसके मन में ऐसा क्या था कि जिसके कारण उसके मन में भय पैदा नहीं हुआ? इस राज को कौन समझे? उसका मन समाहित था। श्रद्धा युक्त, समाधि युक्त था। उसके मन में ऊहापोह नहीं था, उसके मन में किसी प्रकार की शंका नहीं थी। डाउट नहीं था कि क्या होगा और क्या नहीं होगा। जो होना है हो जाएगा। यदि कोई विपत्ति आ भी गई तो मुझे मेरा कल्याण करना है और वे सागारी संथारा स्वीकार कर लेते हैं। 'णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स'– श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार करके। नमस्कार में भी बहुत बड़ी ताकत है। बहुत बड़ी ताकत है हम भले समझें या नहीं समझें।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. उदयपुर में विराज रहे थे यह पहले चातुर्मास की बात है। अंतिम नहीं पहले वाला। पहले वाले की बात कर रहे हैं। उस चातुमार्स के दरमियान दीपचंदजी भूरा ने एक प्रश्न पूछा। रात्रि के समय की बात है। प्रश्न था कि गुरुदेव! नमस्कार महामंत्र के नीचे चूलिया में लिखा है कि 'एसो पंचणमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं'–इन पांच पदों को किया गया नमस्कार सारे कर्मों का क्षय करने वाला होता है। हम तो इतने नवकार मंत्र बोलते हैं। रोज नवकार मंत्र बोलते हैं फिर हमारे पापों का क्षय क्यों नहीं हो गया? उस दिन सोमवार होने से गुरुदेव के मौन था तो दूसरे दिन व्याख्यान में गुरुदेव ने इस विषय को स्पष्ट किया कि द्रव्य संधियां 14 बताई गई हैं और बारीकी से देखें तो 72 हजार संधियां हमारे शरीर के भीतर में रही हुई हैं। हम उन सारी संधियों को कितना झुका पाते हैं? बड़े रूप में ये 14 संधियां होती हैं, बारीकी से गिनें तो जो 72 हजार होती हैं–उन सारी संधियों को नमाना, झुका देना। कहीं पर भी वे संधियां खड़ी नहीं रहे। अभी हमारा शरीर भी पूरा झुक नहीं पाता है। कुछ तो हमारे कारण होंगे? कुछ हमने कारण बना लिए हैं। यदि हम चाहे तो कर सकते हैं ऐसा मैं विश्वास करता हूं। किंतु हम भविष्य की चिंता से डरते हैं। अरे! ऐसा कर दिया तो घुटने का दर्द बढ़ जाएगा। कमर का दर्द बढ़ जाएगा। ज्यादा चिंता पालेंगे वह दिमाग में भार रहेगा और वैसी ही परिणति होती रहेगी। यदि क्रियाविधि करते रहें तो हो सकता है कि मूवमेंट करते रहने से स्थितियां बदल जाएं। उसको जितना अंवेर-अंवेर कर रखेंगे वे मांसपेशियां उतनी ही सख्त होती चली जाएंगी और कठिनाई पैदा करने वाली बनेंगी।

जो कुछ भी है, हम द्रव्य रूप में 14 संधियों को/बड़ी संधियों को नहीं झुका पाते हैं तो 72 हजार संधियों को कैसे झुका पाएंगे? हमारे में से बहुतों को तो ज्ञान भी नहीं होगा 72 हजार संधियों का। केवल कागजी कार्यवाही है। उनको कैसे झुकाया जाए? श्रीमद् आचारांग सूत्र की बात करें तो एक सूत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र है, 'जे एगं नामे से बहुं नामे' जो एक को नमा लेता है वह बहुतों को नमा लेता है। एक अहंकार को जिसने नमा लिया उसका क्रोध नम जाएगा। उसकी माया नम जाएगी। उसका लोभ नम जाएगा। एक को तो नमाओ। हम वंदना जरूर करते हैं किंतु एक भी कषाय को हमने नमाया या नहीं नमाया? एक भी कषाय हमारा झुका या नहीं झुका? यदि

एक भी कषाय को नहीं झुका पाये तो हमारा नमस्कार सार्थक कैसे होगा? हमने कहानी सुनी है बहुत बार, मगध सम्राट श्रेणिक जिसने एक बार विचार किया कि मैं सभी मुनियों को वंदन-नमस्कार करूं और एक बार सभी मुनियों को वंदन-नमस्कार किया और उसका शरीर शिथिल हो गया। शरीर क्लान्त हो गया। शरीर थक गया। इतना सशक्त शरीर था उसके उपरांत भी पसीना आने लगा।

कहते हैं कि गौतम स्वामी भगवान महावीर से पूछते हैं कि इन्होंने जो इस प्रकार वंदन नमस्कार किया भगवान इन्हें क्या लाभ हुआ? क्या फायदा हुआ? हमने पढ़ा कि भगवान महावीर कहते हैं इन्होंने 6 पृथ्वियों के बंधनों को तोड़ दिया। एक बार का नमस्कार कितना लाभदायी हो गया? यह तो बहुत स्थूल बात है। किंतु ग्रंथकार कहते हैं कि "इक्को वि णमुक्कारो, जिणवंरवसहस्स वद्धमाणस्स" एक भी नमस्कार। दो नहीं, तीन नहीं, चार नहीं, "इक्को वि णमुक्कारो", एक भी नमस्कार सच्चे दिल से करो भले ही वह ऋषभदेव भगवान से लेकर भगवान महावीर तक किसी भी तीर्थंकर को किया गया। वह एक नमस्कार हमारे सारे कर्मों का नाश करने वाला है। नमस्कार सही करें तो बात बने। यहां पर नमाने की बात कही है 'नमो अरिहंताणं' मुंह से बोलते हैं हम! नमते नहीं हैं। नमो अरिहंताणं करते हुए हमने क्या नमाया? किसको नमाया? हमको ध्यान ही नहीं है बोल रहे हैं, इसलिए बोलते जा रहे हैं। बोलने के साथ हमारे भीतर जो क्रिया घटित होनी चाहिए, हमारे भीतर जो स्पंदन पैदा होना चाहिए वह स्पंदन नहीं हो पाता और जब तक वह स्पंदन नहीं होता है तब तक हम कार्य सिद्धि में आगे नहीं बढ़ पाते हैं। नमो यानी नम जाना। हमारा मान पूरा ही नम जाए। मद पूरा ही नम जाए। जैसे मदोन्मत्त हाथी को अंकुश से वश में किया जाता है वैसे ही 'नमो' हमारे लिए अंकुश है और हमारे कषायों को जिताने वाला है। हमारे कषायों को वश में कराने वाला है। किंतु हम सही प्रक्रिया नहीं जानते हैं।

अरिहंताणं, बड़े रूप में कह देते हैं। अरि मतलब शत्रु, हन्ताणं मतलब नष्ट करने वाला। किंतु इसका सही अर्थ/शाब्दिक अर्थ है जिसके भीतर अर्हता-योग्यता प्रकट हो गई उसको नमस्कार है। उसके लिए नमस्कार है। उसकी दिशा में नमस्कार है। नमता मैं हूं, मैं नमस्कार कर रहा हूं। मैं अपनी आत्मा को नमा रहा हूं किस ओर? किसके लिए और किसलिए? मैं आत्मा

को नमा रहा हूं। मैं मन को नमा रहा हूं। किसलिए नमा रहा हूं? (जोर देते हुए) किसलिए नमा रहा हूं? मैं वंदना कर रहा हूं। किसके लिए वंदना कर रहा हूं? मैं वंदना कर रहा था और महाराज तो निकल गए! मेरी तरफ ध्यान भी नहीं दिया। मुझे नमस्कार करने ही नहीं दिया। महाराज के लिए नमस्कार कर रहा हूं। अरे! नमस्कार किसके लिए कर रहे हो? म.सा. के लिए कर रहे हो या अपने लिए कर रहे हो। किसके लिए कर रहे हो? यदि अपने लिए कर रहे हो फिर म.सा. निकल गए तो उससे आपके वंदना में क्या कमी आ गई? हमारी वंदना में/मन में कमी क्यों आ गई? वंदना मुझे करनी थी। नमस्कार मुझे करना था मैं कर रहा हूं। खाना मुझे है पुरसकारी करने वाला पुरसकारी करके चला गया। क्या जरूरी है कि आपके पास में रहने वाले मकान मालिक जिसने आमंत्रण दिया है वह सामने खड़ा रहे और हमें खाना खिलाता रहे। बातें करता रहे, खाना खिलाता रहे तो भोजन करना रुचिकर लगता है। नहीं तो मन मारकर, मन मसोसकर भोजन करना होता है।

वस्तुतः, नमस्कार बहुत महत्त्वपूर्ण है। किंतु किसके लिए? फायदा किसको? हम नमस्कार किसके लिए कर रहे हैं? और किसको कर रहे हैं? नमस्कार करने के पीछे हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि मैं उस योग्यता को प्राप्त करने के लिए नमस्कार कर रहा हूं। डॉक्टरी पास करने हेतु डॉक्टरी में एडमिशन लेने के लिए पहले प्रवेश परीक्षा होती है। शायद पी.एम.टी. परीक्षा होती है। डॉक्टर साहब बताओ क्या नाम है उसका? आप लोग बोल रहे हो अब नाम परिवर्तन कर दिया गया। अब उसका नाम नीट कर दिया गया है। या जो भी होगा। पहले पी.एम.टी परीक्षा होती थी डॉक्टरी में प्रवेश लेने के लिए। जो भी परीक्षा हो, परीक्षा होने के बाद वह डॉक्टरी लाइन में जा सकता है। डॉक्टरी क्षेत्र में जाने के लिए वह काबिल है। वह डॉक्टर बन सकता है। वैसे ही अरिहंताणं, यह पीएमटी परीक्षा है सिद्धत्व की। इस परीक्षा में जो उत्तीर्ण हो जाएगा उसको सिद्ध बनने से कोई नहीं रोक सकेगा। हमारे भीतर यह भावना होनी चाहिए नमस्कार करते हुए कि मैं अपनी योग्यता प्रकट करूं। नमो अव्यय है। नमो– यह अव्यय है। अव्यय उसको कहते हैं जो कभी व्यय नहीं होने वाला। जो कभी व्यय नहीं होता है– सदा बना रहता है, उसको प्राप्त करने की योग्यता! वह मेरे भीतर प्रकट हो जाए। इसके लिए मेरा नमस्कार है। किसको है? किसको नमस्कार है? हम बोल देते हैं कि अरिहंत भगवान को नमस्कार। किंतु हमारा नमस्कार अरिहंत भगवान

के लिए कोई काम का नहीं है। सार्थक नहीं है। वह नमस्कार हमारे लिए है। नमस्कार किसके लिए है? हमारे ही लिए।

हम केवल अपने आपको अरिहंत की दिशा में झुकाते हैं। योग्यता की तरफ अपने आपको झुकाते हैं। जैसे कुएं में बालटी डाली। रस्सी हमारे हाथ में है। यदि बालटी को नहीं नमाया गया। रस्सी को हिलाया नहीं गया तो क्या उस बालटी में पानी आएगा? घड़ा लेकर तालाब में गए और घड़े को पानी में ऊपर रख दिया। कितनी देर में, कितने दिनों में, कितने महीनों में वह घड़ा पानी से भर जाएगा? नहीं तो क्या करना पड़ेगा? घड़े को पानी से भरने के लिए क्या करना पड़ेगा? घड़े के मुंह को पानी की ओर झुकाना पड़ेगा पानी लेना है तो पानी की तरफ घड़े को झुकाना पड़ेगा। पानी की तरफ घड़ा झुकेगा तो पानी भर जाएगा। हम भी अरिहंत की दिशा में– योग्यता की दिशा में, सिद्ध बनने की दिशा में– अपने आपको नमाएंगे। कैसे नमाएंगे? यह गर्दन नमती है या नहीं नमती है? या दर्द करती रहती है। खड़ी रहती है? गर्दन नहीं झुक रही तो हमारा मान झुकेगा कैसे?

शास्त्रकार कहते हैं कि एक को नमा लेंगे तो बहुतों को नमा लेंगे। जो एक को नमा लेता है वो बहुत को नमाने वाला हो जाता है। एक तो नमे। एक को नमाया तो बहुत नम जाएंगे। एक सेनापति को नमा लिया तो सारी सेना नम जाएगी। एक सेनापति को जीत लिया तो सारी सेना जीती जा सकेगी। एक सम्राट को जीत लिया तो सम्राट के राज्य पर अधिकार किसका हो जाएगा? सम्राट को जीत लिया तो जीतने वाले का अधिकार पूरे राज्य पर हो जाएगा। अतः एक को नमाओ। एक को नमाने का प्रयत्न करो और यदि एक क्रोध को नमा लिया तो भी चलेगा। एक अहंकार को नमा लिया तो भी चलेगा। क्रोध को, माया को, मान को, लोभ को– इन चारों में से किसी एक को नमा लेंगे, एक को अपना बना लेंगे फिर दूसरे पर विजय प्राप्त करना आसान हो जाएगा। दूसरे शब्दों में कहें तो एक अनन्तानुबन्धी चाक को नमा लिया तो अन्यों को नमाना आसान होगा। सरकारी कामकाज में देखें कई लोग अपराधी होते हैं। उसमें से पुलिस यह प्रयत्न करती है कि वहां कोई एक साक्षी ही गवाह बन जाए। एक भी अपराधी को फोड़कर उसने गवाह बना लिया तो सारे अपराधियों को पकड़ लेगी या नहीं? उसको उसने अपना बना लिया। इतनी मोहब्बत दी, इतना संबंध रखा कि वह पुलिस का बन गया। फिर धीरे-धीरे वह सबके राज उसके सामने खोल देगा और पुलिस को बड़ी

सुगमता होगी दूसरे अपराधियों को पकड़ने में। आसानी हो जाएगी। इसलिए किसी एक को भी नमाया। एक नम गया तो अन्य कषायों को हम नमाने में समर्थ हो जाएंगे और एक को नहीं नमा पाए तो वे ज्यों-के-त्यों रह जाएंगे। एक को अपना नहीं बना पाए तो सारे ज्यों-के-त्यों बने रह जाएंगे।

सेठ सुदर्शन, जिसने वह विधि जानी थी। भगवान महावीर की दिशा में नमस्कार करता है और अपना कनेक्शन भगवान महावीर की देशना से जोड़ लेता है। भगवान महावीर की महावीरता, उनकी महाधीरता से हमारा लगाव हो गया। उससे प्रेम हो गया और जिसने संबंध जोड़ लिया तो पावर प्राप्त होगी। जैसे पावर हाउस होता है उससे बिजली का कनेक्शन लिया जाता है। घर में सारी फिटिंग हो चुकी है। कनेक्शन ले लिया है। फिर पंखे का स्विच ऑन करते हैं तो हवा आती है। ठंडक मिलेगी या नहीं मिलेगी? यदि प्रकाश का साधन है तो प्रकाश मिलेगा। हवा चाहिए तो हवा मिलेगी। एसी को ऑन करेंगे तो एसी की ठंडक मिलेगी। किससे मिलेगी? यदि पावर हाउस से हमने कनेक्शन ले लिया! यदि उससे संबंध नहीं जोड़ा पर घर में फिटिंग बढ़िया की हुई है तो वह फिटिंग किसी काम की नहीं है।

हम फिटिंग तो बहुत करते हैं। एक घर में मेहमान आए। श्रीमती जी, श्रीमान् को कहती है कि नाथ! घर में मेहमान आए हैं। पुराने संबंधी हैं। अच्छा जिनके साथ संबंध रहा है। इस बार लंबे समय से आए तो इनका स्वागत अच्छी तरह से होना चाहिए और कुछ नहीं तो हलवा तो होना ही चाहिए मिठाई बने या नहीं बने। इसलिए थोड़ा आटा, गुड़ और घी लेकर आना है बाजार से। ये चीजें बाजार से लेकर आ जाओ। श्रीमान् जी खुश हुए और चले। चलते-चलते सोचने लगे, आटा, गुड़, घी ये सब बाजार से नई चीजें ला रहे हैं लेकिन हलवा जिसमें बनाना है, उसके लिए बरतन पुराने हैं तो हलवा अच्छा बने इसके लिए नए बरतन ले लूं। तो बढ़िया बरतन लेने के लिए दुकान में चले गए। एक-दो बरतन खरीदे। फिर विचार करने लगा हलवा अकेला क्या काम का? आटे से, गुड़ से हलवा बनाया जायेगा और थोड़े ड्राइ फ्रूट–काजू, पिस्ता, किशमिश, बादाम, दाख जो भी हैं वे भी थोड़े पड़ने चाहिए हलवे में तो हलवा अच्छा बनेगा। एक दुकान में गया और ड्राइ फ्रूट के पैकेट्स ले लिए। किंतु मन में विचार आया कि खाली मिठाई खाएं अच्छा नहीं लगेगा। थोड़ी नमकीन होनी चाहिए। और एक ही तरह की नमकीन रहेगी तो घर की अच्छी नहीं लगेगी। गया दुकान में और

दो-तीन तरह की नमकीन के पैकेट्स ले लिए और इस तरह इकट्ठा करता है सारे सामान को। बहुत सारा सामान इकट्ठा हो गया। अब भार इतना था कि चलने में भी परेशानी हो रही है। इसलिए घर की ओर बढ़ गया। जैसे ही घर पहुंचा और श्रीमती के सामने सारे मटीरियल रखे श्रीमती जी ने कहा, इतनी सारी चीजें क्यों लाए? हलवे में थोड़ा बादाम, दाख-किशमिश और क्या-क्या होना चाहिए? नहीं मालूम? जैसे भी आप समझ लो। अपने-अपने क्षेत्र में हलवे में क्या-क्या डालते हो? और उसने ये सारे पैकेट खोल-खोलकर दिखाये। श्रीमती जी बोली कि आप सारा सामान तो लेकर आ गए किंतु आटा, गुड़ और घी तो है ही नहीं—काजू, बादाम, दाख, किशमिश—ये तो ले आए। सब लेकर आ गए किंतु मूल घटक कहां है? आटा, गुड़ घी तो लाए ही नहीं। वो कहां पर है? अरे! बोलो, क्या किया फिर? बोलो, क्या किया?

संवत्सरी को 11 सौ पौषध करना है। आप लोग सोचते हो कि कह दिया महाराज ने तो अब मन ऊंचा-नीचा नहीं कर सकते। ऊंचा-नीचा हो तो भी करना ही पड़ेगा। आठ प्रहर का नहीं हो तो...! देखते हैं कैसे-क्या रहेगा? पानी भी नहीं लिया है तो आठ नहीं तो पांच प्रहर का कर लेंगे। लेकिन आठ प्रहर का फाइनल है तो? फाइनल है तो कर लेंगे। लोग विचार करते हैं कि थोड़ी गर्मी हो गई है। थोड़ी ऊमस हो रही है। रात को प्यास लग जाती है। भयंकर हालत हो रही है तो रात कैसे निकलेगी? किसने क्या-क्या विचार कर लिए? मेरे से होगा या नहीं होगा? मैं करूं या नहीं करूं? वह सोचता रहेगा तो सोचता ही रहेगा। हमने सब कर लिया। पर्युषण मना लिया। हमने संवत्सरी का प्रतिक्रमण कर लिया। अंतगडदसाओ सूत्र सुन लिया। अर्जुनमाली को सुन लिया। अतिमुक्त कुमार को भी सुन लेंगे अवसर रहा तो। यह सब कुछ कर लिया। प्रतिक्रमण भी कर लिया। किंतु मूल में जो कषाय नमाने थे, जिन कषायों को शमित करना था, जिन कषायों को हटाना था उनको नहीं हटाया। जो चद्दर धोनी थी। चद्दर का मैल साफ करना था वह नहीं किया और चद्दर को रंगने के लिए नए-नए रंग लेकर आ गए। उस रंग में कैमिकल भी डाल दिया कि और चमक आ जाए। क्या उसमें चमक आएगी? उसमें दाग लगे हुए हैं तो वहां चमक आयेगी क्या? सब चीजें डाल दी। रंग लगा दिया। कैमिकल भी डाल दिया। किंतु कपड़ा जो मैला था उसको धोया ही नहीं। मैले कपड़े को नहीं धोओगे तो क्या रंग चढ़ेगा? रंगरेज, एक अच्छा रंगरेज! वह कभी भी मैले कपड़े को बिना धोये

रंगेगा नहीं। वह जानता है कि यदि मैंने इसे रंगा तो मेरे रंग की बदनामी हो जाएगी। किसी घी-तेल के व्यापारी के पास यदि कोई घासलेट और पेट्रोल का डब्बा खाली करके लेकर जाता है तो वह व्यापारी उसमें घी-तेल डालकर नहीं देगा। वह कहेगा कि तू मेरा डब्बा ले जा। डब्बे के पैसे नहीं भी दे तो फ्री में ले जा। वह उस घासलेट के डब्बे में घी या तेल नहीं भरेगा। नहीं तो उसमें उस घासलेट की बदबू आएगी और मेरी बदनामी हो जाएगी। हम कौन से डब्बे में भर रहे हैं घी? अगर हम घासलेट वाले डब्बे में घी भर रहे हैं तो इस मायने में लगता है कि हम ही पागल हैं।

एक दुकानदार बिना सफाई के घासलेट के पीपे में घी भरता नहीं है और हम लोगों को कौन-से पीपे में घी भरना चाहिए? बोलो, अब कौन-से पीपे में घी भरना चाहिए? अब क्या करना चाहिए कल से? कल से व्याख्यान बंद। पहले पीपे की धुलाई कर लो फिर व्याख्यान सुनायेंगे। संवत्सरी आ रही है। अरे, व्याख्यान सुनते रहोगे तो पीपा धोओगे कब? सफाई करोगे कब? और पूरी तरह से धुलाई नहीं होगी और उसमें भर दिया जाएगा तो पहले वाली चीज की दुर्गंध बनेगी या सुंगध रहेगी? घासलेट की, पेट्रोल की गंध आएगी या केसर, कस्तूरी की सुगंध आएगी? हमारे भीतर जो पहले भरा हुआ है, वह नहीं निकलेगा और ऊपर से जो भरा जाएगा तो सुगंध आएगी या दुर्गंध आएगी? सुना है, मेरे खयाल से आपने भी बहुत बार सुना होगा कि मुसलमान लोग जब नमाज पढ़ते हैं तो पहले वुजू करते हैं। वुजू मतलब हाथ धोते हैं। वहीं पर हौद होता है और उसमें से हाथ-पांव धोने की प्रक्रिया करके फिर नमाज पढ़ने की दिशा में जाते हैं। एक बार ऐसा हुआ कि देखा पानी में गंध आ रही है। मालूम पड़ा कि कोई कुत्ते की जाति उस पानी में गिर गई और मर गई उस कारण से दुर्गंध आ रही है हौद के पानी में। सभी गए किसके पास? मौलवी के पास कि मौलवी साहब! पानी गंदा हो गया है। उसमें दुर्गंध आ रही है। मौलवी साहब ने कहा, ऐसा करो कि पानी बदल दो। उन्होंने उस पानी को पूरा खाली किया और नया पानी भर दिया। दूसरे दिन फिर दुर्गंध आ रही थी। गए मौलवी के पास कि आज भी गंध आ रही है। मौलवी ने कहा कि तुमने क्या किया? लोगों ने कहा कि आपने बदलने का कहा, हमने पानी बदल दिया। मौलवी ने कहा, किंतु कलेवर निकाला या नहीं? कुत्ते का जो कलेवर पानी में पड़ा है उसको निकाला या नहीं निकाला? कहा कि वह तो नहीं निकाला। वे लोग कहते हैं कि मौलवी साहब! आपने

पानी बदलने का बोला था हमने पानी बदल दिया। कलेवर तो हमने नहीं निकाला। आपने बोला ही नहीं था। आप लोग कहते हो कि आपने बोलने के लिए कहा हमने बोल दिया। आपने कहा कि प्रतिक्रमण करो हमने कर लिया। किंतु वैर धोना है ये आपने कब कहा? मन का वैर मिटाना है ये कब कहा? कषायों को हटाने के लिए कब कहा? इसलिए कह रहा हूं कि जो एक को नमा देता है वह बहुत को नमा देता है। एक को नमाने के लिए पहला कार्य होगा, 'अइयं पडिक्कमामि' अतीत का प्रतिक्रमण करना होगा। अतीत के वैर भाव को देखना होगा कि मेरा किस-किस के साथ वैर रहा है? किस-किस के साथ मेरी दुश्मनी है? मैं 'खमत खामणा' करता हूं। खमाऊँ सा.! खमाऊँ सा.! अरे क्या खमाऊँ? वचन से बोल रहे हो। किंतु भीतर में मैत्री की धारा प्रवाहित हो रही है या नहीं हो रही है? वह यदि नहीं हो रही है तो फिर क्या होगा? फिर होगा क्या?

सेठ सुदर्शन, जिसने एक को नमा लिया था। अपने कषायों को नमा लिया था और अतीत का प्रतिक्रमण करके जो मन से समाधिस्थ होकर जा रहा है। उसको कोई चिंता नहीं है। कोई भय नहीं है। वह मेरे जीवन को समाप्त कर देगा ऐसा कोई भय नहीं है। आराम से, शांति से, समाधि से जा रहा है क्यों? क्योंकि उसने भगवान महावीर से संबंध जोड़ लिया। भगवान महावीर पर उसकी अटूट श्रद्धा थी। अटूट आस्था थी। हम कहते तो जरूर हैं कि गुरुदेव! आपके नाम में बड़ा चमत्कार है। धर्म में बड़ा चमत्कार है। हमने भगवान का नाम लिया और बड़ा चमत्कार हो गया। एक बार तो ठीक है और दूसरी बार चमत्कार नहीं हुआ तो? नहीं हुआ तो, बताओ क्या होगा? फिर आप लोग कहोगे कि मैं तो ठगा गया। पहली बार में ऐसा कोई चमत्कार होगा और दूसरी बार में नहीं हुआ तो लोग यही कहेंगे कि दम नहीं है। वो महाराज तो यूं ही है। एक बार तो चमत्कार ऐसे ही हो गया था।

'हकीकत में हमारी श्रद्धा जैसे ही डाउन होगी हम वहां से आउट हो जाएंगे। हमको वहां से निकाल दिया जाएगा।'

फिर? जब श्रद्धा ही हमारी पक्की नहीं है तो हमारा मनोयोग कैसे सफल हो पाएगा? सेठ सुदर्शन निश्चिंत है। उसे चिंता नहीं है। डर नहीं है। 'नमो अरिहंताणं, कहकर नमस्कार करते हैं। भगवान महावीर स्वामी से तार जोड़ लिया। भगवान महावीर से, अरिहंत से तार जोड़ लिया। तार जुड़ गया

है, अब वहां क्या भय? मुझे भयभीत नहीं होना। अब भगवान महावीर से संबंध जोड़ लिया है। सिर के ऊपर भगवान का हाथ आ गया है अब भय किसका? यदि भय हो रहा है तो सचमुच में भगवान के हाथ के नीचे हमने सिर नहीं रखा है। भगवान के हाथ सिर पर नहीं हैं। क्यों नहीं है सिर पर? हकीकत में श्रीमान् जी सब कुछ ले कर आ गये। किंतु आटा, गुड़, घी तो लाये ही नहीं। मूल घटक जो चाहिए वह नहीं लाया गया। लोगों ने वह पानी तो बदल दिया। एक बार बदला, दो बार बदला, तीन बार भी बदला। किंतु भीतर में रहा हुआ कलेवर नहीं निकाला। वैसे ही भीतर में रहे हुए वैर को, दुश्मनी को हम नहीं निकाल पाएंगे तो कितना ही पौषध-प्रतिक्रमण कर लो, कितनी ही तपस्या कर लो, मासखमण की तपस्याएं कर लो, उसका सार क्या होगा?

ये पर्व पर्युषण जयकारी,
जयकारी मंगलकारी, ये पर्व पर्युषण....।
हिंसा जो निश दिन करता था,
पापों से गगरी भरता था,
वो अर्जुन था मालाकारी, ये पर्व पर्युषण...।
प्रभुवीर आगमन होता है,
सुदर्शन भाव संजोता है,
नहीं घबराया वह प्रियकारी, ये पर्व पर्युषण...।
सम्मुख अर्जुन यूं आता है,
मुद्गर को खूब हिलाता है,
मानों दिन है प्रलयकारी, ये पर्व...।

यह पर्व पर्युषण जयकारी, इस पंक्ति का अर्थ क्या है? ये पर्व पर्युषण हमको जय-विजय दिलाने वाले हैं। जय दिलाने वाले हैं। कौन जीतना चाहता है? कौन विजय प्राप्त करना चाहता है? कौन इस जिंदगी के समर से अपने आप को उत्थान की ओर बढ़ाना चाहता है? दूसरी बात है जयकारी, मंगलकारी। जय कब होगी? जब मंगल होगा तब जय होगी। मंगल का अर्थ जो मेरे पापों को नाश करे। जिससे मेरे पाप नष्ट हो जाएं वह मंगल होता है। जो मेरे पापों को गलाता है। जो मेरे पापों को नष्ट करता है वह मांगलिक है। पापों को कैसे गलाएगा? वह पापों को कैसे नष्ट करेगा?

एक मोमबत्ती है और एक माचिस की डिबिया है। हमने दोनों को पास-पास में रख दिया। आठ दिन तक आरती उतारते रहे। वह मोमबत्ती कितनी पिघली? मोमबत्ती कितनी गल गई? मोमबत्ती के ऊपर के भाग पर जो एक धागा होता है उससे माचिस की तीली को प्रज्वलित करके स्पर्श कराया तो मोमबत्ती कितने समय में गल जाएगी? कितने समय में वह पिघल जाएगी? यदि माचिस का स्पर्श नहीं कराता है तो क्या लाभ? मोमबत्ती भी हमने रख दी और माचिस भी रख दी। किंतु गलाने के लिए क्या करना पड़ेगा? वैसे ही हमारे पापों के लिए क्या कहा गया है? पापों के लिए कहा गया है कि–

पाप पराल को पुंज बण्यो है, मानो मेरु आकारो,
तो तुम नाम हुताशन सेती, सहजे प्रज्वलत सारो।

मेरे पाप मेरु पर्वत के समान हैं। मेरु के समान मैंने अपने पापों का ढेर लगाया है। मेरे दोष कितने हैं? एक चौबीसी में गाते हैं ना कि कितने पाप हो गए?

'मैंने बहुत किए अपराध, नाथ मोहे कैसे तारोगे...।'

कैसे तरेंगे? तरेंगे कैसे? तरने का कोई चांस नहीं है। तरने का कोई जोग नहीं है। यदि तैरना नहीं आता है तो कैसे तिरोगे? यदि नौका में आरूढ़ नहीं होना है तो कैसे पार पहुंचोगे? तिरने के लिए कुछ करना पड़ता है। यदि हाथ-पांव नहीं चलाओगे तो डूबोगे या तिरोगे? हाथ-पांव चलाना जानते तो हैं। किंतु संसार से तरने के लिए हाथ-पांव कितने चलाए? किसी से मारपीट करनी हो या लड़ाई-झगड़ा करना है तो वहां पर हाथ-पांव चलना शुरू हो जाता है। किंतु हमारे हाथ किसी की रक्षा के लिए, किसी की भलाई के लिए कितने तैयार होते हैं?

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. की जन्म शताब्दी है जिसमें बहुत सारे आयाम हैं। संघ ने एक आयाम यह भी रखा है कि सौ कसाइयों को कसाई कार्य से मुक्त कराना है। कभी पढ़ा है? कभी आया पढ़ने में यह? आया क्या? आप लोगों ने पढ़ा भी है तो सोचा होगा कि अपना काम थोड़ी है। अपना काम है ही नहीं। तो फिर किसका काम है? किसका काम है? कौन आएगा करने के लिए? घर का मालिक जागरूक नहीं है तो चौकीदारी कौन करेगा? किस-किस ने प्रयत्न किया इसके लिए बताओ? पीपलिया कलां का एक मुस्लिम भाई है सलीम। उस एक भाई ने प्रतिज्ञा ली और उसने

कहा कि मैं दस भाइयों को मुक्त करवाऊंगा। गुरुदेव की जन्म शताब्दी पर मैं दस लोगों को कत्लखानों से मुक्त करवाऊंगा। उसने भाई पंकज जी शाह से कहा कि ऐसा है, एक भाई से यह काम छुड़वाना है तो आपको उसको नौकरी या कोई धंधा दिलाना पड़ेगा। रोजी-रोटी के लिए आदमी को कुछ तो चाहिए। पंकज जी शाह ने कहा कि तुम तो काम करो। नौकरी चाहिए तो मैं दूंगा। हमारे यहां पर भरपूर काम है। हमारे यहां काम करने वाले हैं। सौ के साथ 101 हो जाएंगे क्या फर्क पड़ने वाला है? उसने आज एक भाई से कत्लखाने का काम बंद करवा भी दिया। दस को बंद कराने की प्रतिज्ञा ली थी और उसने एक को बंद करवा दिया। यदि एक कत्लखाना बंद हो जाएगा तो कितने जीवों का कत्ल होना बंद हो जाएगा? कितने जीव बच जाएंगे? और आपने कुछ नहीं किया। बस, कहीं पर नौकरी लगवा दी। आप उससे वहां नहीं, अपने यहां पर काम करवाओगे। केवल वहां काम करने के बजाय यहां काम करने लग गया। उसका लाभ, उसकी दलाली का लाभ आपको मिलेगा या नहीं मिलेगा? हमने क्या कार्य किया? हमने कितने कत्लखाने वालों से बात की? हमने एक भी कत्लखाने वालों से बात की? हमने एक से भी बात की? क्या कर रहे हैं हम, बताओ? आप बोलते तो हो, 'नाना गुरु, नाना गुरु'। नाना गुरु के गीत भी आप गाते हो। क्या गीत गाते हो?

नाना गुरु दर्श दिखा जाओ, भक्तों का दिल यह बोल रहा...

अभी यहां पर तो खाली संतों का दिल बोल रहा है। भक्तों का दिल कहां बोल रहा है? क्या हो रहा है? आवाज कहां आ रही है? सूर्यनगरी वालों पर तो काम का बोझ है इसलिए उनकी आवाज कम पड़ गई हो। और बाहरवाले? बाहरवालों को क्या हुआ? उनकी आवाज क्यों नहीं आ रही है? बाहरवालों ने खा-खाकर गला भारी कर लिया होगा या फिर तपस्या में बोली निकल नहीं रही होगी? एक बार और बोला जाएगा। एक बार और बोलाने का विचार कर रहे हैं। किंतु शर्त यह रहेगी कि जो नाना गुरु के सचमुच में दर्श करने की भावना रखते हैं वे ही बोलेंगे। बाकी, दूसरे फालतू की आवाज नहीं करेंगे।

नाना गुरु दर्श दिखा जाओ, भक्तों का दिल यह बोल रहा...

कौन-कौन नहीं बोला? जो नहीं बोला वह हाथ खड़ा कर दे। मतलब सभी दर्श चाहते हैं। पीछे आवाज कहां तक आ रही है? मेरी आवाज कहां तक पहुंच रही है? आखिरी लाइन वालों को कहां तक समझ में आ रही है?

मैं यह पूछना चाह रहा हूं कि नाना गुरु के दर्श कौन-कौन करना चाहता है? एक बार हाथ खड़े करो। कौन-कौन दर्श करना चाहते हैं? (सभा में लगभग सभी ने हाथ खड़े किए) जीते जी दर्शन नहीं किए थे क्या जो अब बाकी रह गए! जो दर्श करना चाहते हैं, वे जीते-जी दर्शन नहीं कर पाए, वो अब क्या कर लेंगे। अभी नाना गुरु ने दर्श दे भी दिया तो कर लोगे? पहले मैं बोला था कि मोमबत्ती को जब तक माचिस से नहीं लगाओगे वह मोमबत्ती गलेगी नहीं। ज्योति मिलेगी नहीं। आप लोगों ने गीत गा दिया। हाथ ऊपर कर दिया तो नाना गुरु दर्श क्यों देंगे? फालतू बैठे हैं क्या? क्यों आएंगे? क्यों दर्शन देंगे? फुरसत है क्या उनको? हम यदि हाथ-पांव चलाएंगे तो अपने आप उनके दर्शन हो जाएंगे। मुद्गरपाणि यक्ष की आराधना अर्जुनमाली ने की और वह अर्जुन के सामने आकर खड़ा हो गया। वही शक्ति आप में होनी चाहिए कि नाना गुरु के दर्श हो जाएं। यदि हमने, इतने लोग यहां पर बैठे हुए हैं, एक-एक ने संकल्प ले लिया कि एक-एक कसाई को, कत्लखाने का काम हम बंद करवाएंगे तो नाना गुरु के दर्शन होंगे या नहीं होंगे? (सभा की धीमी आवाज– होंगे) वह आवाज तो नहीं आई। हमारे भीतर विश्वास ही नहीं तो आवाज कहां से आएगी। विश्वास कहां बोल रहा है? ये आपकी जुबान बोल रही है। विश्वास कहां बोल रहा है? आपका विश्वास बोलना चाहिए।

हां, खड़े हो जाओ। कौन-कौन खड़ा होगा कि एक कसाई को काम बंद करवाएंगे। आप लोग बोल रहे हो कि पहले किया। कसाईखाने को बंद करने का प्रयत्न किया है। गई जो बात गई। अब की बात चल रही है। पहले वाली बात जाने दो। पहले जो हुआ सो तब की बात है। अभी सामने क्या है? मतलब बात क्या करनी है वह बात करनी है। कौन-कौन एक-एक कसाई को बुरा कार्य बंद करवाएगा? बीस लोग खड़े हुए हैं तो बीस लोगों को ही नाना गुरु के दर्शन होंगे और उनको अलग से दर्शन करवाने पड़ेंगे। बीस लोग ही दर्शन करने के इच्छुक हैं? लोढ़ा* जी! आप भी खड़े हो जाओ। बैठे क्या हो? बीजेपी के कार्यकर्ता हो तो एक आदमी को संभाल ही लोगे। बोलो, बंद कराएंगे या नहीं? गीता में भी यह लिखा है कि कर्म करना मेरा अधिकार है। एक बात ध्यान रखना कि एक बार, दो-तीन बार चोट पड़ते-पड़ते क्या हो जाता है? अरे चोट पड़ते रहने से तो पत्थर भी मूर्ति बन जाता है। चोट पड़ते-पड़ते

* इन्द्रचन्दजी लोढ़ा, डोंगरगाँव (श्री दिव्यदर्शन मुनिजी के पिताश्री)

तो पत्थर भी मूर्ति का रूप ले लेता है तो हमारी चोट खाली क्यों जाएगी? मन में विश्वास है तो आपकी चोट खाली नहीं जानी चाहिए। आपकी चोट खाली नहीं जा सकती। पक्के विश्वास के साथ काम करोगे तो! 'जो बोले सो अभय, जैन धर्म की (प्रतिध्वनि–जय) जैन धर्म की (सभा–जय)।

आहा! आहा! क्या कहना है। लोगों के मन में लहरें उठ रही हैं। अरे जो सलीम मुसलमान जिसने नाना गुरु की जन्म शताब्दी पर दस लोगों को कत्लखाने से मुक्त करने की बात कही थी और एक को मुक्त करा चुका है। हमको तो एक के लिए कहा जा रहा है। क्या हम एक को भी मुक्त कराने के लिए तैयार नहीं है?

अब ऐसा कौन है? कौन है जो कम से कम दस जनों को कत्लखाने वाले को, कसाइयों को कम से कम दो बार कहेंगे कि कत्लखाने का काम बंद करें। कौन-कौन लोग हैं ऐसे, खड़े हो जाएं। जो कम से कम दो बार कत्लखाने का काम बंद करने की बात कहेंगे। और यदि कोई कहेगा कि काम बंद होने से मेरी रोजी-रोटी बंद हो जाएगी तो उसके लिए पंकज जी शाह से बात कर सकते हैं। या कोई कहे कि भाई कत्लखाने के कारण ही मेरी तो रोजी-रोटी होती है। मेरी रोजी-रोटी का सवाल है तो आप संघ से बात कर सकते हो। संघ में कई लोगों ने आश्वासन दिया है कि कत्लखाना बंद होने से किसी का रोजगार चला जाए तो उसको रोजगार देने के लिए हम तैयार हैं। कुछ लोग कह रहे हैं कि हम अपनी तरफ से रोजगार दिलवा देंगे तो यह तो और भी बढ़िया बात है। अगर वो लोग अपनी तरफ से रोजगार दिलवा सकते हैं तो अच्छा है। नहीं तो संघ से बात करनी पड़ेगी। घर में कोई मेहमान आ जाए और घर में जगह नहीं हो रुकने के लिए तो फिर होटल किराये पर लेनी ही पड़ेगी। आपके घर में जगह हो तो बहुत अच्छी बात है। नहीं तो होटल जाना होगा।

हमें सिर्फ दो बार समझाने की बात है। दो बार समझाने के लिए हमारे पास फुरसत नहीं है तो पर्व पर्युषण की आराधना क्या काम आएगी? पर्व पर्युषण की आराधना की बात चल रही है। एक-एक का नाम लेकर खड़ा करना पड़ेगा। अरे! आप लोग जबरदस्ती कर रहे हो। किसी के साथ जबरदस्ती मत करो। जबरदस्ती नहीं करना है। जिसकी भावना होगी वह अपने आप ही खड़ा हो जाएगा।

अभी पंकज जी कुरान शरीफ के एक अध्याय का हिंदी अनुवाद लेकर आए हैं। उन्होंने हिंदी में अनुवाद करके लिख रखा है। कुरान शरीफ में अहिंसा की बात कही गई है। 'खुदा सारे जगत का पिता है, मालिक है। जगत में जितने प्राणी हैं वे सभी खुदा के पुत्र हैं। बिस्मिल्लाह रहमानुरहम, सभी जीवों पर रहम करो। मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी हजरत अली साहब ने कहा है कि हे मानव! पशु-पक्षियों की कब्र अपने पेट में मत बना। अर्थात् तुम पशु-पक्षियों को मारकर उनको अपना भोजन मत बनाओ। इसी प्रकार दीन-ए-इलाही के प्रवर्तक मुगल सम्राट अकबर ने कहा है कि मैं अपने पेट को दूसरे जीवों का कब्रिस्तान नहीं बनाना चाहता हूं। जिसने किसी की जान बचाई उसने मानो सारे इंसानों की जिंदगी बचा ली है। इसलिए यह मानो कि सारे इंसानों की जान है। कुरान शरीफ 535।' कुरान शरीफ 535 का यह हिंदी अनुवाद है। आपको यदि चाहिए तो पंकज जी शाह से लेकर अपने पास में रख सकते हो। और यह सामने वाले को बता सको कि देखो, ये तुम्हारे कुरान की बात को तो मानो। ये बता रहे हैं कि पांच कसाइयों को छुड़ाओ। जिन पांच कसाई के काम को छुड़ाओगे वे कितने दिन में काम करने के लायक हो पाते हैं? कितने दिन में वे रोजगार पा लेते हैं? हमारा काम है उनको कहना। वह यदि माने तो अच्छी बात है। नहीं तो कम से कम हम कह तो सकते हैं। हम ऐसा विश्वास रखें कि मेरी कही बात को वो जरूर मानेगा। ऐसा विश्वास रखकर कहेंगे कि हम दो कसाइयों को कसाईखाना बंद करने के लिए जरूर कहेंगे।

बहिनें भी आगे आएंगी। अरे! दो बार कहने की ही तो बात है। श्रीमती विजया देवी सुराना (बाद में दीक्षित हुए श्री सुविजेता जी म.सा.) उनका जुनून था। उनको यदि मालूम पड़ जाए। सूचना मिल जाए कि अमुक जगह जीवों की बलि हो रही है। पशुओं की घात हो रही है। हत्या हो रही है तो वे वहां पर पहुंच जाती। जैसे ही वे पहुंचती तो वहां की स्थिति कुछ और हो जाती। वे कहतीं कि पहले मेरी गर्दन को काटा जाए फिर इन जीवों की बलि होगी। मैं इन पशुओं की बलि नहीं होने दूंगी। जगह-जगह पर उन्होंने कत्लखाने बंद करवाए हैं। हम क्या कमजोर हैं? हम भी उन्हीं के पदचिह्नों पर चलें। हमारे भीतर ये कायरता नहीं आनी चाहिए। यदि पांच-दस महिलाएं मिलकर जाती हैं तो क्या कुछ नहीं हो सकता है? महिलाओं के अधिकार ही अलग हैं। उनका वर्चस्व अलग ही बन जाता है। नारी, शक्ति-स्वरूपा मानी गई है।

अन्यथा आज से ये नारा बंद करो कि गुरु तुम्हारे मंत्र को घर-घर में पहुंचाएंगे। हम करने को तैयार कहां हैं? कहां हम मोम को पिघलाने का विचार कर रहे हैं? हमें न मोमबती को पिघलाना है, न दीये को जलाना है। करना-धरना कुछ भी है नहीं। शक्ति क्यों खराब करनी अपनी? और क्या बोलते हैं कि चार चवन्नी चांदी की सारी दुनिया गांधी की या महावीर की। चार चवन्नी से मतलब नहीं है। हमारा कार्य क्या है? हमारा कर्तव्य क्या है? हमारा कार्य अभी नाना गुरु की जन्म शताब्दी पर सकारात्मक कार सेवा करना है। एक भी इंसान, एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं कहे कि मैं कुछ नहीं कर पाया शताब्दी पर। हमें कुछ तो करना ही है ये लक्ष्य रहना चाहिए। तब तो हमारा बोलना सार्थक होगा। नहीं तो ये बातें कि 'नाना गुरु दर्श दिखा जाओ' फालतू की बातें होगी। ये सारी दिखावे की बातें होगी। हम कुछ कार्य करें तो जय-जयकार अपने आप ही हो जाएगी। "नहीं थोथे नाद गुंजाना है, अब करके कुछ दिखलाना है" अब ये थोथे नारे, ये कागजी कार्यवाही नहीं चलेगी। कागजी कार्यवाही से कुछ नहीं होगा। कागज में तो लिख दिया कि वहां पर ब्रिज बनेगा लेकिन वहां पर जाकर देखा तो वहां पर कुछ भी नहीं है। सड़क बनाने के लिए कागज पर लिख दिया लेकिन वहां पर देखा तो एक पत्थर भी नहीं है। हमने लंबा-चौड़ा कागज तैयार कर लिया और यहां आकर बोल रहे हो यह काम नहीं चलने वाला है– करो, करो, करो। बोलो कम और करो ज्यादा। अब तो करने का समय है। बोलो कम और करो ज्यादा। नाना गुरु ने ये सिद्धांत दिया है कि मैं कहता कम हूं और करता ज्यादा हूं। नाना गुरु कहते हैं कि करो ज्यादा और बोलो कम। और आप कहते हो कि हम नाना गुरु के भक्त हैं? लेकिन आप कहते ज्यादा हो। "बतावे सौ और मिले नहीं जीरो", "बतावे सौ और मिले शून्य" ये काम कैसे चलेगा?

कैसे हो कल्याण करनी काली है, नहीं होगा भुगतान हुण्डी जाली है...।

मैंने शुरू में श्रीमद् आचारांग सूत्र के एक सूत्र का उल्लेख किया था उसकी संक्षिप्त व्याख्या भी की थी। तदनुसार अतीत को परिष्कृत करें भावी की चिंता छोड़ें। वर्तमान स्वतः सुखी हो जायेगा। हम पर्व पर्युषण मना रहे हैं तो हमारे दिल में पहले वह रहम की भावना जगनी चाहिए। वह प्रेम की भावना जगनी चाहिए। प्राणी मात्र के प्रति हमारी प्रेम की भावना होनी चाहिए। हमारे मन में ऐसे विचार होने चाहिए कि जगत् में सारे जीव सुख से रहें। सभी को जीने का मौका मिले। अवसर मिले। जीओ और जीने दो। मैं

भी जी रहा हूं और दूसरे को भी जीने का अवसर है। जीने की छूट है– इस प्रकार का लक्ष्य बनाएंगे तो अपने आप में कुछ सफल हो पाएंगे। अर्जुन माली जो भगवान के चरणों में दीक्षित हुआ और अल्प समय में अपने आप को ऐसा साध लिया, ऐसा साध लिया और साधकर सिद्ध, बुद्ध-मुक्त हो गए। हम सुनते हैं किंतु साधते नहीं हैं। सुनने के साथ हमें भी साधने का प्रयास करना चाहिए। 'जे एगं नामे से बहुनामे' एक को नमा लिया तो बहुत का काम हो जाएगा। बहुत को नमाकर हम अपने आपको अरिहंत की दिशा की ओर मोड़ेंगे। हमने इस मानव जीवन को प्राप्त किया है अपने महान् पुण्य से हमें धर्म की प्राप्ति हुई है– इस धर्म की लाज रखने वाले बनेंगे। इस धर्म को बढ़ाने वाले बनेंगे और इस धर्म की आराधना करके शाश्वत सुख को प्राप्त करेंगे।

01 सितम्बर, 2019
(पर्युषण पर्व का पांचवां दिन)

13

प्रवाह नहीं पराक्रम

शांति जिन एक मुज विनति...

अंतगडदसाओ का वाचन निरंतर चल रहा है। प्रतिवर्ष इसका वाचन होता है। हम प्रतिवर्ष इस सूत्र का वाचन सुनते हैं। एक-एक पात्र का वर्णन जिस प्रकार से हमारे समक्ष उपस्थित होता है, हमारे भीतर प्रेरणा जगनी चाहिए। बहुत सारे प्रसंग स्पष्ट होते हैं। अतिमुक्त कुमार के प्रसंग को हम सुने होंगे और हमने विचार भी किया होगा। कई बार बात उठती है कि दीक्षा के लिए कौन-सी उम्र होनी चाहिए? किस उम्र में दीक्षा ली जानी चाहिए? समाज में एक समय यह प्रसंग भी उपस्थित हुआ कि बाल दीक्षा नहीं होनी चाहिए। लोग सोचने वाले कम होते हैं और गतानुगतिक चलने वाले ज्यादा होते हैं। एक व्यक्ति कोई बात बोलता है और लोग हां में हां मिलाने वाले हो जाते हैं; विचारते कम हैं। कुछ वर्षों पहले साबुदाना की बात उठी थी। मेरे खयाल से याद होगा बहुतों को, साबुदाना वाली बात। एक महासती जी, जो उस फैक्ट्री में रुकी और उनके द्वारा जो अभिलेख प्रस्तुत हुआ; लोगों ने सोचा नहीं, समझा नहीं, विचार किया नहीं और अपने-अपने नाम से थोड़े बहुत फेर-फारकर के साथ अखबारों में देना शुरू कर दिया। और थोड़े दिनों में वापस समाधान निकला कि जो बात कही गई थी वह साबुदाना के संबंध में नहीं है। उसका जो वेस्टेज है, उसके संदर्भ की बात है। कुछ वर्ष पहले संथारे का प्रकरण उठा और बहुत लोगों ने अपनी प्रतिक्रियाएं देना प्रारम्भ कर दिया। उसमें सबसे बड़ी बात यह कि जैन कहलाने वाले ही ज्यादा प्रतिक्रिया देने वाले हुए। जबकि उनको मालूम ही नहीं होगा कि संलेखना क्या होती है? कैसे होती है? उसका स्वरूप क्या है? जैसे बरसाती मेढक पैदा होते हैं और टर्र-टर्र करते हैं वैसे ही लोग टर्र-टर्र करने लग जाते हैं।

दीक्षा के संदर्भ में भी कुछ वर्षों पहले आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के समय एक हवा थी। एक प्रवाह था कि बाल दीक्षा नहीं होनी चाहिए। जब आचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म.सा. के पास श्री सिरेमलजी म.सा. अल्प उम्र में दीक्षित हुए तो हवाएं चली कि बाल दीक्षाएं नहीं होनी चाहिए। यदि हम इतिहास उठा कर देखें तो बालवय में दीक्षा लेने वाले, उन लोगों ने जिन शासन की कितनी-कितनी प्रभावना की? वे संयम साधना में प्रखर बने और प्रखर साधना से समाज को भी लाभान्वित किया। बहुत सारे नाम हमारे सामने आ सकते हैं। आचार्य हेमचंद्र अल्पवय में दीक्षित हुए। आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. छोटी उम्र में दीक्षित हुए। श्री सिरेमल जी म.सा. की बात हम बोल गए हैं पहले, जिनको लोग पंडित जी महाराज के नाम से पहचानते थे। आचार्य श्री तुलसी छोटी उम्र में दीक्षा लेने वाले बने। इससे पहले के और भी ढेरों नाम हैं और स्वयं भगवान महावीर के पास दीक्षा लेने वाले अतिमुक्त कुमार भी हैं।

वस्तुतः, यदि विचार करें तो शरीर की उम्र से दीक्षा का इतना गहरा संबंध नहीं है। शरीर प्राप्त किए हुए कितने वर्ष हुए हैं इसका कोई मायने नहीं है। यदि शरीर और उम्र, वह दीक्षा का कारण हो तो अमुक वय में सभी को वैराग्य चढ़ जाना चाहिए। शादी-विवाह के लिए हो सकता है कि उसमें शरीर की वय को/शरीर की उम्र को देखते होंगे कि कितने वर्षों का हो गया और उसकी शादी की तैयारी होने लग जाती है। विचार चालू हो जाते हैं। किंतु दीक्षा के लिए यह बात नहीं है। 'दीक्षा पराक्रम है, प्रवाह नहीं है।' शादी-विवाह प्रवाह है किंतु दीक्षा? यह पराक्रम है। और यह पराक्रम शरीर से नहीं; मन से, बुद्धि से होता है। अपनी प्रज्ञा से होता है और जिसकी ऐसी मति होती है, जिसकी ऐसी प्रज्ञा होती है, ऐसी बुद्धि होती है वही पराक्रम करने में समर्थ होता है। हर कोई वह पराक्रम नहीं कर सकता है। आप देखो अतिमुक्त कुमार थोड़े समय में समझ गया कि 'जो जानता हूं वह नहीं जानता और जिसको नहीं जानता वह जानता हूं।' यह पहेली बड़े-बड़े लोग नहीं जानते। इस पहेली को बड़े-बड़े लोग भी नहीं समझते हैं। इस पहेली का अर्थ किसने समझ लिया? माता के सामने जब यह बात उन्होंने कही तो माता ने कहा, बेटा! पहेली मत बुझा। समझ सकते हैं कि उस उम्र में रही हुई माता भी इसके अर्थ को नहीं समझ पाई और हम लोगों में से बहुत-से लोग शब्दों के अर्थ को जानते हैं किंतु सचाई का स्पर्श हम में से कितने कर पाते हैं? और वे

समझ गए या नहीं समझ गए? समझ ही नहीं गए अतिमुक्त कुमार बल्कि सचाई को उन्होंने स्वीकार करने का पूरा लक्ष्य बना लिया। जन्म लेने वाला मरेगा ही, यह निश्चित है। जन्म लेने वाले की मृत्यु अवश्यंभावी है। किंतु कब मरेगा, कहां पर मरेगा, किस प्रकार से मरेगा ये अज्ञात है। नहीं जानते हम कि कैसे, कहां मरेंगे?

शरीर की वय पर यदि विचार करें तो छेदोपस्थापनीय चारित्र के लिए लगभग नौ वर्ष की उम्र होना बताया है।

कृष्ण वासुदेव के प्रकरण में हम सुने होंगे कि उनकी मृत्यु कहां पर हुई थी। कहां जन्म लिया कहां पर लालन-पालन हुआ? कहां पर राज किया और कहां मृत्यु हुई?

कहां जन्मया, कहां उपन्या, कहां लड़ाया लाड़?
कुण जाने क्या होवसी, कहां पड़ेगा हाड?

यह शरीर कहां गिरेगा इसकी मृत्यु कहां होगी इससे हम अनजान हैं। मरेंगे यह बात फाइनल है और यह भी जानते हैं कि मरने वाले जीव चतुर्गति संसार में नरक, तिर्यंच, देव या मनुष्य– इन चार गतियों में उत्पन्न होते हैं। किंतु कौन-सा जीव कहां उत्पन्न होगा यह जानते हैं क्या? नहीं जानते हैं। नहीं जानते हैं तो फिर हमने जानने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? जो चीज हम नहीं जान रहे हैं उसको जानने के लिए प्रयत्न करना चाहिए या नहीं करना चाहिए? प्रयत्न करना तो चाहिए। यह होना तो चाहिए किंतु हम कितना कर पाते हैं और क्या कर रहे हैं? व्यापार कैसे बढ़े उसके लिए हमारा प्रयत्न होता है। व्यापार में लाभ कैसे ज्यादा मिल सकता है, लाभ ज्यादा कैसे कमाया जा सकता है उसके लिए भारी भरकम फीस लेने वाले ट्रेनरों के पास हम ट्रेनिंग भी लेते हैं और निश्चित ही कुछ अंतर पड़ता ही होगा। नहीं तो क्यों जाते किसी ट्रेनर के पास? उनके पास क्यों पहुंचते? चीजें वही होती हैं। थोड़ी बहुत समझ की फर्क के साथ शायद वह सही रूप से हमारी समझ में आ जाती है। पहले वैसे समझ में नहीं आई पर उन्होंने जिस प्रकार से समझाया वह चीज समझ में आ गई।

आत्म कल्याण के लिए हम कितना पुरुषार्थ कर रहे हैं? आत्म कल्याण के लिए हमारा क्या पराक्रम हो रहा है? हम उसके लिए क्या प्रयत्न कर रहे हैं? खाना-पीना, नहाना-धोना– ये सारी क्रियाएं होती हैं। पैसे कमाने की

क्रियाएं होती हैं। उसके लिए बहुत सारे प्रयास होते हैं। किंतु आत्म कल्याण, सही जीवन जीने का तरीका जानने के लिए हमारे पास समय कहां है? प्रयत्न कहां है? जितना भी धन कमाओगे साथ में कुछ भी जाने वाला नहीं है। यह भी हम जानते हैं। कौन यह नहीं जानता है कि कमाया हुआ धन हमारे साथ में नहीं चलेगा? यह कौन नहीं जानता है? कोई जानता है कि कमाया हुआ धन साथ में ले जा सकते हैं? मेरे खयाल से यहां बैठने वाले इस बात को समझ रहे होंगे। इस बात को अच्छी तरह से जान रहे होंगे। कितना भी कमा लो किंतु साथ में कुछ भी जाने वाला नहीं है। 'जे ना चाले संगाथे, तेनी ममता शा माटे' जो तुम्हारे साथ चलने वाला नहीं है उसकी ममता क्यों? और लगाव किससे होता है? लगाव किससे है? (जोर देते हुए) किससे है? जो हमारे साथ जाने वाला तत्त्व नहीं है उससे हमारा लगाव है या जो चीजें हम साथ में ले जा सकते हैं उससे हमारा लगाव है?

श्रीमद् भगवती सूत्र में भगवान से एक प्रश्न किया गया कि भगवन्! ज्ञान इस भव में है, परभव में है या तदुभय भविक है? अर्थात् जो ज्ञान मैं यहां कर रहा हूं इसी भव में रहेगा या आगे भी वह ज्ञान काम में आएगा? वह ज्ञान आगे भी रह सकता है या नहीं रह सकता है? भगवान ने बताया कि वह ज्ञान इस भव में भी है, परभव में भी वह है और आगे के भवों में भी वह ज्ञान रह सकता है। दर्शन के विषय में भी यही उत्तर मिला। चारित्र, तप, संयम– ये केवल इसी भव में है, परभव में नहीं। यहां से हम किसी दूसरे भव में चले गए। हो सकता है मनुष्य जन्म ही प्राप्त कर लिया और हमें साधु बनने का मौका मिल गया। किंतु जन्म से लेकर एक अवधि तक वह संयम नहीं रहेगा। जो निरंतरता होनी चाहिए वह निरंतरता नहीं रहेगी। किंतु ज्ञान, वह निरंतर रह सकता है। दर्शन, जिसको हम श्रद्धा कहते हैं वह श्रद्धा भी निरंतर रह सकती है। किंतु चारित्र, संयम और तप– इनकी आराधना वर्तमान में ही हो सकती है। ये परलोक में हमारे साथ जाने वाले नहीं हैं। किंतु इनसे जो पुण्य उपार्जित होगा; चारित्र की, संयम की आराधना करते हुए जिस पुण्य का लाभ आत्मा को मिलेगा वह पुण्य उसके साथ में जाने वाला है।

संयम की आराधना, सामायिक, पौषध की आराधना किस उद्देश्य से होनी चाहिए? उसका उद्देश्य क्या होना चाहिए? क्या अच्छा पुण्य कमा लें इसलिए तप किया जाय? पुण्य लाभ के लिए तप अज्ञानी करते हैं। जिसने तत्त्व को जान लिया वह जानता है कि तप का उद्देश्य कर्मों की निर्जरा है।

उसके लिए भगवान ने कहा है कि 'नऽन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा' एक मात्र निर्जरा के लिए ही तप किया जाय। मासखमण-मासखमण की तपस्या करने वाले अज्ञानी जीव लोकरंजन, यशकीर्ति या पुण्य-वैभव प्राप्त करने के लिए तप कर लेते हैं। किंतु वे धर्म की 16वीं कला को भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते हैं। जबकि सम्यक् दृष्टि भाव के साथ एक नवकारसी का तप भी किया जाता है तो वह बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। वह कर्मों की निर्जरा कराने वाला होता है। नवकारसी के विषय में भी बहुत सारी भ्रांतियां चलती रहती हैं। जितने पंथ, मत उससे ज्यादा धारणाएं, परम्पराएं हैं। मेरे दिमाग में कुछ बात आई, उसके दिमाग में कुछ बात आई, किसी और के दिमाग में कुछ बात आई और तर्क के बल पर हमने किसी बात को स्वीकार कर लिया। आगम के आधार पर यदि हम विचार करें तो नवकारसी, रात्रि चौविहार के साथ होनी चाहिए। सूर्य अस्त के साथ चौविहार और रात भर कुछ भी नहीं लेना और सूर्य उदय के बाद 48 मिनट का समय लेना। कभी-कभी हम तर्क लगाते हैं कि उग्गए सूरे-सूर्य उदय का पाठ है इसलिए सूर्य उदय के बाद से पच्चक्खाण है। 6:20 तक दिन उग जाता है और सवा छः बजे तक खा लो, पी लो। फिर रोजा में और आपके उपवास में क्या अंतर होगा? बल्कि रोजा आपसे भारी पड़ जाएगा। आगे बढ़ जाएगा। आप रात में खाना पीना करोगे लेकिन आपका दिन में भी पानी पीना नहीं छूटेगा। आप पानी पी लोगे। किंतु कहा जाता है कि रोजे में दिन में खाना-पीना कुछ भी नहीं होता है। जबकि हम दिन में पानी पी लेते हैं। क्योंकि हिंदू समाज में तथा जैन समाज में दिन में खाने पीने की बात कही और रात्रि त्याग की बात कही है। वहां उलटा मिलेगा। वहां पर मुस्लिम लोग रात्रि में खाएंगे। इस दृष्टि से उपवास से रोजा भारी पड़ जायेगा।

हम लोग सीधे हाथ धोते हैं। वे लोग उलटे हाथ धोते हैं। आप माला कैसे गिनते हो? आप सीधी माला गिनते हो और वे उलटी माला गिनते हैं। यानी आप मनकों को अपनी तरफ (हृदय की तरफ) लेते हो वे मनकों को बाहर की ओर धकेलते हैं। आप लिखोगे इधर से, वो लिखेंगे उधर से यानी वे राइट से चालू करेंगे और लेफ्ट में लिखते हुए जाएंगे। आप लाइन में लेफ्ट से लिखना प्रारम्भ करेंगे और राइट तक लिखेंगे। वे लोग राइट से लिखना प्रारम्भ करेंगे। राइट से शुरू करके लेफ्ट में पहुंचते हैं। ये अंतर है। राम शब्द का उच्चारण करो होंठ बंद होगा या खुलेगा? और दूसरी तरफ अल्लाह का

उच्चारण करो होंठ खुले रहेंगे। आप लोग अब प्रयोग करके देख रहे हो कि होंठ किसमें खुल रहे हैं और किसमें बंद हो रहे हैं। मुंह बंद रहता है या खुला रहता है? यह संस्कृति की भिन्नता है। किंतु यदि हम लें अच्छाइयां कहीं से भी तो देखें कि इसमें उनका रीजन क्या है हम नहीं कह सकते। किंतु हम उसका सही रीजन ले सकते हैं। अपन चाहते हैं बाहर के विकार भीतर नहीं जायें और वे अपने भीतर के विकारों को बाहर निकालेंगे। वे चाहते हैं भीतर के विकार बाहर निकल जाएं। माला के मनकों को बाहर की ओर धकेलते हुए गिनेंगे यानी अपने विकारों को बाहर फेंक रहे हैं।

वस्तुतः, यही रीजन है तो वह एक दृष्टि है। हमारे यहां पर जब हम राम कहते हैं, मतलब बाहर को छोड़ो। अन्दर में प्रवेश करो। आत्मस्थ बनो। इस प्रकार हम राम, अरिहंत और बहुत-से नाम बोलते हैं तब हमारा मुंह बंद होता है। इसका मतलब है कि बाहर के विकारों को भीतर प्रवेश नहीं दिया जाए। तुम अपने भीतर में रमण करो! दोनों को मिला लोगे तो भीतर के विकारों को बाहर निकालेंगे तो भीतर में रमण हो पाएगा। भीतर विकार भरे रहेंगे तो वहां आत्मा का रमण संभव नहीं होगा। खैर, यह तो एक विषय आ गया। बीच में बात आ गई इसलिए कुछ बोल दिया। मूल है नवकारसी आदि तप की समीक्षा। किंतु नवकारसी का तप भी यदि सम्यक् क्रिया के साथ किया जाता है तो वह कर्मों की महान् निर्जरा कराने वाला होता है। बताया गया है कि एक मिथ्यादृष्टि जीव, मान लो एक उपवास करता है और एक सम्यक् दृष्टि जीव उपवास करता है तो दोनों की निर्जरा में असंख्यात गुणा अंतर होगा। एक सम्यक् दृष्टि जो तप कर रहा है, एक व्रतधारी श्रावक उसी तप को स्वीकार कर लेता है तो उसके अध्यवसायों में और भी निर्मलता होगी क्योंकि वह जानने लगा है। उसकी निर्जरा असंख्यात गुणा होगी। उससे प्रमादी साधु की निर्जरा असंख्यात गुणा होगी और अप्रमाद भाव में रहने वाला वही निर्जरा करता है तो उसकी निर्जरा और असंख्यात गुणा होगी। और फिर श्रेणी आरोहण करे उसकी निर्जरा तो क्षण-क्षण में बढ़ती हुई चली जाती है।

जैसे-जैसे हमारे भावों की विशुद्धि होती है। जैसे-जैसे हमारे अध्यवसाय पवित्र होते जाते हैं। जैसे-जैसे हमारे अध्यवसाय शुद्ध होते जाते हैं वैसे-वैसे कर्मों की निर्जरा अधिक होती हुई चली जाती है। मिथ्यात्वी में वे अध्यवसाय नहीं बन पाते हैं। ज्ञान होने के बाद अंतर में प्रकाश प्रकट हो

गया और अंतर में प्रकाश जब प्रकट हो गया तो उस समय जो उल्लास होगा वह अज्ञान अवस्था में नहीं होगा। जैसे एक शब्द हम बोलते हैं। हमें शब्द का अर्थ मालूम नहीं है तो उसमें हमारा उल्लास नहीं बनेगा और शब्द के अर्थों को जान रहे हैं तो उसमें हमारा उल्लास बहुत बढ़ेगा। बढ़ेगा या नहीं बढ़ेगा? एक शब्द होता है, 'अर्चा', क्या अर्थ होता है अर्चा का? लिखो। क्या लिखा? लिखो और अब बताओ अर्चा का क्या अर्थ होता है? बताओ इसका अर्थ क्या है? (प्रत्युत्तर– पुराना धान) आप लोग बोल रहे हैं कि पुराना धान। अर्चा शब्द शरीर के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। अर्चा शब्द कषायों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है और अर्चा शब्द पूजा-अर्चना के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। कहां से कहां चली गई बात? इसीलिए कहा जाता है कि यथाप्रसंग शब्द का अर्थ लेना चाहिए। खाली शब्द के अर्थ से भी बात गड़बड़ी में पड़ जाएगी।

पूज्य गुरुदेव कई बार फरमाया करते थे कि एक व्यक्ति/एक मालिक भोजन करने बैठा और नौकर से कहा सैन्धव लाओ 'सैन्धवम् आनय'। जो सिंधु देश में पैदा होने वाला होता है उसे भी सैन्धवम् कहते हैं। 'सैन्धवम् आनय'। सेंधव लाओ। सिंधु में तो नमक भी पैदा होता है और घोड़े भी होते हैं। वहां के घोड़े भी बड़े मशहूर हैं। वो भोजन कर रहा है तो अर्थ होगा– सेंधा नमक मांग रहा है। और उसकी जगह पर अगर घोड़ा लाकर खड़ा कर दे तो? समझदारी हो जाएगी क्या? एक योद्धा है। सम्राट है। युद्ध के लिए तैयारी कर रहा है और उसने कहा, 'सैन्धवम् आनय' और उसके सामने कटोरी में नमक भरकर लेकर आ जाये तो...। वहां पर क्या लाना चाहिए? (प्रत्युत्तर– घोड़ा) वहां पर तो घोड़ा लाना था। वह नौकर बोल देगा कि आपने सैन्धव मांगा था तो मैं लेकर आ गया। यदि प्रसंग से अर्थ नहीं लेंगे तो बख्शिश मिलेगी या गालियां मिलेंगी? अरे! नासमझ, इतना भी नहीं समझता है। मैं युद्ध के लिए जा रहा हूं तो इस समय मुझे घोड़े की आवश्यकता है या नमक की? आप लोग बोलोगे कि नमक लेकर आया तो ठीक ही किया। नमक से नजर नहीं लगेगी। डॉक्टर साहब आपने शादी की है क्या? घोड़े पर बैठे तो और भी साथ में कोई बैठा था क्या? अकेले ही बैठे थे? अकेले बैठते हैं या पीछे कोई बैठता है। छोटी बच्ची बैठती है। छोटा बच्चा बैठता है। और क्या करता है वो? नमक अंवारे। क्यों? कांई वास्ते अंवारे? किसलिए? नमक इसलिए अंवारता है ताकि नजर नहीं लग

जाए। युद्ध के लिए जाते हैं तो नमक लेकर आ गए! नजर नहीं लगेगी। वहां नमक का क्या काम है? अर्थ विन्यास करने के लिए भले कह लो कि राजा को नजर नहीं लग जाए। बड़े शूरवीर हैं राजा इसलिए नजर लग जाएगी। इसलिए जहां जाएगा वहां नमक की पोटली साथ बांध दी कि आपको नजर नहीं लगे। यह टोटका है। टोटके की बात अलग है। किंतु सामान्यतः युद्ध के लिए राजा सज-धज कर तैयार है। योद्धागण, राजा, सेनापति सभी हैं तो कर्मचारी उनके लिए घोड़ा लेकर आएगा।

पहले मैंने एक दिन बताया था कि अरिष्टनेमि भगवान शादी के लिए जा रहे थे। उन्होंने सारथि से कहा कि ये पशु-पक्षी किसलिए बंद किए हुए हैं? तो सारथि ने बताया कि आपके विवाह के कारण से। और वैसे ही भगवान के चेहरे पर ऐसा झलका कि मेरे लिए? भगवान ने मुंह से कुछ नहीं कहा और सारथि ने सारे बाड़े और पिंजरों को खोल दिया। पशु-पक्षी चले गए। भगवान के मन की अनुकूल बात हुई या प्रतिकूल बात हुई? मनोगत भावों को जानने वाले व्यक्ति की कीमत क्या सबके समान होती है? नहीं! आईएएस की परीक्षा देने वाले क्या समान रूप से परीक्षा में उत्तीर्ण हुए? प्रतिशत कम ज्यादा होता है किंतु सभी उत्तीर्ण हो गए। किंतु सबकी समझ एक समान होगी क्या? कोई राष्ट्रपति, कोई प्रधानमंत्री के कार्यालय में काम कर रहा है। उसको आमंत्रित करके वहां पर रखा गया और कोई सामान्य अवस्था में ऑफिसर बनकर काम कर रहा है। दोनों में अंतर क्या है? (प्रतिध्वनि–सीनियर, जूनियर) ऐसी बात नहीं है। जूनियर, सीनियर से ज्यादा समझदार हो सकता है। जूनियर को भी मौका मिल सकता है बशर्ते उसकी समझ कितनी गहरी है। उसकी समझ कितनी पैनी है। वह सब बात को इतनी जल्दी भांप लेता है। सामान्यतः, कार्य कराने वाला क्या बोल रहा है उसके बोलने के आशय को समझ लो। उसके कहने का तरीका क्या है? वह आगे क्या चाहने वाला है? ये बातें भांप लेता है तो आदमी की कीमत है।

अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछ लिया की सबसे बुद्धिमान् कौन है? कौन होते हैं सबसे बुद्धिमान्?

'आगल बुद्धि बाणियो, पाछल बुद्धि जाट और
तीजी बुद्धि तुरकड़ो, ब्राह्मणो सपमपाट'

और आगे जाने दो, हमको क्या करना है? जो अभी कहा, उसमें बात गहरी है। प्रमाणित करो जो कहा गया उसके पीछे बात गहरी है। ब्राह्मण को

आपके लोक व्यवहार से मतलब नहीं है। जो अध्यात्म में जीता है वह ब्राह्मण है। जो ब्रह्म में जीता है वह ब्राह्मण है। जन्म से कोई भी ब्राह्मण हो गया उससे कोई मतलब नहीं है। किंतु जो ब्रह्म में जीता है वही ब्राह्मण है। जो अध्यात्म में जीता है वह ब्राह्मण है। मुनि को भी ब्राह्मण कहा गया है क्योंकि उसको दुनियादारी से कोई मतलब नहीं है। उसके दिमाग में चतुराई नहीं होनी चाहिए। तिकड़म नहीं होनी चाहिए। उसका दिमाग सरल होना चाहिए। शांत स्वभाव होना चाहिए–एकदम शांत और प्रसन्न। उसको दांव-पेच से क्या लेना-देना? वह क्यों दांव-पेच खेलेगा? दांव-पेच खेलने के लिए दुनिया में बहुत है। इसमें कहा गया सबसे पहली बुद्धि किसकी है? किसमें है? बनिये में। बुद्धि प्रखर है किंतु राग-द्वेष जीतने की बुद्धि सक्रिय नहीं है। राग-द्वेष जीतने की बुद्धि कहां पर है? बाजार में मिलती है क्या राग-द्वेष जीतने की बुद्धि? राग-द्वेष जीतने की बुद्धि हमारी इतनी सक्रिय नहीं है। हमारा स्वार्थ सिद्ध कैसे हो सकता है वह प्रखर है। सामने वाला क्या करेगा और मैं उससे कैसे धन कमा लूं? मैं किसका क्या अर्थ लगाऊँ यह बुद्धि प्रखर है। लोगों ने अपने उत्तर बताये किंतु बीरबल ने कहा कि हुजूर! बनिया लोगों में बुद्धि सबसे प्रखर होती है। सभा में एक बनिया बैठा हुआ था बुलाया उसको। अकबर ने राजकुमार-शहजादे को बुलाया और कहा कि इस शहजादे की कीमत बताओ? कितनी बतानी है? इसकी कीमत आंको? बेचारा व्यापारी परेशानी में आ गया कि क्या आंके? कम आंके तो मुश्किल है और ज्यादा आंके तो भी मुश्किल। कहेंगे कि चापलूसी कर रहा है।

उसने कहा, हुजूर! मुझे 24 घंटों की मुहलत चाहिए। अकबर ने कहा, दिए 24 घंटे। 24 घंटे के बाद तुम्हें कीमत बतानी होगी। अब ऐसी स्थिति में उपवास अपने आप हो जाएगा या करना पड़ेगा? करने की जरूरत होगी क्या? अरे! खाने-पीने की रुचि ही खत्म हो जाएगी। घर पर आया और पलंग पर निढाल होकर गिर गया। घरवालों ने कहा कि क्या हुआ? बनिये ने कहा, बोलो मत, बोलो मत। घर वाले बोले, भोजन तो कर लो। वह बोला कि मेरे खाने-पीने की रुचि नहीं है। मुश्किल से खाना-पीना करवाया। प्राचीनकाल में शाम को हथाई हुआ करती थी गांव में। आज भी ऐसा चबूतरा बना हुआ होता है जहां गांव के लोग आकर 'भळे' होते हैं और दिनभर में क्या-क्या हुआ उसकी समीक्षा करते हैं कि कहां पर क्या हुआ? जम्मू कश्मीर में 370 धारा हट गई तो क्या हुआ? कहां पर क्या हुआ?

कहां क्या हो जाएगा? सेठ जी भी जाया करते थे। उस दिन भी गए लेकिन चुपचाप बैठ गए। जाना तो पड़ता है किंतु आज कुछ भी बोलते नहीं है। एक बुजुर्ग का ध्यान उधर गया। उस बुजुर्ग ने सेठ जी से पूछा कि क्यों भाई! चुपचाप बैठे हो। बोल नहीं रहे हो क्या हो गया? उसने कहा कि आज तो हालत खराब है। क्यों हालत खराब है? आज राजसभा में गया था और वहां पर गले में माला आ गई। बादशाह ने शहजादे को खड़ा कर दिया और पूछा कि इसकी कीमत कितनी है आंको। मेरे को शहजादे की कीमत आंकने को कहा गया। बुजुर्ग ने कहा, अरे! इसमें सोचने की क्या बात हो गई? बड़ी-बड़ी समस्याएं भी हल हो जाती हैं तो यह कौन-सी बड़ी समस्या है? सेठ ने कहा, आपको यह समस्या नहीं लग रही है। मेरे तो प्राण सूख रहे हैं। न किसी काम में रुचि हो रही है और न ही खाने-पीने में रुचि हो रही है। किसमें रुचि है? कहां चली गई रुचि? यह बड़ा मनोविज्ञान है कि किसी को कोई झटका लगे वह भीतर ही भीतर कुछ स्थितियां बनाता रहता है। भीतर ही भीतर कुछ समस्याएं बनती रहती हैं और उसके दुष्परिणाम बहुत खतरनाक होते हैं। और कई बार इतने खतरनाक होते हैं कि डॉक्टर के पास जाओ तो उसकी सारी मशीनें लग जाती हैं लेकिन सारी मशीनें फेल। मतलब उनकी मशीनों में कोई रोग नहीं है किंतु रोगी तो रोगी है। वह बीमार अवस्था में है। किंतु उसका रोग मालूम नहीं होता है।

होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति में इस मनोविज्ञान का भी समावेश है कि आदमी किस समय क्या विचार कर रहा होगा और उसका क्या परिणाम होगा। थोड़ी बहुत जो मुझे याद है, डॉक्टर परमार ने एक बात बताई कि एक औरत उनके पास आई और उसने अपनी समस्या रखी। उससे कहा कि अपनी सारी बात बताओ, हिस्ट्री बताओ। तो उसने सारी हिस्ट्री बताई कि पति नाराज है। बाहर गया हुआ है। अलग हो गया है। डॉक्टर साहब ने पूछा, तुम उससे मिलना चाहती हो या दूर रहना चाहती हो? उसने कहा, मैं चाहती हूं कि हमारा मिलाप हो जाए। उन्होंने कहा कि हो जाएगा। वह न फोन करती है न ही अन्य चेष्टा। किंतु जैसा डॉक्टर साहब बोल रहे थे। जैसा मेरी स्मृति में रहा उन्होंने एक दवा दी और दूसरे या तीसरे दिन उसके पति का फोन उसके पास आ गया। क्या हुआ? कैसे हुआ? हमारी समझ के बाहर की बात है। हमारी समझ में नहीं आएगी। जहां होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति में बताया कि किसी को गहरा सदमा लगा हो। जैसे किसी की आर्थिक स्थिति

डांवांडोल हो रही है या और कोई घटना घट गई हो। आगे जीविका का क्या होगा यह भय पैदा होता है। आदमी में यह भय जिस समय पैदा होता है उस समय उसके भीतर बीमारी चालू हो जाती है। वह बीमारी उस समय ज्ञात नहीं हो पाती है। किंतु वह गंभीर बीमारी समय आने पर प्रकट होती है उसके उद्भव की आप यदि खोज करेंगे तो जिस समय यह झटका लगा था उस समय वह बीमारी चालू हो गई। कितने वर्षों से बीमारी है यह कुछ डॉक्टरों की जांच में बात आ जाय यह अलग बात है। सामान्यतया वह समझ में नहीं आती।

जोधपुर गुरुदेव का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास से पहले गुरुदेव का बालोतरा, समदड़ी होते हुए जोधपुर आना हो रहा था। बीच में धुंधाड़ा की या अजीतगढ़ की बात है। एक नदी के इस पार है और दूसरा उस पार। शायद अजीतगढ़ की ही बात है। वहां गुरुदेव का विराजना हो रहा था। वहां एक मस्तमौला व्यक्ति आया। लंबा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा और कुछ का कुछ बोल रहा था। एक प्रकार से डिप्रेशन में चला गया था। सामान्य रूप से कहा नहीं जा सकता था कि वह डिप्रेशन में है। उसने कुछ बातें ऐसी बोली हम लोग घबरा गए कि यह क्या बोल रहा है? यह क्या हो रहा है, कैसे हो रहा है? आचार्य श्री ने उसके साथ जो भाई आया था उससे पूछा, क्या इसे कोई सदमा लगा या कोई घटना हुई? और सदमे से पहले उसकी स्थिति क्या थी? उस भाई ने कहा कि ऐसा एक घटनाक्रम हुआ और उसके बाद से इनकी ऐसी स्थिति हो गई है और इस प्रकार परिवर्तन हुआ है। एक ऐसी घटना हुई और वह झटका जो लगा उससे वह डिप्रेशन में चला गया। उससे इसके मस्तिष्क का संतुलन अस्थिर हो गया। हमको नहीं मालूम पड़ता है कि क्या हुआ किंतु ऐसी बहुत सारी घटनाएं हमारे विचारों के कारण घट जाती हैं। हमें यह भी याद नहीं रहता है कि वह घटना किस समय घटी।

एक बीमार व्यक्ति डॉक्टर के पास गया। उसने अपनी हिस्ट्री उसके सामने रखी। डॉक्टर ने कहा कि तुम्हारे मन में यह बात जमी हुई है कि मेरा भाई या मेरी बहिन कोई भी मेरी बात को नहीं मानेगा। तुमको इस बात का भय रहता है कि कोई तुम्हारी बात मानेंगे नहीं। बात आ गई सामने। अब बोलो। डॉक्टर क्या पूछ रहा है कि तुम्हारे मन में ये विचार चलते हैं क्या? वह व्यक्ति बोला कि हां, थोड़ा बहुत ऐसा विचार अवश्य रहता है। ये बीमारी

की जड़ है। ये मनोविज्ञान है जिससे बहुत कुछ बातें ज्ञात हो सकती हैं। आचार्य श्री ने जब उस व्यक्ति से सारी बातें पूछी और ये बात कही तो वह उत्तेजित हो गया। बोला, मैं देख लूंगा। ऐसा सुनकर हम सभी और घबरा गए। रात को सोने के पहले दरवाजे भी चारों तरफ से बंद कर दिए। सब लोग सोच रहे थे कि क्या होगा? कुछ नहीं हुआ। सुबह वह आकर स्वयं ही माफी मांगने लग गया। ये बातें, कुछ ऐसी बातें होती हैं जिनको हम समझ नहीं पाते हैं। इसलिए ज्ञानी जन कहते हैं कि अपने भीतर में इतना झटका मत लो। ये झटका जब आता है तो हम विचार करने लग जाते हैं कि मेरा क्या होगा? मेरी प्रतिष्ठा का क्या होगा? वह प्रतिष्ठा का भय कि मेरी प्रतिष्ठा कहीं खराब हो गई तो? वह भय जैसे ही मेरे भीतर पैदा होता है वह भीतर में कोई गम्भीर बीमारी पैदा कर देता है। धीरे-धीरे वह बीमारी बढ़ती हुई चली जाती है। कारण, वह केवल एक झटका होता है। वह झटका किसी भी रूप में हो सकता है। कभी आर्थिक स्थिति की गड़बड़ियों से हो सकता है और व्यक्ति सोचने लग जाता है कि अब आगे की जिंदगी कैसी होगी? कैसे जीवन कटेगा? मेरी प्रतिष्ठा कैसे बची रहेगी यह भी भय होता है। यह भय हमारे जीवन को संत्रस्त कर देता है। हमारे जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है। ऐसे भयों से बचना चाहिए।

सुपार्श्वनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है कि–

सात महाभय टालतो सप्तम जिनवर देव ललना।
सावधान मनसा करी, धारो जिनपद सेव ललना।
श्री सुपार्श्व जिन वंदिए।

ये सात महाभय हैं। सात भय यदि छूट जाएं तो जीवन में कोई चिंता नहीं रहेगी। कोई तनाव की बात नहीं। कोई शंका नहीं। एकदम शांत जीवन हो जाएगा और जब हमें ये भय लगे रहते हैं तो आदमी को लगता है न जाने कब क्या होगा। हर समय उसे भय लगा रहेगा। छोटी-छोटी बातों का भय होगा। मैं चल रहा हूं कहीं एक्सीडेंट नहीं हो जाए? एक्सीडेंट हो जाएगा तो क्या होगा? ये हो जाएगा, वो हो जाएगा। कई प्रकार के फितूर आदमी के दिमाग में चलते रहते हैं। ये मत समझ लेना कि इन फितूरों का कोई अर्थ नहीं है। उनकी कोई बात नहीं है। वे हमारे जीवन के आगे प्रश्नवाचक चिह्न बन जाते हैं। उनका प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता रहता है। हमारी समझ में/हमारे मनोभावों में/मनुष्य के जीवन में उनका प्रभाव होता जाता है और ऐसे में

हमारे भीतर में चेंजेज आता है। भीतर में बदलाव आता है। शायद हम नहीं जानते लेकिन उसके परिणाम आ जाते हैं। उसके कारण आदमी चिड़चिड़ा हो जाएगा। उसे कोई भी चीज सुहायेगी नहीं! किसी के साथ या किसी के प्रति मन में प्रद्वेष पैदा हो जाएगा। उसे कोई अच्छी बात भी कहेगा तो वह कहेगा, ज्यादा बोलो मत। ऐसी कई प्रकार की स्थितियां जीवन में होती हैं या उसके जीवन में निर्मित हो जाती हैं जिससे सामुदायिक जीवन भी बड़ा प्रभावित होता है। वह स्वयं भी दुःखी हो जाता है। स्वयं तनावग्रस्त हो जाता है और साथ वाले भी उसके कारण चिंतित हो जाते हैं कि इसको क्या हो गया? हो क्या गया, कारण भीतर में कहीं न कहीं कोई आसक्ति की बात रही हुई। व्यक्ति यह सोचता है कि मेरी एक गहरी समस्या है। वह है, मेरी जैसी प्रतिष्ठा है, मेरा जैसा यश है, मेरा यश कम नहीं होना चाहिए। मेरी प्रतिष्ठा में कमी नहीं आनी चाहिए। वह बनी रहनी चाहिए। मेरे बाहर का जो वातावरण है वह वातावरण एकदम सही रहना चाहिए। बाहरी दिखावे में और भीतरी विचारों में जहां पर द्वंद्व होता है वहां पर ऐसी स्थितियां होती हैं। जिसके जीवन में और बाहर के दिखावे में कोई फर्क नहीं होता है वहां पर सहसा ही ये स्थितियां पैदा नहीं होती हैं। जहां ये द्वंद्व होता है वहां दुविधा होती है। जी कैसे भी रहा है किंतु दिखावे में बाहर तो अच्छा ही दीखना चाहता है। भीतर में और बाहर में अंतर होता है वह सदा अपने को कपड़े से ढका हुआ रखेगा। शरीर में बीमारी है किंतु लोगों को वह दिखाना नहीं चाहता है। गर्मी में भी वह मोटा कपड़ा शरीर पर ढकेगा। गर्मी में भी वह कपड़ा ढके रखेगा क्योंकि लोगों को मालूम नहीं पड़ना चाहिए कि ये बीमारी मेरे शरीर पर है। यदि कभी वह चद्दर/वह कपड़ा हवा के कारण उड़ने लगेगा तो वह सावधानी रखेगा। उसके मन में सदा यह भय बना रहेगा कि ये चद्दर कहीं खुली नहीं रह जाए। ये मेरी चद्दर हट नहीं जाए। इसका परिणाम उसके मानसिक स्तर पर भी और शारीरिक स्तर पर भी होगा। कहीं-न-कहीं वह मानसिक या शारीरिक रूप से रुग्ण रहेगा। किंतु जो ज्ञानी पुरुष होते हैं वे मानसिक रूप से रुग्ण नहीं होते हैं। क्यों नहीं होते? क्योंकि वे ऐसी स्थितियों को नहीं पालते। वे भीतर जैसा जीवन जी रहे हैं वैसा ही उनका बाहर का जीवन होता है। ज्ञानी जन बाहर के जीवन को अलग तरह से दिखाने की कोशिश नहीं करते हैं। बिल्कुल भी कोशिश नहीं करते हैं।

एक भाई आए थे अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य श्री पुनीत जी जैन। वे कहने लगे कि महाराज, ये चेहरे बड़े अच्छे लग रहे हैं किंतु जब हमने सर्वे

किया तो ऐसे-ऐसे लोग भी सामने आए जैन समाज में जिनको देखकर आंखों में आंसू आ जाते हैं। उनकी आंखों की हालत भी ऐसी रहती है कि बस आंसू निकलने ही वाले हैं। बड़ी विचित्र दशा है। ऊपर से चेहरे सबके खिले हुए होते हैं। ऊपर से कपड़े सबने अच्छे पहने हुए हैं किंतु भीतर की सारी स्थितियां बिगड़ी रहती हैं। कोई व्यक्ति जल्दी से अपने भीतर की चीजों को बाहर प्रकट करना नहीं चाहता। उन्होंने कहा कि हम बड़ी मुश्किल से समझा पाते हैं। हम ये सारी चीजें अपनी तरफ से नहीं कर रहे हैं। सरकार की तरफ से सारी सुविधाएं दी जाती हैं कि इसका लाभ लो। हम अपनी तरफ से कुछ नहीं कर रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि एक कार्यक्रम में लगभग 98 लोगों का चयन किया और उनको आर्थिक सहयोग, जो सरकार की नीतियों के अंतर्गत होता है उसका लाभ उनको दिलवाया। पता नहीं कितने लोग ऐसे होंगे जो बाहर की स्थिति, बाहर का स्टेटस अच्छा रखते हैं किंतु भीतर देखें तो...। देखें तो लिफाफा बंद है। भीतर में मजबूरी का लिफाफा है और उस लिफाफे में भी पत्र गायब है। वह पत्र, यानी जानने वाले अपनी-अपनी कठिनाई को जान रहे हैं कि हम कैसे जी रहे हैं? क्या बड़े और क्या छोटे? बड़ों का जो स्टेटस है वह बड़ों के लिए बड़ी दुविधा है और छोटों के लिए छोटी दुविधा होगी। किंतु जीना दुविधा में ही हो रहा है।

साधुओं के लिए भी दुविधा है। यदि बातों में, बातचीत में मन लगाता है तो ज्ञान ध्यान की हानि होती है। बातों में मन लगे तो ज्ञान-ध्यान की हानि होती है। और यदि मन स्थिर नहीं रहे तो प्रतिक्रमण की हानि होगी। बातें तो हम बोल रहे हैं किंतु ये दुविधा क्यों होती हैं? ये दुविधा होनी नहीं चाहिए। यदि हम अपने आप में जीयें तो कोई दुविधा हमें नहीं होगी। और इधर-उधर का कचरा, इधर-उधर की बातें– जैसे क्या हुआ, क्या नहीं हुआ। उसने क्या बोला, क्या नहीं बोला। अरे! किसने क्या बोला, किसने क्या नहीं बोला, क्यों टेंशन पालना? बोला होगा कुछ भी उसने मेरा क्या बिगड़ेगा? किंतु आदमी उन बातों को नहीं सोचकर कुछ और ही सोचता है। कई लोगों की हालत बड़ी खराब होती है। आपस में यदि कोई दो व्यक्ति बात कर रहे होते हैं और बातें करते-करते उसकी तरफ देख रहे होते हैं तो वह यही सोचता है कि हो ना हो मेरी बात ही कर रहे हैं। बात नहीं भी कर रहे होते हैं तो भी वह सोचता है कि मेरी बात कर रहे हैं! ये फालतू की परेशानी है। इसे क्यों मोल लेना? कोई आदमी क्या बात कर रहा है उससे लेना-देना क्या

है। मेरी बात कर रहा होगा, मेरी बात कर रहा होगा ऐसा वह व्यक्ति सोचता ही रहता है। क्या बातें कर रहा होगा? हजारों बातें हैं करने के लिए। फिर भी हमारी भावना बनती है कि मेरी ही बात कर रहा है। क्या मालूम किसकी बात कर रहा है? लेकिन व्यक्ति को यही लगता है कि मेरी बात ही कर रहा है। क्यों डरना? 'जो करना सो अच्छा करना' जो भी करना है अच्छा करना है। और अच्छा कर रहे हो तो फिर क्या डरना है?

जो करना सो, अच्छा करना, फिर दुनिया में किससे डरना॥

कोई कैसी ही बातें करे। भले ही मेरी बात करे। मेरी दस नहीं पचासों बात करे लेकिन मुझे उससे क्या लेना-देना? मेरे से पूछेगा तो मुझे जो जवाब देना है...। सामने वाला भले ही आगे-पीछे की कितनी ही बातें करे सामने करे तो मैं जवाब दे दूंगा। मैं जो भी बात है, जो भी जानकारी है, वह बता दूंगा। अगर मेरे भीतर सचाई है। मैं सही हूं तो क्यों डरना? जो-जो भी होगा बता दूंगा। क्या फर्क पड़ता है? बातों पर ध्यान क्यों देना? कितनी भी बातें करें उससे मुझे क्या लेना-देना? दुनिया में बहुत से लोग होते हैं किसी की भी बात कर सकते हैं। मेरी बात ही क्यों करेगा? यह हमें सोचना चाहिए। और जब हमें कुछ लेना-देना ही नहीं है, कुछ करना ही नहीं है तो भले ही हमारी पचासों बातें करे। कोई भले ही कितनी भी बातें करे किसी की बातों से मेरा कुछ भी बिगाड़ होने वाला नहीं है। सामने वाला भले ही कितनी भी बातें करें हम तो यही सोचें कि ज्यादा बात करने से आदमी की बुद्धि बिखर जाती है। बुद्धि बिखर जाएगी, मन बिखर जाएगा तो जिस कार्य में लगा होता है, जिस कार्य को वह संपन्न करना चाहता है उस कार्य को सही ढंग से संपन्न नहीं कर पाएगा। इसलिए बातें करते हों तो तुम चिंता मत करो। मेरी बात भी कर रहा है तो भले करे। यदि तुमने कुछ किया ही नहीं है तो फिर तुम्हारी बात क्यों करेगा? यदि हमारे भीतर भय है। डर है तो इसका मतलब है कि हमारे भीतर कुछ वैसा है। मतलब दाल में कुछ काला है। और चोर की दाढ़ी में...(प्रतिध्वनि– तिनका है) चोर की दाढ़ी में तिनका है। क्या मतलब हुआ?

एक दिन शायद पहले भी मैंने कहा था। राजनांद गांव में मेरा चातुर्मास चल रहा था और वहां पर संतों की कुछ सामग्री चली गई। मैंने दिमाग लगाया कि क्या हो सकता है? वन, टू, थ्री करके दिमाग लगाया। चातुर्मास के बाद वहां से निकले और विहार करके संयोग से दुर्ग जाना हुआ। वहां पर

व्याख्यान हो रहा था और उस भाई पर मेरी दृष्टि पड़ गई। मैंने व्याख्यान में सारी घटना, सारी बात इस प्रकार से कही कि राजनांद गांव में हमारे संतों का कुछ सामान चला गया और मैं जानता हूं वह व्यक्ति कौन है जो सामान उठाकर ले गया है। वह व्यक्ति अभी इसी सभा में मौजूद है। वह व्यक्ति व्याख्यान के बाद खुद दोपहर में आ गया कि बापजी! क्षमा करो। मेरे से गलती हो गई। दोपहर में वह खुद आ गया मेरे पास। यह सब कैसे हो गया? कैसे हो गया? उस व्यक्ति ने सोच लिया, वह समझ गया कि अब तो पकड़ा जा चुका हूं और वह मेरे पास आ गया। चोर की दाढ़ी में तिनका का भी इसी प्रकार से एक वाकया है। एक बार कहीं सभा चल रही थी। वहां पर पुलिस भी थी और पुलिस की छानबीन चल रही थी। उन्होंने कहा कि हमने चोर को पहचान लिया है और वह चोर इस सभा में मौजूद है। चोर की दाढ़ी में तिनका है। इतना सुनते ही जो चोर था उसका हाथ सहज ही धीरे से दाढ़ी पर चला गया कि कहीं मेरी दाढ़ी में तिनका है तो नहीं। उसका हाथ कहां पर गया? और वह चोर पकड़ा गया क्योंकि मन में भय था। हमारे मन में भी यदि भय होता है कि मेरी बात कर रहे हैं! मतलब आपने कुछ गड़बड़ी की होगी तो भय रहता है। नहीं तो यदि मन में आ भी रहा है कि मेरी बात कर रहे हैं तो अच्छा लगना चाहिए। आप सोचो कि यदि दस लोग मेरी बात कर रहे हैं तो मेरे में और मेरे जीवन में कुछ विशेष बात है। मेरे में कुछ विशेष है तभी तो दस लोग, बीस लोग, पचास लोग मेरे विषय में बात कर रहे हैं। नहीं तो किसी को फुरसत कहां है जो हमारे लिए बात करे। कुछ विशेष है तभी तो हमारे बारे में बात करेंगे और कोई बात करे तो हमें घबराना किस बात से? यदि बात कर रहे हैं तो ये सोचो कि मैं कोई हीरो हूं। मैं हीरो हो गया तभी तो पचास आदमियों में एक सोचने-समझने के लिए बिंदु बना। यदि ऐसा है तो बात से, हमें क्या फर्क पड़ता है? खूब बात करो। बात करने से हमारा क्या जाने वाला है?

यह सभी सोच-सोच का अंतर है। समझ-समझ का अंतर है। आदमी को अपने भीतर के भय की स्थितियों के कारण ऐसा लगता है। वो कहते हैं ना, 'सावन के अंधे को सब जगह हरियाली ही नजर आती है', वैसे ही उसको लगता है कि मेरी बात ही हो रही है। मेरी ही बात हो रही है। अरे! भाई बात तुम्हारी ही क्यों करेंगे। और कर भी रहे हैं तो तुम्हें उससे क्या लेना-देना। यदि तुमसे पूछे तो जो भी बात तुम्हें पता है, जानकारी में है वह बता दो। नहीं तो

लोग इधर-उधर की बातें करते हैं। उनको करने दो हमें क्या फर्क पड़ने वाला है? हम बातें कहां की कर रहे थे और चलते-चलते कहां पर आ गए। बातें किसकी चल रही थीं? क्या बात चालू हुई थी? बीरबल और उस व्यापारी की बात चल रही थी कि क्या हो गया बनिये को? वह बुजुर्ग को सारी बात बताता है और वह बुजुर्ग कहता है कि क्यों चिंता करते हो? क्यों चिंता पाल रहे हो, कोई मतलब नहीं है चिंता करने से। व्यापारी ने कहा कि आप समझते नहीं हो। ये कैसी दुविधा है मेरे लिए। बुजुर्ग ने कहा कि तुम चिंता मत करो। मैं तुम्हारे साथ में चलूंगा और तुम वहां पर सारी बात मुझ पर डाल देना। कहना कि मैं क्या जवाब दूं जब हमारे सामने हमारे बुजुर्ग हैं। मैं इनके सामने बोलूं तो यह ठीक नहीं है और मुझे आगे खड़ा कर देना मैं सारी बात संभाल लूंगा। इतना सुनकर उस व्यापारी के जीव में जीव आया कि मैं तो बच गया। लेकिन फिर भी मन में थोड़ी चिंता थी। कुछ नहीं तो 75 परसेंट दिमाग तो शांत हो गया। अगले दिन वे दोनों दरबार में पहुंचे और बादशाह ने फिर शहजादे को लाकर खड़ा कर दिया और बोले कि इसका मूल्य आंको। क्या है मूल्य? उसने कहा कि हुजूर! मेरे बुजुर्ग यहां पर मौजूद हैं। बुजुर्गों के रहते हुए मैं जवाब दूँ यह उचित नहीं। इसका जवाब बुजुर्ग ही देंगे।

वह बुजुर्ग आया हाथ में डंडा लिए हुए। गांधी जी का गोल-गोल चश्मा, मोटे कांच का लगा हुआ और ठमक-ठमक करते हुए चल रहा है। बोलो, कैसे चला? बोलो, कैसे चला? हड़बड़ी नहीं थी। आराम से चल रहा था। हड़बड़ी नहीं। 'हड़बड़ियां तो गड़बड़ियां'। जो हड़बड़ी करेगा वो गड़बड़ी करेगा। 'धीरज मन धरी सांभलो' 'धैर्य में जो व्यक्ति होता है उसके कदम बड़े सधे हुए चलते हैं।' जो धैर्य में जीने वाला होता है उसका मन-चित्त सधा हुआ होता है। उसके पैरों में चपलता नहीं होगी। वह बड़ा सधा हुआ चलेगा। हाथी भी चलता है और कुत्ता भी चलता है। हाथी की चाल बहुत मस्त/एकदम सधी हुई होती है। कितने ही कुत्ते भौंकें लेकिन वह अपनी चाल से चलता रहता है। वह सोचता है कि कुत्ते भौंकें तो मेरा क्या जा रहा है? हाथी कुत्तों को भौंकने से न रोकता ही है और न उनके पीछे ही भागता है। वह मदमस्त चलता है। भौंकने वाले भौंकते रहो। हम चल रहे हैं और कुत्ते भौंक रहे हैं तो हम कुत्ते को भगाने में कुत्ते के साथ कुत्ता क्यों बन जाएं? हम तो हाथी बनकर चलेंगे। कोई कितना भी भौंकता रहेगा, मेरा क्या बिगाड़ लेगा? इतना विश्वास होना चाहिए या नहीं होना चाहिए?

वह बुजुर्ग ठमक-ठमक करते हुए पहुंच गया शहजादे के पास। शहजादे के मुंह को थोड़ा इधर घुमाया, थोड़ा उधर घुमाया। कभी आगे से देख रहा है कभी पीछे से देख रहा है। कभी किधर से देखता है कभी किधर से देखता है। ऊपर से देखता है, नीचे से देखता है। ये दिखावा भी करना पड़ता है हालांकि उत्तर तो पहले से तैयार था। किंतु परखना है तो परखने के लिए ये दिखावा करना ही पड़ेगा। वह ऐसा सब करके ललाट पर हाथ रखकर कहता है कि हुजूर! शहजादे के भाग्य में क्या है वो तो मैं नहीं कह सकता। बाकी कीमत तो दो टके की है। दो टका कीमत है। भाग्य की बात मैं कुछ नहीं कह सकता। इसका क्या भाग्य है/क्या पुण्य कर्म है बाकी कीमत दो टका ही है। आज यदि मजदूरी के लिए निकालो तो दो टका कमाकर लाना इसके लिए मुश्किल है। इसकी कीमत तो दो टके की है। बादशाह तो एकदम चौंक गये कि ये क्या हो गया। बुजुर्ग कहता है कि मैंने पहले ही बोला था कि इसके भाग्य का/नसीब का मैं नहीं कह सकता। लेकिन जो शरीर है उसकी कीमत सिर्फ दो टका है। आदमी का भाग्य, वह किस समय कैसे पलटेगा यह कोई नहीं जानता, त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं...। स्त्री की चाल किस समय किस रूप में बदलेगी कोई नहीं बता सकता। देव भी नहीं बता सकते। स्त्री कभी तो पति की मौत की तैयारी कर रही है और कभी पति के सामने आंसुओं की लड़ी की लड़ी बहा रही है कि आपके बिना मेरा क्या होगा। मैं कैसे रहूंगी। और पीछे से कोई सेवइयां बनाने वाली भी होती है। फिर खूब खा-पीकर मौज करने वाली बन जाती है। यह बहुत सारे रूप हैं। 'त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्...।' देवता भी एक बार पुरुष के भाग्य को और स्त्री के स्वभाव को पहचानने में समर्थ नहीं होते हैं। वे भी भाग्य को पहचानने में धोखा खा जाते हैं। उसका कुछ कह नहीं सकते। बुजुर्ग ने कीमत आंकी और कहा कि शहजादे की बाजार में पूछो तो कोई दो टके से ज्यादा देने वाला नहीं है। कौन खरीदे? कौन खरीदे? हाथी को खरीदने वाला कौन है? हाथी को खरीदकर करोगे क्या? खरीदेगा कौन? हाथी खरीदेंगे तो रखेंगे कहां पर? और उसको खिलाएंगे क्या? उसको खिलाना भी पड़ेगा। उसके लिए पैसे खर्च करो।

बंधुओ! बात साफ है कि परखने वाले की निगाहें होती हैं। वह चीज को परख सकते हैं। एवंता कुमार/अतिमुक्त कुमार ने परख लिया कि मैं जानता हूं कि जन्म लेने वाला मरेगा ही और यह नहीं जानता कि कहां मरेगा? विभिन्न

गति में हम भ्रमण करते हैं। कौन कहां से आया है और कहां जाएगा ये कोई नहीं जानता। ये बात वे अपनी मां से कहते हैं। मां से कहते हैं कि–

लेऊं लेऊं संयम भार माता मोरी रे,
आज्ञा तो देवो नी म्हाने मोद सूं।
संयम रो रूप कांई समझो म्हारा कंवरा ओ,
खेल खेलो नी थे तो गेंद सूं।
जानू हूं मैं जिसको माता, उसको ही नहीं जानूँ ओ।
नहीं जानूँ उसीको मैं तो जानता,
ऐसा कांई बोलो बोल, पहेलियां बुझावो ओ।
साफ सुनाओ दिल री बातड़ी।

माता ने कहा कि यह पहेली क्यों बुझा रहे हो? क्या कहना है अपनी बात साफ कहो। अतिमुक्त कुमार कहते हैं कि माता बस एक ही बात है कि मैं संयम जीवन स्वीकार करना चाहता हूं। एक तो वह श्रीदेवी माता थी कि बेटे की बात सुनने के साथ हँस दी। और कहा कि संयम स्वीकार करना है। संयम लेना चाहते हो? तुम तो गेंद से खेलो और एक गेंद ला देती हूं कि तुम खेलो। अभी संयम को क्या जाना है तुमने? गेंद लो और खेलो। अतिमुक्त कुमार कहता है कि माता! मैं जो नहीं जानता उसको जानता हूं और जो जानता हूं उसको नहीं जानता। ये जो पहेली है इस पहेली में सारा सार भरा हुआ है। इसमें तत्त्व-ज्ञान भरा हुआ है और इस ज्ञान को मैंने किससे सुना है, किससे जाना है? भगवान महावीर से जाना है।

"गच्छाचार पइण्णा" में यह बताया गया है कि छह वर्ष की उम्र थी और विजय सेन सम्राट और श्री देवी महारानी की कुक्षि से जन्मे अतिमुक्त कुमार दीक्षित हो जाते हैं और जो बात आपने सुनी, श्रीमद् भगवती सूत्र ऐसा कहता है/उसमें ऐसा बताया गया है कि वर्षा होने पर पानी बहने लगता है। वे मुनि अभी बाल्यावस्था में थे। वे अपने हाथ में रजोहरण और पात्र लेकर निकले और पाल बांधकर अपनी पात्री को छोड़ दिया और क्या बोलने लगा?

'म्हारी नांव तिरे, म्हारी नांव तिरे'

ऐसा खेल वे खेलने लगे। आप सुन गए हो, श्री अंतगडदसाओ और श्री भगवती सूत्र के माध्यम से। श्री भगवती सूत्र का आज एक पाठ आया उसमें

यह बात बताई है। और गच्छाचार पइण्णा में यह बताया गया है कि गौतम स्वामी ही उनको देखने वाले थे और वे उनको पकड़कर लाए कि ये क्या कर रहे हो। मुनि चाहे कोई भी हो और कोई भी पकड़कर लाया हो। जो कुछ भी रहा हो। किंतु स्पष्ट है कि भगवान से जो चर्चा हुई और भगवान ने जो उत्तर दिया उसमें एक बात जो हमारे सामने आती है और गीत के माध्यम से हम गाते हैं–

एवंता मुनिवर नाव तिराई, बहता नीर में,
पोलासपुरी नगरी के राजा विजय सेन सम्राट,
श्रीदेवी अंग उपन्या सरे,
एवंता कुमार जी॥

घटनाएँ कभी की घट गई हैं। किंतु भगवान ने जो कहा उसे ध्यान में लेना है कि किसी की क्रिया-प्रतिक्रिया मत करो। उसने क्या कर दिया, उसने क्या कह दिया ये सब नहीं देखना है। किसको देखना है और किसको देख रहे हो? किसको देख रहे हो? जब तक दृष्टि बाहर रहेगी, हम बाहर के बाहर घूमते रहेंगे और जब ये दृष्टि अंदर आएगी तब हमारा कल्याण हो पाएगा। भगवान महावीर ने स्थविरों से कहा कि ये चरमशरीरी जीव है। इनकी आशातना मत करो। इनका संग्रह करो। इनका संरक्षण करके संगोपन करो। क्या अर्थ हो गया? इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि इनका ज्ञान से, दर्शन से, चारित्र और तप से इनका संग्रह करो। इनकी वैयावृत्य करो। इनकी प्रतिक्रिया मत करो। भगवान की एक वाणी को यदि हमने स्वीकार कर लिया तो हमारा जीवन सुखी हो जाएगा। चाहे घर है, परिवार है, समाज है, कहीं पर भी हम किसी की प्रतिक्रिया नहीं करें। 'यह प्रतिक्रिया निम्न होती है।'

क्रिया से प्रतिक्रिया निम्न होती है। क्यों होती है निम्न? क्योंकि विचार उसके शुद्ध नहीं होते। उसमें विचारों में कहीं-न-कहीं द्वेष के भाव होते हैं। कहीं-न-कहीं ईर्ष्या के भाव होते हैं। वह भले ही कहेगा कि मेरा किसी से राग-द्वेष नहीं है। मेरा किसी से ईर्ष्या भाव नहीं है। ईर्ष्या नहीं करता है तो प्रतिक्रिया से तुम्हारा लेना-देना क्या था। क्या मतलब था। मतलब यह कि कहीं-न-कहीं तुम्हारे भीतर वह चीज अटकी हुई है। वह अटकी हुई है इसलिए तुम प्रतिक्रिया कर रहे हो। जो प्रतिक्रिया की गई वह प्रतिक्रिया निम्न होगी। उच्च स्तर की नहीं हो सकती है। इसलिए इस एक बात को यदि हम ध्यान

में ले लें। भगवान की केवल एक बात को स्वीकार कर लें कि हम प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। हम जीएंगे। हम जीवन को जीना चाहते हैं। हम जीवन जीएंगे। 'प्रतिक्रिया जीवन जीने की नहीं होती है। जीवन से हटने की होती है।' ऐसी प्रतिक्रिया को हम अपने नजदीक नहीं आने देंगे। हमें उससे प्रेम नहीं करना है। प्रतिक्रिया से दूर रहने का जितना प्रयत्न करेंगे हम अपने जीवन को सुखी बना पाएंगे। प्रतिक्रिया से हटकर हम अपने जीवन को सुखी बना सकेंगे। हम अपने जीवन को शांत बना सकेंगे।

अतिमुक्त कुमार दीक्षित हो गए। भगवान के चरणों में आ गए। संयम जीवन का पालन किया और संयमी जीवन की आराधना करते हुए कितने शास्त्रों का ज्ञान किया? बोलो, कमलजी! क्या सुना है अभी? (प्रत्युत्तर–ग्यारह अंगों का अध्ययन किया) 'सामाइयमाइयाइं...।' मुख्य सामायिक है। उससे प्रारंभ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन करते हैं और फिर अंतिम समय में सारे कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान-केवलदर्शन से अपनी आत्मा को भावित करते हैं और चरम उच्छ्वास में सारे कर्मों का क्षय करके सिद्ध होते हैं। बुद्ध होते हैं। मुक्त होते हैं। और परिनिर्वाण अवस्था को प्राप्त करते हैं।

बंधुओ! विचार करने की बहुत सारी जगह है। हमारी इतनी उम्र बीत गई जितनी उम्र में एवंता कुमार ने दीक्षा ली। इतने वर्ष भी अब हमारे बीतेंगे या नहीं। कोई अल्प आयु में भी दीक्षा ले सकते हैं। दीक्षा लेने के लिए शरीर और आयु का कोई बंधन नहीं है। एक छोटी-सी बात याद आ गई कि जिस समय संघ ने कुछ संत अलग किए। नानूकंवर जी म.सा. को भी संघ से अलग किया गया। श्री नानूकंवर जी म.सा. को श्री धापू कंवर जी म.सा. ने कहा था कि थूं यों क्यों करे थारे एक पछेवड़ी भी कोई फाड़ेगा या नहीं। और ऐसा ही हुआ। किंतु एक बात है कि क्या भरोसा है जिंदगी का? एक पानी की बूंद अभी पत्ते पर चमक रही है। ओस की बूंद वह पत्ते पर पड़ी हुई है। बड़ी अच्छी लग रही है। एक सूर्य की किरण आती है और उसकी चमक बढ़ जाती है। आहा! आहा! जैसे मोती चमक रहे हैं। बहुत बढ़िया चमक रही है। इतने में एक हवा का झोंका ऐसा आएगा कि सारी बूंदें गिर जाएंगी। बिखर जाएंगी।

मौत की हवा का झोंका एक आएगा,
जिंदगी का वृक्ष तेरा टूट जाएगा।

एक हवा का झोंका आया। वह पत्ता हिला और सारी पानी की बूंदें गिर गईं। क्या पता चला? कितनी देर लगी? देर कितनी लगी? लंबे समय के लिए हमने प्लान बना लिया है। 2020 में क्या करना है, 2021 में क्या करना है, 2022 में क्या करना है। कहां-कहां जाना है। कौन-कौन से देशों में जाना है। घूमने के लिए/पर्यटन करने के लिए जाना है। कुछ चीजें सीखनी हैं। सीखने के लिए जाना है। सारा प्लान बना लिया है। 'आज करे सो काल कर, काल करे सो परसों, फिक्र है किस बात की हम जीयेंगे बरसों' हमें क्या चिंता है? पर ध्यान रखना हम कितना जीएंगे? कुछ कह पाना कठिन है। जीवन का क्या भरोसा है? आज जो चीज तुमने कमाई है। पाई है। कल वह चीज छूटेगी या नहीं छूटेगी?

इसलिए बंधुओ! जो कहा गया है कि सबसे हिलमिल चालिए, नदी-नाव संयोग। सबसे हिल-मिलकर चलो। हिल-मिलकर रहो। संवत्सरी के पर्व पर क्षमा याचना करने का अवसर है। 'दूसरों के साथ मिलकर रहो। किंतु किसी को अपनी जगह दो मत और किसी की जगह घेरो मत।' अर्थात् किसी के साथ अटैचमेंट मत करो। अटैचमेंट करोगे तो आपके दिल की जगह वह घेर लेगा। दूसरे के दिल में भी अपनी जगह मत बनाओ। जगह को घेरो मत। बसेरा नहीं होना चाहिए। विहार हो जाना चाहिए। धर्मशाला में कोई आए तो बस हां सा, हां सा, हां सा। अरे! कितने दिन की बात है? चार तारीख को कौन मिलेगा यहां पर? संवत्सरी का अवसर है और सुबह खमत खामणा कहा और अगले दिन छुक-छुक करके रवाना हो जाने वाले हैं। ट्रेन कैसे रवाना होती है? छुक-छुक। वैसे ही छुक-छुककर सब रवाना हो जाने हैं। परसों तो यहां पर आकर कहेंगे कि बापजी! मांगलिक। बापजी! मांगलिक और तरसों देखेंगे तो यहां पर कोई नहीं है। बस आए और हां सा, हां सा, खमत खामणा, खमत खामणा! कुछ कहा है, सुना है तो और अगले पर्युषण में... (प्रतिध्वनि– मिलेंगे) मिलेंगे? पक्की बात है ना? जैसे ये अपने-अपने रास्ते लेते हैं वैसे ही यहां पर लोग आए हैं। मिल गए हैं। कोई माता-पिता बन गया। किसी से प्रेम हो गया। किसी से दुश्मनी हो जाती है। कोई भाई बन गया। कोई हमारा रागी-रागद्वेषी बन गया। कोई वैरी बन गया। जो आज हमारा भाई है वह कल हमारा दुश्मन था। कभी हमारे बचपन का साथी, जिगरी दोस्त था। वह कभी कट्टर दुश्मन रहा होगा। शत्रु रहा होगा। किसको कहूं अपना? कौन है मेरा?

बंधुओ! इस तत्त्व-ज्ञान को अपने आप में जगाओ और अपनी सारी उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाओ। कल महापर्व संवत्सरी आ रहा है। पुरानी बातों को सपमपाट कर लें। राग-द्वेष, कलह को छोड़ हम ब्राह्मण के रूप में अपने आप को उपस्थित करेंगे। ब्रह्मण/माहण जो किसी का भी हनन नहीं करता। किसी को भी अपने भीतर नहीं रखेंगे। मेरे मन में किसी के भी प्रति राग-द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिए। मैं किसी को अपनी तरफ से कष्ट नहीं पहुंचाऊंगा। किसी को कष्ट पहुंचे ऐसा काम नहीं करोगे, इरादतन। किसी को तकलीफ नहीं हो ऐसा आप विचार करेंगे तो हम अपने जीवन को धन्य बनाएंगे। अपने जीवन को शांत बनाएंगे। हम सुख में जीएंगे, समाधि में जीएंगे और हमारे पास जो भी है, उसी सुख का वितरण करते हुए धन्य बनेंगे। संयम (दीक्षा प्रवाह नहीं पराक्रम है यह) का ध्यान रखना।

02 सितम्बर, 2019
(पर्युषण पर्व का छठा दिन)

14

सजे आत्म सुसाज

प्रभु मेरा हृदय गुण सिंधु अपरम्पार हो जाए,
सफल सब ओर से पावन, मनुज अवतार हो जाए।

प्रभु! मेरा हृदय गुण सिंधु अपरम्पार हो जाए। सिंधु का अर्थ होता है, समुद्र। मेरा हृदय गुणों का समुद्र बन जाए। उसमें ईर्ष्या और द्वेष का ढूंढ़ने पर भी कोई एक भी चिह्न नजर नहीं आये। दो बातें इसमें कही गई हैं। एक बात है, ये हृदय गुण सिंधु बन जाए और दूसरा कहा कि ईर्ष्या का, द्वेष का चिह्न भी न मिले। बहुत मायने रखती है बात। यदि ईर्ष्या हमारे मन में आएगी। यदि द्वेष हमारे मन में घुसेगा तो वह हमारे हृदय को गुण सिंधुमय नहीं बनने देगा। ईर्ष्या वह घुन है कि जिस अन्न में लग जाए उस अन्न को खोखला कर दे। ईर्ष्या वह दीमक है, जिस लकड़ी में लग जाए वह लकड़ी खोखली हो जाएगी। कमजोर हो जाएगी। वैसे ही ईर्ष्या जिस हृदय में प्रवेश कर जाती है उसका हृदय गुण सिंधु नहीं बन पाएगा। अपितु यों कह दूं कि उसके भीतर रहे हुए गुण भी जलकर भस्म हो जाएंगे। वह खोखला हो जाएगा। राख बन जाएगा। इसलिए कहा है कि ईर्ष्या का, द्वेष का चिह्न भी मेरे जीवन में नहीं आना चाहिए। मेरे हृदय में नहीं होना चाहिए।

'ईर्ष्या बड़ी भयंकर आग है जिसका ताप नहीं लगता। किंतु जीवन को संतापित कर देती है।' जैसे अग्नि तो तपाती भी है और अग्नि जला भी देती है। वैसे ही ईर्ष्या भी अपने गुणों को जलाती है और हृदय को संतापित कर देती है। वह संताप देने वाली होती है। ऐसी ईर्ष्या हमारे जीवन में नहीं आये। किंतु यह बड़ा कठिन काम है। किंतु मैं यह कहूंगा कि ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं हैं। यदि तत्त्व को समझ लें, तत्त्व हृदयंगम हो जाए तो कहीं से कहीं तक कोई कठिनाई नहीं होगी। जब तक हमारी दृष्टि बाह्य बनी रहती है। बाहर की

ओर रहती है तब तक व्यक्ति ईर्ष्या को नहीं छोड़ पाएगा क्योंकि दूसरे की बढ़ती देखकर वह चुप नहीं रह पाएगा। इसके पास में इतना धन कैसे बढ़ गया? लोग इसको इतना क्यों पूछ रहे हैं? लोगों में इसकी इतनी प्रतिष्ठा क्यों हो रही है? लोग इसको ज्यादा आदर-सम्मान क्यों दे रहे हैं? इस कारण से वह ईर्ष्यालु बन जाता है। वह ईर्ष्या उससे अकृत्य कराने वाली बन जाती है। बड़ी-बड़ी घातक क्रियाएं उस ईर्ष्या से हो जाती हैं।

कहते हैं कि विश्वामित्र बहुत बड़े ऋषि थे। बहुत बड़े तपस्वी थे। घोर तपस्या करने वाले थे। किंतु उनको ऋषि कहा जाता था– ब्रह्म-ऋषि नहीं। ब्रह्म-ऋषि बनने के लिए उनका मन बेताब हो गया और वे सोचने लगे कि जब तक वशिष्ठ ऋषि मुझे ब्रह्म-ऋषि का विरुद नहीं देंगे तब तक मुझे कोई ब्रह्म-ऋषि के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। किंतु वशिष्ठ ऋषि, उन्हें ऋषि कहते हैं। महात्मा कहते हैं। किंतु ब्रह्म-ऋषि नहीं कह रहे हैं। विश्वामित्र सोचने लगे कि जब तक आदमी अपनी शक्ति नहीं दिखाता है तब तक लोग उसके महत्त्व का आकलन नहीं करते हैं। और उन्होंने दूसरा रास्ता अपना लिया। एक रात्रि कटार लेकर वे वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुंच जाते हैं। उनके मन में संकल्प था, विचार था कि आज मैं वशिष्ठ ऋषि को जिंदा नहीं रहने दूंगा। इधर धवल चांदनी चंद्रमा की। उस चांदनी में वशिष्ठ ऋषि अपने शिष्यों को ध्यान करा रहे थे और प्रसंगोपात्त शिक्षा दे रहे थे। उन्होंने अपने शिष्यों से विश्वामित्र के संबंध में कहा कि वे बहुत बड़े तपस्वी हैं। बहुत बड़े ऋषि हैं। इस प्रकार का कथन विश्वामित्र ने सुना और विचार करने लगे कि मैं जिन वशिष्ठ ऋषि को मारने के लिए उद्यत हूं वे वशिष्ठ ऋषि मेरी भी प्रशंसा करने वाले हैं। अपने शिष्यों के सामने मेरी प्रशंसा! और मेरे गुणों, मेरी तपस्या का वर्णन करते हुए शिक्षा दे रहे हैं। मन में पश्चात्ताप का भाव जगा कि धिक्कार है मेरी आत्मा को। मैं ऋषि बना, तपस्या की और ब्रह्म-ऋषि की भूख मेरे से हिंसा करवाने की स्थिति तक मुझे ले आयी!

'पद प्रतिष्ठा की चाह जब आदमी के भीतर पैदा होती है वह उसको निरंकुश बना देती है।' वह क्या करती है? क्या होना चाहिए क्या नहीं होना चाहिए, ये उसके लिए बड़ी भारी विडंबना हो जाती है। राजनीति के क्षेत्र में आए दिन ये दृश्य देखे जा सकते हैं। राजनीति में तो ऐसा कहा जा सकता है क्योंकि राजनीति का अर्थ यह है कि जिसके राज-रहस्य को, गुर को कोई समझ नहीं सके। वहां पर संभव है ऐसी घटनाएं घट जाएं। किंतु धर्म-संघों,

धर्म क्षेत्र में यदि पद-प्रतिष्ठा की चाह और ईर्ष्या प्रवेश कर जाए तो उस धर्म-संघ में हानि के बजाय लाभ होने वाला नहीं है। 'अनायकाः विनश्यन्ति, नश्यन्ति बहुनायकाः', जिस संघ में/संप्रदाय में कोई नायक नहीं होता है वह बिखर जाता है। और जहां बहुत नायक होते हैं वह भी बिखर जाता है। उसके सदस्य कोई किधर कोई किधर। आज हमारे जैन समाज की दुर्दशा क्यों हो रही है?

जिन धर्म के टुकड़े हजार हुए,
कोई इधर गिरा, कोई उधर गिरा। जिन धर्म...

हम बोल सकते हैं कि हमें हजार टुकड़े कहीं नजर नहीं आ रहे हैं। समुदाय हजार नहीं हुई होगी किंतु हमारे श्रावक और साधु मिलकर जो हजारों, लाखों या जो भी हैं– उनमें विचारधारा की दृष्टि से विचार करें तो कितने भिन्न-भिन्न मत-मतांतर हो गए? 'एक मुखिया, सौ सुखिया' एक के निर्णय से चले तो लोग सुखी रहते हैं। और यदि अनेक नायक हो जाते हैं तो सबकी अपनी ढपली होगी, अलग-अलग राग होगी। अलग-अलग संघ होगा। नेतृत्व अलग-अलग होगा। सब अलग-अलग रहेंगे तो वहां पर वैषम्य खड़े हुए बिना नहीं रहेगा और विषमता में धर्म की सही आराधना नहीं हो सकती।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने बहुत गहरी निगाह से इसका अनुभव किया और सन् 1984 में उन्होंने संघ में एक सूत्रपात किया कि अब जो भी दीक्षाएं होंगी वे एक आचार्य के नेतृत्व में उनके नेश्राय में होंगी। अलग से कोई शिष्य नहीं बना सकेगा। उस समय साध्वियां अलग थीं। वे आचार्य के नेश्राय में नहीं थीं। उनका नेतृत्व आचार्य के हाथों में नहीं होता था। जो प्रवर्तिनी हुआ करती थी वे ही उन साध्वियों की देख-रेख एवं सार-संभाल किया करती थी। आचार्य श्री ने सन् 1990 के सम्मेलन में संघ सदस्यता की बात को रखा। इसके पीछे स्पष्ट आशय था कि साधु-साध्वियों के संयम की शुद्ध पालना हो। अन्यथा एक संत यदि चार शिष्य बनाता है तो दूसरा भी चाहेगा कि मेरे भी शिष्य बनें और मैं भी स्वतंत्र विचरण करूं। और श्री हजारीमलजी म.सा. जो हमारी इसी परंपरा में हुए, उन्होंने अपनी एक रचना में कहा है कि 'बाग में लगाई आग, चेला जी की चाह सूं' कि संयम बाग में व्यक्ति आग लगा लेता है चेले की चाह से। फिर वह किसी को भी चेला बनाने के लिए प्रयत्नशील होता है और कहेगा कि 'म्हारो चेलो

हो जा झट, बताऊं चित्तौड़गढ़'। वो पीछे चित्तौड़गढ़ वाले हँसने लगे कि चित्तौड़गढ़ की बात आ गई। आप लाओगे तो आ जाएगी बात। दर्शनीय स्थान है चित्तौड़गढ़। क्या कहा है कि मेरा चेला हो जा, मैं यहां घुमाऊंगा, वहां घुमाऊंगा। इधर ले जाऊंगा, उधर ले जाऊंगा।

ये लोभ और लालच देने शुरू हो जाएंगे और बहुत-से साधक चेलों को बनाने की फिराक में रहेंगे—योग्यता, अयोग्यता देखना कम हो जाएगा। शिष्य बढ़ाने का कार्य मुख्य हो जाएगा। आचार्य श्री नहीं चाहते थे कि साधु जीवन में इस प्रकार की धांधलेबाजी हो। इसलिए उन्होंने ये नियम चालू किया और सम्मेलन में भी उन्होंने यह बात रखी कि यदि स्थानकवासी समाज की उन्नति चाहते हैं तो एक ही आचार्य के नेतृत्व में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएं हों। एक धारणा, एक सामाचारी, एक स्पर्शना, एक प्ररूपण आदि सारी चीजों में एकरूपता आएगी नहीं तो कोई कुछ कहेगा, कोई कुछ कहेगा। कोई कुछ कहेगा। और ये विभिन्नता व्यक्ति को संशय में डालेगी। वह कंफ्यूज रहेगा और लोग बिखरते हुए चले जाएंगे। उस समय उसकी कितनी जरूरत होगी मैं नहीं कह सकता हूं किंतु भविष्य की दृष्टि से उन्होंने विचार किया और वह बात बहुत अरजेंट यानी अत्यंत आवश्यक लग रही है। वह नहीं होने से जैन धर्म की कितनी हानि हुई है? लोग किस प्रकार की मानसिकता को लेकर चल रहे हैं। जैन समुदाय एक छोटा संप्रदाय, उसकी हालत किस प्रकार से विकृत हुई है? बहुत से लोग धर्म स्थानकों में आते ही नहीं होंगे चाहे वे किसी भी समुदाय के हों। धर्म से लेने-देने की बात नहीं रह गई है क्या कारण है? हजारों कारण हो सकते हैं। उसमें एक कारण साधु-साध्वी भी हैं जिनकी चर्या, जिनकी सारी स्थितियां यदि आज देखें तो बड़ी विचारणीय स्थिति उपस्थित हो जाती है। पैसों के अकाउंट होना तो सामान्य बात है। बैंक बैलेंस भी चल रहे हैं कई साधु-साध्वियों के। साथ में साधुओं के पैसे ठिकाने लगाने के लिए श्रावक होते हैं। वे कहते हैं कि यह श्रावक मेरा अपना है। यह श्रावक मेरा निजी है। उसकी देखरख में उनकी करेंसी बढ़ती जा रही है। ब्याज बढ़ता जा रहा है। ऐसी धांधलियां चल रही हैं। ऐसी स्थितियां बन रही हैं और खुली आंखों से देखा गया कि एक भाई जो एक जगह दर्शन करने गया म.सा. के यहां, जहां पर साधु साबुन और सर्फ के नाम पर पांच, पचास, सौ, पांच सौ रुपये लिखवा रहे हैं और ले रहे हैं कि उन्हें सर्फ के लिए पैसे चाहिए। साबुन के लिए पैसे

चाहिए। विचार आता है कि क्या जैन मुनियों को गृहस्थों के घर से ये चीजें मिलनी बंद हो गई हैं?

देवकी महारानी को उस जमाने में चिंता हो रही थी कि साधु उसी के घर पर ही क्यों आ रहे हैं? क्या पूरी द्वारिका नगरी से साधुओं को भिक्षा मिलना बंद हो गई है? देवकी इस बात के लिए चिंतित हो गई थी कि साधुओं को भिक्षा नहीं मिल रही है। आज साधु पैसे मांग रहे हैं तो बड़ी समस्या खड़ी होती है। क्या इन साधु और साध्वियों को साबुन और सर्फ जैन घरों में नहीं मिल पा रहा है? नाम होता है साबुन और सर्फ का तो! बाकी पैसे, बैंक-बैलेंस में या भक्तों के यहां पर इकट्ठे हो जाते हैं। विचार करो कि उसका कल को स्वर्गवास हो गया तो फिर उसका मालिक कौन बनेगा? कौन बनेगा मालिक? एक कहावत आती है कि 'कीड़ी संचे तीतर खाए, पापी का धन पर ले जाए' यानी कीड़ी थोड़ा-थोड़ा भोजन को संचित करती है और उसका भोजन तीतर खा जाता है। उसी प्रकार 'पापी का धन पर ले जाता है' यानी पापी के द्वारा धन का संग्रह किया हुआ होता है और उसका उपभोग कोई पराया ही करता है। यानी दूसरा ही उसको ले जाता है। वह न तो स्वयं भोग पाता है और न ही स्वयं स्वाद ले पाता है। वह उस धन का संग्रह करके सुखी होता है। अपने मन में खुशी मनाता है कि मेरा इतना पैसा, मेरा इतना बैंक-बैलेंस, मेरा इतना सारा धन। संग्रह करके अपने मन में ही खुश हो सकते हैं। किंतु अपने जीवन में कभी खुश नहीं हो पाते हैं। ये बातें सिर्फ आज की ही नहीं है। ये आग आज की नहीं है। ये लोभ और लालच यदि मैं कहूं तो देखने में 80 वर्षों पहले भी ये घटनाएं घटती थीं।

पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. उस समय वैराग्य अवस्था में थे। उस समय भी साधुओं में यह चमत्कार था। अब इसे चमत्कार कहूं या क्या कहूं? यह बीमारी ही मान लो। उस समय यह बीमारी देखी गई और पैसों को लेकर श्रावक और साधु के बीच में झगड़ा हो गया था। ब्याज को लेकर झगड़ा हो गया था कि इतना ब्याज होता है और तुमने ब्याज इतना ही कैसे लगाया? ऐसा कुछ झगड़ा हुआ था और यह बात कानों से सुनी। कैसी-कैसी स्थितियां बन जाती हैं। पैसा तो है ही। इसके अलावा बोलने के लिए माइक; और तो और चलाने के लिए लैपटाप और मोबाइल भी होता है। किसी गृहस्थ के पास एक मोबाइल मिलेगा या दो मोबाइल मिलेंगे। किंतु साधुओं के पास कितने-कितने मोबाइल मिल जाएंगे? एक बात याद आ

रही है मुझे। एक साध्वी जी मोबाइल की दुकान पर आदमी को भेजती है कि तुम मोबाइल लेकर आओ। वह दुकान किसी जैन भाई की थी। उसने वहां पर जाकर बोला कि म.सा. मोबाइल मंगवा रही हैं। बेचारे दुकानदार ने एक मोबाइल दे दिया और वह आदमी लेकर चला गया। साध्वी जी को ले जाकर मोबाइल दिया तो उनको वह मोबाइल पसंद नहीं आया। उसने कहा यह नहीं चाहिए दूसरा मोबाइल लेकर आओ। वह वापस दुकानदार के पास गया और दूसरा मोबाइल लेकर आया। साध्वी जी को दूसरा मोबाइल भी पसंद नहीं आया। आजकल आते हैं ना अलग-अलग मोबाइल, बढ़िया वाले जिसमें बहुत सारे सिस्टम होते हैं (सभा से– एप्पल...) मुझे नहीं पता कि कैसे-कैसे होते हैं मोबाइल!

साध्वी जी को दूसरा मोबाइल भी पसंद नहीं आया। फिर वापस आदमी को भेजा कि वो बढ़िया वाला लेकर आओ। उस आदमी ने जाकर वह मोबाइल मांगा। दुकानदार ने साध्वी जी के पास जाकर कहा कि म.सा.! मैं क्षमा चाहता हूं। मैं छोटा आदमी हूं। इतना कीमती मोबाइल बहराने की मेरी हैसियत नहीं है। साध्वी जी ने कहा कि अरे! बहराने के लिए कौन बोल रहा है तुमको? आलमारी थी उसे दिखाते हुए कहा, खोलो और जितने रुपये चाहिए ले जाओ। उस आलमारी में नोटों की गड्डियां भरी पड़ी हुई थीं और बोले कि मुझे तो बस वो वाला मोबाइल चाहिए। रुपये तुम जितने चाहो उतने ले लो। मुझे तो बस वैसा फोन चाहिए (सभा में किसी ने कुछ इशारा किया) अरे! क्या कह रहे हो आप? क्या हाथ से इशारा कर रहे हो? आप तो नेपाल के श्रावक हो। अभी आप हाथों से कुछ इशारे कर रहे हो। आप तो अभी नेपाल में रहते हो, आपको पता नहीं है कि यहां भारत में क्या-क्या हो रहा है? आपके नेपाल में इतने साधु-साध्वियां मिलते ही नहीं हैं तो आपको देखने के लिए मिला नहीं होगा। इसलिए आप आश्चर्य कर रहे हो। भारत में ऐसा हो रहा है। ये सारे खेल पैसे के हैं। बहुत से लोग इन कारणों से परेशान हो गए हैं। कई लोग, अपने क्षेत्र में ऐसे साधु या साध्वी आ जाएं तो विचार करने लग जाते हैं कि क्या करें? साधु कहते हैं कि इस बार आपके यहां चातुर्मास करने का विचार है। लोग कहते हैं कि बापजी! चातुर्मास करवा देते किंतु लोगों के विचार एक नहीं मिल रहे हैं। लोगों के विचार नहीं बन पा रहे हैं। एकमत नहीं हो पा रहे हैं। कुल मिलाकर यह तो चातुर्मास नहीं कराने का बहाना होता है। मुख्य कारण क्या है? अगर ऐसे संत यहां चातुर्मास करेंगे तो भारी विडंबना

होगी। ये सारी बातें क्यों पैदा हो जाती हैं? ये सारी बीमारी पैदा हुई क्यों? क्योंकि एक सशक्त नेतृत्व नहीं है। जहां पर एक सशक्त नेतृत्व नहीं होगा वहां-वहां पर ये सारी बातें होंगी। वहां ये सारी स्थितियां चलती रहेंगी।

बंधुओ! यह आज क्या प्रसंग आ गया? क्या बातें चल रही हैं? हम संवत्सरी पर्व की आराधना करने के लिए प्रस्तुत हैं। हमने पूर्व वक्ताओं से बहुत सारी बातें सुनी हैं। बहुत सारे विचार हमारे सामने आएं हैं और कई वर्षों से हम संवत्सरी पर्व की आराधना करते आ रहे हैं। 'आता, नाता जो जुड़वाता' यह संवत्सरी पर्व एक बार आता है। 'आता, नाता वो मिलवाता' जो रिलेशन आपस में टूट गए हैं। जिन रिलेशनों के बीच में दीवार खड़ी हो गई। जिन रिलेशनों के बीच में डिवाइडर आ गया है– यह पर्व ऐसा है कि यदि हम अपने दिल को खोल सकते हैं तो वापस पूरे रिश्ते-नाते जुड़े सकते हैं। टूटी हुई कड़ियां जुड़ सकती हैं। संध सकती हैं। रिश्तों को एक आकार मिल सकता है। इसलिए हमारा मन बनना चाहिए। हम तनाव में नहीं रहकर शांति से जीएंगे। तनाव में जीना अच्छा लगता है या तनाव को छोड़कर जीना अच्छा लगता है? बोलो, आपको कैसे जीना अच्छा लगता है? तनाव में जीना अच्छा लगता है या तनाव के बिना जीना अच्छा लगता है? कुछ लोग होते हैं जो तनाव में ही जीते हैं। कोई-कोई व्यक्ति जिसके बी.पी. 190 से 120 रहता है। ऊपर का बी.पी. 190 और नीचे का बी.पी. 120 रहने लग गया है। डॉक्टर के पास जाते हैं तो डॉक्टर कहता है कि आपका बी.पी. नॉर्मल नहीं है। किंतु वह व्यक्ति कहता है कि मेरे को तो कुछ लगता ही नहीं है। मेरे शरीर में कुछ असर ही नहीं है। डॉक्टर दवाई देता है तो दवाई से उन्हें और परेशानी हो जाती है। वे लोग बहुत परेशान हो जाते हैं क्योंकि उनका बी.पी. 120 से 190 में रहने का अभ्यास हो गया। वैसे ही कई लोग तनाव में जीने के अभ्यासी हो जाते हैं। उनको लगता ही नहीं है कि ये तनाव है। वे तनाव को देख नहीं पाते हैं। वे तनाव को जान नहीं पाते हैं। तनाव की तरह चाहे बी.पी. का असर मालूम नहीं पड़े क्योंकि उसने धीरे-धीरे सहनशक्ति को, क्षमता को, शरीर को वैसा तैयार कर लिया है। वह सहनशक्ति तैयार हो गई है। किंतु डॉक्टर ऐसा बताते हैं कि उसके दुष्परिणाम कभी भी आ सकते हैं। व्यक्ति समझ नहीं रहा है। वह कहता है कि मेरे को बी.पी. का कुछ भी अनुभव नहीं होता है। मुझे कुछ अहसास होता ही नहीं है। वैसे ही तनाव में जीने पर उसके दुष्परिणाम से भयंकर कर्मों का बंध होता है। आदमी अनुभव

करे या न करे, दिमाग में खट-खट चालू ही रहती हैं। दिमाग शांत नहीं रहता है। बड़ी अशांति की अनुभूति होती है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. ने अपने उपदेशों से ऐसे बहुत से लोगों को, जिनके दिलों के टुकड़े-टुकड़े हो चुके थे उनको सांधने का, जोड़ने का प्रयत्न किया है। इस सभा में भी मेरे खयाल से बीकानेर के मूलचंद जी डागा और सुरेंद्र जी सेठिया मौजूद होंगे। एक टाइम में वे बहुत गहरे दोस्त रहे और किसी बात को लेकर, किसी कारणवश विवाद की स्थिति बन गई। 6 महीने, साल, दो साल तनाव की स्थितियां बनी रही कि मैं किसी भी हालत में क्षमा करने वाला नहीं हूं। मैं किसी भी हालत में माफ करने वाला नहीं हूं। और संयोग से पंकज जी शाह (पिपलिया कलां) की प्रेरणा से दोनों की मित्रता वापस बनी और आज आप उनसे पूछ सकते हैं कि तनाव में आनन्द ज्यादा आया या फिर मित्रता में आनन्द ज्यादा मिला? तनाव में आनन्द ज्यादा मिला या फिर एकजुटता में आनन्द ज्यादा मिला?

हम सोच सकते हैं कि तनाव से किस प्रकार हम सामने वाले के मित्र से दुश्मन बन जाते हैं। हमारे भीतर दुश्मनी पैदा हो जाती है। और दुश्मनी पैदा होने से भले ही दूसरे का नुकसान हो या न हो किंतु हमारे कर्मों का बंध अवश्य होगा। हमारी पवित्रता में कमी आ जाएगी। हमारी मानसिकता खराब होगी। हमारा मन मलीन बनेगा। ऐसी स्थिति क्यों पैदा हो? इसलिए यह संवत्सरी पर्व का दिन ऐसा प्रसंग है जिसमें हमें अपने भीतर की सारी बुराइयों को समाप्त कर देना चाहिए। जैसे कब्रिस्तान में लाश को सुलाया जाता है। कब्र में दफनाया जाता है वैसे ही लाश के समान हमें अपनी दुश्मनी को, सारे तनावों को, सारे दुर्गुणों को, सारी बीमारियों को/जो भी आपसी तनाव की जड़ है, आज यदि उसे दफनाने की हम कोशिश करेंगे तो अपने जीवन को सुखी रूप से जीने के अभ्यासी बन सकते हैं। ये पर्व संवत्सरी हमारी आत्मा को पवित्र करने वाला है–

पर्व पर्युषण राज, आपका स्वागत है।
सजे आत्म सुसाज, आपका स्वागत है।।
पर्व पर्युषण जब भी आते,
प्रेम शांति संदेश सुनाते,
गले मिले सब आज, आपका स्वागत है, पर्व पर्युषण...।

आओ हम सब मिलकर गाएं,
'राम' प्रेम की गंग बहाएं,
आए पर्व सिरताज, आपका स्वागत है, पर्व पर्युषण...।

पर्व पर्युषण राज/सरताज और पर्युषणों का भी ताज संवत्सरी पर्व। इस में भी हम अपने पापों को यदि नहीं धो सके, वैर-वैमनस्य को नहीं धो सके तो हमारे सम्यक्त्व सलिल/सरिता रूपी भावों का प्रवाह कैसे सम्यक् बन पाएगा? हम विचार करें। आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. जिन्होंने हमारे पर बड़ा उपकार किया है। उन्होंने एक नक्शा बनाया और गणेशाचार्य ने उसकी नींव रखी कि एक आचार्य के नेश्राय में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रहें। आचार्य देव श्री नानालाल जी म.सा. ने जो भवन खड़ा किया जिसमें आज हम सुख की सांस ले रहे हैं। जिसमें सुख का आनन्द अनुभव कर रहे हैं। उन महापुरुषों का जितना गुणानुवाद किया जाए जितना उपकार माना जाए वह कम होगा। हम सब छद्मस्थ हैं और छद्मस्थों से कहीं-न-कहीं त्रुटि हो जाती है। कभी जान-बूझकर होती है तो कभी हम नहीं जानते हैं। किंतु अनजान में भी वैसे कुछ प्रसंग बन जाते हैं जिसको सामने वाला व्यक्ति दूसरे रूप में ले लेता है। मेरा भाव वैसा नहीं है। किंतु सामने वाले ने बात को वैसा समझ लिया और वह समझ जैसे ही बदली कि वहां तनाव की स्थिति बन गई।

यदि हम चाहते हैं कि अच्छाइयां हमारे जीवन में बढ़े, हमारे गुणों का संवर्धन हो तो इसके लिए आज हमें पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए कि पुरानी जितनी भी बातों के पोटले हैं, किसी की गलती है, किसी की त्रुटि है मेरी गलतियां भी हो सकती हैं। दूसरे की पांच गलतियां हैं, मेरी हजार गलतियां हैं या मेरी पांच गलतियां हैं और दूसरे की हजार गलतियां हो सकती हैं। उन सारी गलतियों को दफना दें। फिर कभी हमारे मुंह में, दिमाग में वह बात नहीं आनी चाहिए। तब तो हम शांति प्राप्त कर सकते हैं। तब तो हम समाधि प्राप्त कर सकते हैं। अन्यथा औपचारिक रूप से यह संवत्सरी मनाएंगे कि एक साल, बारह महीने, 365 दिन में किसी प्रकार के अपराध हुए हैं तो 'मिच्छा मि दुक्कडं'। यह खमत खामणा हम करते ही रहेंगे पर खड़े वहीं के वहीं ही रहेंगे।

गुरुदेव फरमाया करते थे कि एक व्यक्ति पंचों की जाजम पर शिकायत लेकर पहुंचा। उसने पंचों को अपनी शिकायत बताई कि साहब, मेरे पड़ोसी ने अनधिकार परनाला निकाला है। वहां परनाला से पानी मेरे घर की दीवार

के पास गिरता है। मेरी दीवार के पास लगातार पानी गिरता है। यदि इसी तरह पानी गिरता रहा तो एक दिन मेरे घर की दीवार ढह जाएगी। मेरी दीवार टूट जाएगी। मैंने उसको कितनी ही बार समझाने का प्रयत्न किया। किंतु वह बोल रहा है कि परनाला तो यहीं पर रहेगा। इसलिए मुझे आज आप पंचों की शरण में आना पड़ा है। पंचों ने दोनों तरफ की बातों को सुना और फिर फैसला यह किया कि परनाला को बदल दिया जाए ताकि शांति बनी रहे। दोनों पड़ोसी हैं। और मिल-जुलकर रहना है तो दोनों के बीच के वैमनस्य को समाप्त करना पड़ेगा। इसके लिए आपको परनाला दूसरी तरफ करना पड़ेगा। पड़ोसी है तो पड़ोसी धर्म का निर्वाह हो जाए। वह भाई जिसने परनाला लगवाया था वह कहता है कि पंचों का निर्णय सिर माथे पर है किंतु परनाला तो वहीं पर पड़ेगा। वह कहता है कि पंच जो कहते हैं वह मंजूर है। पंचों का निर्णय सिर माथे है। किंतु परनाला वहीं पड़ेगा। क्या हुआ? क्या हो गया?

संवत्सरी पर्व पर मुंह से केवल खमत खामणा कहेंगे तो ऊपर से तो बात हो जाएगी। किंतु वे बातों की गांठें हैं वे तो नहीं खुलेंगी। क्या होगा? नदी बह रही है और डैम बांध दिया गया। पानी रुकेगा या बहेगा? (प्रत्युत्तर– रुकेगा) और जहां पर पानी 365 दिन बना रहेगा वह जगह बंजर बनेगी या फिर उपजाऊ बनेगी? वह जगह बंजर बन जाएगी। निरंतर पानी रहने से वह जमीन बंजर हो जाएगी। वैसे ही निरंतर हमारे भीतर प्रद्वेष के भाव बने रहे और ये गांठें बनी रहीं तो मैं नहीं कह सकता कि क्या-क्या बीमारियां हमारे शरीर में व्याप्त हो जाएंगी? और ऐसी स्थिति में सुख और शांति की हमें सपने में भी आशा नहीं करनी चाहिए। जब तक यह छूटेगा नहीं तब तक जीवन में शांति का संचार होने वाला नहीं है। डैम में यदि पानी ज्यादा इकट्ठा हो गया तो वह कितने को डुबोने वाला हो जाएगा? ऐसे समय में डैम के दरवाजे नहीं खोले गये तो कितने ही गांव डूब जाएंगे। कितने ही लोग डूब जाएंगे और कितने ही गांव जलमग्न हो जाएंगे। वैसे ही हमारे दरवाजे बंद रहे, भीतर ही भीतर दोष बढ़ते चले गए, भीतर ही भीतर ईर्ष्या बढ़ती चली गई तो पता नहीं कितने लोगों को जलाएगी। कितने लोग तबाह हो जाएंगे। शांति और सुख की आशा ही बेकार है।

दरवाजे खोल दें। आज संवत्सरी पर्व पर भीतर के सारे विकारों को बाहर निकाल दें। ऐसी हिम्मत यदि हम कर पाएंगे तो निश्चित रूप से हमारी सम्यक् आराधना हो पाएगी। हम तीर्थंकर देवों की आज्ञा के आराधक बनेंगे।

'जो अवसमइ तस्स होई आराहणा' वस्तुतः, जो उपशम करता है उसकी आराधना होती है। जो उपशम नहीं करता है उसकी आराधना नहीं हो पाएगी। मैं बोल रहा हूं, मैं भी दोषों का पुतला हूं। कई बार हूं। यह यह मनोगत भावों में नहीं है। जानकारी में नहीं है। किंतु अनजान अवस्था में भी कभी किसी प्रकार की अरिहंत भगवान और सिद्ध भगवान् की किसी भी कारण से यदि मैंने अवज्ञा की हो या कोई बात बन गई हो तो मैं क्षमा चाहता हूं। उन अरिहंत और सिद्ध भगवंतों की प्रत्यक्ष उपस्थिति तो नहीं है किंतु परोक्ष है। वे हमारे से प्रत्यक्ष नहीं है किंतु हम उनके प्रत्यक्ष हैं। मैं उनसे भी निवेदन करूंगा कि मेरे द्वारा हुई सारी अवज्ञा क्षमा करें। हमें पता है कि अरिहंत भगवान क्षमाशील हैं और वे हमें अवश्य ही क्षमा करते हैं। हमारे जीवन में सुधार आए ऐसा हम लक्ष्य रखते हैं।

आचार्य सुधर्मा स्वामी से लेकर जो आचार्य परम्परा रही उस आचार्य परम्परा से हमें तीर्थंकर देवों की वाणी आज तक प्राप्त होती रही है। इससे हम साधना की दिशा में गतिशील होते रहे हैं। वह आगम वाणी हमें आचार्य परंपरा से मिलती रही है। उन समग्र आचार्यों से यदि उनकी धारणा, प्ररूपणा, स्पर्शना हम नहीं समझ पाए हों और उससे कुछ विपरीत हमारा कथन हो गया हो, हमारी श्रद्धा में कोई अंतर आ गया हो, हम समझ नहीं पाए हों तो उन सब से क्षमा याचना करता हूं। आचार्य श्री हुक्मीचंदजी म.सा. जिन्होंने अनेक कठिनाइयों को झेला। मान-सम्मान को पीठ दी और अपमान-तिरस्कार के घूंट पीये किंतु शांत रहे और समाधि में रहे। उनका तो एक ही लक्ष्य था आत्मकल्याण करना और जिनकी परम्परा को हम अभी उपाध्याय श्री के मुखारविन्द से सुन गए हैं मैं वापस उसको दोहराना नहीं चाहता हूं। उन समग्र आचार्यों से क्षमा याचना चाहूंगा और पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. जिनके कई अरमान रहे होंगे। जिनकी कई आकांक्षाएं रही होंगी। जिनकी कई भावनाएं रही होंगी। उन्होंने जो मुझे जिम्मेदारी सौंपी थी मैं उसका कितना निर्वाह कर पाया। क्या कर पाया, क्या नहीं कर पाया? एक छोटी-सी कड़ी के माध्यम से मैं कहना चाहूंगा।

नाना तेरे गुण गुलशन में खिल रहे पुष्प महान,
गौरव गाता सकल जहान।
ज्ञान-क्रिया के शुभ संगम से पूर्ण हुए अरमान,
जन-जन करता तव यश गान॥

आचार्य देवों के जो अरमान रहे हों, मैं जितना समझ पाया, जो मेरी समझ, मेरी बुद्धि में मैं ला पाया उसके अनुकूल व्यवहार करने का लक्ष्य रहा है। 'ज्ञान क्रिया का संगम' जो इस संप्रदाय की मुख्य पहचान रही, उस दिशा में वैसा ही प्रयत्न रहा– संयम की शुद्ध पालना और सम्यक् आराधना हेतु साधु जीवन को स्वीकार करना। साधु जीवन स्वीकार करना आसान है। किंतु साधु जीवन स्वीकार करने के बाद उसकी पालना करना जटिल होता है। जोश-जोश में तपस्या कर लेते हैं किंतु पारणा जटिल होता है। वैसे ही कोई साधु जीवन भावुकता से ले लेता है किंतु पालना करने के समय फिर इधर-उधर बगलें झांकने लग जाता है। आचार्य पूज्य श्री जवाहर लाल जी म.सा., आचार्य पूज्य श्री गणेशलालजी म.सा. और आचार्य पूज्य नानेश ने जो सपना संजोया था, उनके बताए पदचिह्नों पर चलने का प्रयत्न किया और आज जन समुदाय अनुभव कर रहा है। इसलिए जहां तक विश्वास है कि हम आचार्य श्री के विचारों से अलग नहीं बढ़े होंगे। कदाचित् उनके अरमान के या उनकी विचारधारा से मेरा कोई कदम आगे-पीछे बढ़ा हो तो, मैं उन सभी आचार्य भगवन्तों के चरणों में क्षमा याचना करना चाहूंगा।

अभी पूज्य महासती श्री मंजुलाश्रीजी म.सा. बोल ही गए कि 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता है।' साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चारों तीर्थ एक आज्ञा, एक आदेश और एक स्वर में स्वर मिलाकर तैयार हैं। महासतीजी ने अभी बताया था कि राजा ने कहा कि जो पलंग पर सोयेगा उसे मंत्री बना दिया जाएगा। किंतु रातभर पांच-सौ व्यक्ति लड़ते रहे तो आपस में लड़ते ही रह गए। हो सकता है ऐसा भी, क्योंकि जब मोठ और मूंग आता है तो उसमें कोरडू मिल सकता है। एक-दो बोरे मूंग आए हैं तो कोरडू मिल सकता है। वह तो हो सकता है। यह साधुमार्गी संघ श्रद्धा की दृष्टि से एक आज्ञा, एक निर्देश के अनुसार चलने वाला है। किंतु एक बात कहूंगा कि उत्क्रांति को क्यों नहीं स्वीकार कर रहे हैं? होना चाहिए। हो सकता है वह उनकी समझ में नहीं आया। या यों कहें कि कर्मों का वैसा क्षयोपशम नहीं बन पाया। सच्चे मायने में विचार करें तो भगवान महावीर ने देशना दी उस समय कितने व्यक्ति साधु बन गए? कितने श्रावक बन गए? सारे लोग साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका नहीं बन गए। सारे लोग 12 व्रती श्रावक नहीं बन पाए। जिसका सामर्थ्य होगा वे स्वीकार करेंगे और हमारा भी लक्ष्य बने। हम समझें। क्या कठिनाई आ रही है, क्या तकलीफ हो रही है? किसी को जानकारी करना

है उत्क्रांति के क्षेत्र में कि उत्क्रांति के विषय में हमको यह कठिनाई आ रही है। यह समस्या खड़ी हो रही है। पांच सितारा होटल आदि जो भी तो आप संजय मुनि जी से संपर्क कर सकते हैं।

यदि सचमुच ही हकीकत में हम स्वीकार करना चाहें तो संतों का समय लें। यदि स्वीकार नहीं ही करना है तो संतों का समय लगाने में कोई मतलब नहीं है (सभा– तहत्ति) अभी आवाज कहां से उठी? दक्षिण के लोग कहते हैं, दक्षिण में धर्म रहेगा। भद्रबाहु स्वामी ने कहा कि दक्षिण में उठी हुई धर्म की लहर उत्तर, पूर्व और पश्चिम में फैलाएंगे। ये दक्षिण वालों की जिम्मेदारी है। दक्षिण वाले ज्यादा आवाज लगाते हैं तो उनको ही यह कहना है। आप सोच लेना कि क्या करना है आपको? मेरा कोई रोल नहीं है। अभी महासती जी ने कहा था कि हर बात मुझे क्यों बोलनी पड़े? इस चतुर्विध संघ में जहां तक विचार करता हूं मैं, तो बहुत कम मेरा पुरुषार्थ रहा है। मेरा ज्यादा परिश्रम नहीं है। आप देख ही रहे होंगे कि दिन में एक मांगलिक प्रार्थना में बोलता हूं और एक मांगलिक व्याख्यान सुनाने के समय बोल देता हूं। दोपहर में वाचनी के समय कभी-कभार बोल देता हूं और कभी रात्रि में हो सके तो प्रश्नोत्तरी में भाग ले लेता हूं। सारे साधु स्वयं में सक्षम हैं। मुझे कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। कुछ भी मुझे बोलने या करने की आवश्यकता ही नहीं रहती क्योंकि सभी साधु और साध्वियां सारे कार्यों को करने में सक्षम हैं। ये सारे अपने काम में निपुणता रखते हैं। सभी गुणवान हैं। मैं क्या निर्देश दूं? इसलिए एक कड़ी अभी गाई कि 'नाना तेरे गुण गुलशन में खिल रहे पुष्प महान्'। ये एक से एक बढ़कर हैं।

ये पुष्प खिल रहे हैं और सारे पुष्पों की महक, सुगंध है। इस बगीचे की ये सुगंध पूरे जैन समाज को सुगंधित कर रही है। यहां के श्रावक और श्राविकाएं भी आज्ञाकारी, निष्ठावान व कर्मठ हैं। एक ही इशारे में और एक इशारे के साथ तत्पर हो जाते हैं। हजारों हजार लोग आज भी सकारात्मक कार सेवा से इस प्रकार से जुड़े हैं और इस प्रकार अपनी शक्ति का उपयोग कर रहे हैं। यह चतुर्विध संघ श्रावक-श्राविकाएं, साधु-साध्वियां उन सबसे कभी तीखे स्वभाव या कभी रूखे स्वभाव से कुछ कहा हो या मैंने इस स्वभाव के कारण कइयों के दिल दुखाये हों तो उन सभी साधु-साध्वियों से क्षमा याचना करना चाहूंगा। उसी प्रकार से जोधपुर संघ और बाहर से पहुंचे हुए अनेक संघ, साधुमार्गी संघ के जितने भी श्रावक-श्राविका हैं जो जितनी

अपेक्षा और अरमान रखते हैं किंतु पिछले कुछ वर्षों से उतना सम्पर्क नहीं हो पाता। अपने कार्यों में व्यस्त रहता हूं इसके बावजूद आप जैसी श्रद्धा भक्ति बनाकर जिस प्रकार से आप अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहे हैं। अपनी भक्ति प्रस्तुत कर रहे हैं उन सारी स्थितियों में मेरे से अपेक्षा रही होगी। किसी भी कारण से यदि किसी के दिल में किसी प्रकार के भाव पैदा हुए हों। कई स्थानीय घरों में साधु-साध्वियों का गोचरी-पानी हेतु नहीं पहुंचना हो पाया हो तो आप सभी अपने दिल को बड़ा करेंगे। उदार करेंगे और हृदय से वह क्षमा की भावना प्रवाहित करेंगे।

क्षमा के गीत सब गाओ, संवत्सरी पर्व आया है, संवत्सरी पर्व आया है।

संवत्सरी पर्व आज आया है। आज यदि हम क्षमा नहीं कर पाए, आगम वचन के अनुसार 15 दिन में यदि साधु खमत खामणा नहीं करे तो उसको शांति और समाधि नहीं मिलेगी और चार महीने में श्रावक खमत खामणा करके अपने दिल को शुद्ध नहीं बनाये तो उस श्रावक के व्रतों की आराधना कठिन है। और सम्यक् दृष्टि भाव, जो बड़ा दुर्लभ है, जिसके बिना मोक्ष का कोई रास्ता नहीं है। सबसे पहले सम्यक् दृष्टि भाव आवश्यक है। यदि सालभर में संवत्सरी के समय में हमारा मन हलका नहीं हुआ, हमारी गांठें नहीं खुलीं और द्वेष बना रह गया और जिस किसी भी कारण से तनाव बना हुआ है, उस तनाव को नहीं हटा पाए तो हमारा सम्यक्त्व भी सुरक्षित रह पाएगा या नहीं रह पाएगा? नहीं कहा जा सकता। इसलिए प्रयत्नशील बनें कि आज हमारी धुलाई हो जाए। हमारी आत्मा और हमारा चरित्र पवित्र हो जाना चाहिए। हम एक भी जर्म्स नहीं रखें। अगर एक भी जर्म्स अंदर रह गया तो कैंसर की बीमारी कितनी फैल जाएगी? इसलिए सारे कीटाणुओं को, सारे जर्म्स को हटाकर हम अपने चरित्र को साफ करने का प्रयत्न करेंगे और उदार दिल रखकर, उदार बनकर हम साधु-साध्वियों को क्षमा करने का प्रयत्न करेंगे।

मेरे कानों में एक बात पड़ी थी। वह सच है या झूठ मैं नहीं कह सकता हूं। किंतु इतना अवश्य है कि यदि किसी परिवार में कोई भी बात हो तो आप विचार करो। गजसुकुमाल के 99 लाख भव पहले क्या हुआ था? गजसुकुमाल के सिर पर जलती हुई बाटियां छोड़ दी थी। वह पाप नहीं धुला। कितने समय के बाद वे उदय में आए? 99 लाख भव के बाद उदय में आए। शास्त्र कहता है कि अनेक लाख भव और कहानियों में कहते हैं कि 99

लाख भव। हमारे मन में भी किसी प्रकार की, किसी से भी, परिवार वालों से भी यदि कोई बात हो गई है तो यह पर्युषण-पर्व/महापर्व संवत्सरी का हमें अवसर मिला है। हम उन सभी से क्षमा याचना कर लें। सामने वाला क्या प्रतिक्रिया करता है? वह भी क्षमा याचना करता है या नहीं करता है यह बाद की सोच है। किंतु इतना अवश्य हो कि जो मैल हमारी सोच पर, हमारे मन पर लगा हुआ है वह आज धुल जाना चाहिए। हमारे मन की चद्दर धुल जानी चाहिए। मैली नहीं रहनी चाहिए। हम यदि ऐसा ही सोचते रहे कि हां करूंगा, बाद में करूंगा, वो पहले क्षमा याचना कर ले तो अच्छा है और इन सब बातों में जिंदगी चली गई तो वह मैल हमारी आत्मा पर रह जाएगा। यदि वह हमारी आत्मा पर रह गया तो कितने जन्मों तक वह हमारे साथ में रहेगा? यह हम विचार करेंगे। चाहे छोटे हों या बड़े हों सभी को माफ करने का भाव हम रखें। यदि कोई छोटा हमें चांटा भी लगा दे तो बड़े बनकर, बड़प्पन रखकर हम माफ करने का भाव रखें। हम जिनशासन के रक्षक बनें। हम जिनशासन की सेवा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तैयार रहें। हमारे भीतर में जो पकड़ है। जो विकार है उसको क्यों नहीं हम छोड़ सकते हैं? हम सारे पुराने विकारों को छोड़ेंगे। ऐसी ही भावना हम हमारे भीतर रखेंगे। ऐसी ही भावना हमारे भीतर में रहनी चाहिए तो हम धर्म की आराधना की दिशा में आगे बढ़ेंगे।

03 सितम्बर, 2019
(पर्युषण पर्व का सातवां दिन)

15

ऐसी हो अन्तर की आवाज

महावीर भगवान देना सद्ज्ञान जी,
मैं तो हूं नादान प्रभु, तेरी ही संतान जी॥
कर्मों ने घेरा छाया घोर अंधकार है,
राह दिखाना प्रभु तेरा ही आधार है,
तू ही माता पिता तू ही मेरे प्राण जी॥ मैं तो...

विषयों की गलियों में भमा दिन रैन हूं
बहुत लुभाया पर पाया नहीं चैन हूं,
पुद्गल प्रीत करना मेरा ही अज्ञान जी॥ मैं तो...

माया मद क्रोध मुझे लोभ ने सताया है,
बहुत रुलाया बहुविध से जलाया है,
भूला शक्ति चेतना की किया न सन्धान जी॥ मैं तो...

मोह भंवर घिरा चेतन चहुं ओर है,
चला तो बहुत पर हुई नहीं भोर है,
पृच्छा नहीं प्रेक्षा नहीं राह अनजान जी॥ मैं तो...

चर्चाएं आत्मा की करी रसदार है,
आत्मा की राह पर चलना असिधार है,
'राम' रमाया नहीं रहा अनजान जी॥ मैं तो...

पैर में कांटा गड़ गया हो। उसमें पीप पड़ गई हो तो चलना दुरूह हो जाता है। वही कांटा निकाल दिया गया। पीप निकाल दी गई तो घाव भर गया। उसके बाद कैसी अनुभूति होगी? जिसको पीड़ा हुई है, जिसको कांटा चुभा है और वह निकाला है, वह उसका अनुभव कर सकता है कि कांटा

गड़े रहने पर क्या तकलीफ होती है और कांटे के निकल जाने के बाद कैसा अच्छा लगता है। करोड़ों का कर्ज सिर पर हो तो कितना बोझ लगता है? और सारा कर्ज उतर जाए तो कैसे आनन्द की अनुभूति होती है? शरीर में कोई बीमारी आ गई और यथा योग्य इलाज-उपचार से वह बीमारी दूर हो जाए तो कैसी अनुभूति होती है? वह जैसी अनुभूति होती है वैसे ही क्षमा के माध्यम से भी हमें बहुत हलकेपन की अनुभूति होनी चाहिए।

कांटे के रूप में तीन शल्य होते हैं जो हमारे को निरंतर चुभते रहते हैं। उन शल्यों का उद्धरण/उन शल्यों को निकालने का कार्य क्षमापना के माध्यम से होता है और क्षमापना की बात कल मैं बोल गया कि हमारी जितनी भी बुराइयां/हमारी जितनी भी टेंशन है, जितने भी तनाव हैं उन सब को कब्र में डाल दें। कब्र में गाड़ दें। यदि हम उस स्थिति में पहुंचे होंगे तो निश्चित ही हमें एक अलग ही अनुभूति होगी। क्षमा शब्द के अर्थ पर जब विचार करते हैं तो इसमें दो अक्षर हैं 'क्ष और मा', 'क्ष' का अर्थ होता है क्षरण और 'मा' का अर्थ होता है मत करो। अर्थात् आत्मा के सद्गुणों का ह्रास मत करो। क्षरण मत करो। उसे नष्ट मत होने दो। आत्मा के सद्गुण कैसे नष्ट होते हैं? कैसे उनका दुरुपयोग होता है? कैसे हम संसार में कर्मों का बंध और उपार्जन करने वाले बन जाते हैं? राग-द्वेष, कषाय, विषय, आसक्ति; ये सारे आत्मा के सद्गुणों का क्षरण करते हैं। इनके द्वारा आत्मा के सद्गुण बह जाते हैं। जैसे मिट्टी बहती है पानी के साथ, वैसे ही राग-द्वेष और कषायों के साथ आत्मा के सद्गुण, वे बह जाते हैं। उस क्षरण को रोका जाए। जैसे जमीन के क्षरण को रोकने के लिए वृक्षारोपण का कार्यक्रम होता है ताकि उस वृक्षारोपण से जमीन का कटाव, जमीन का क्षरण रुकेगा।

वैसे हैं यह पर्व। चाहे पर्युषण-पर्व है चाहे चातुर्मास पर्व है– ये पर्व हमारे आत्म गुणों के क्षरण को रोकने के लिए उपस्थित होते हैं। इन पर्वों की सम्यक् आराधना यदि हमारे द्वारा संपन्न होती है तो हम अपने गुणों के क्षरण को रोकने में समर्थ हो सकते हैं। अन्यथा द्रव्य रूप से हमारी पर्व आराधना हो जाएगी किंतु भावों से जो लाभ हमें मिलना चाहिए वह लाभ हम नहीं उठा पाएंगे। मैं कई बार, कुंडेरा-श्यामपुरा की एक बात कहता हूं जो पूज्य गुरुदेव के वहां विराजने पर हुई थी। प्रायः करके जहां लंबा रुकना होता था, गुरुदेव विहार के पूर्व क्षमा याचना की बात फरमाते थे। उसी दौरान गुरुदेव ने कहा कि किसी भी परिवार में आपस में कोई भी तनाव की बात हो, कोई आपसी

क्षरण की बात बन गई है, कोई गांठ बंध गई हो तो मेरी झोली में डाल देना। मैं साधु हूं और हम साधु विहार करने वाले होते हैं। घुमक्कड़ होते हैं। विहार करते हैं और विहार में चलते हुए किसी जगह परठ देंगे। आप हलके हो जाएंगे और आप शांति और समाधि का अनुभव करेंगे। किसी ने कहा कि दो भाइयों में अनबन है। गुरुदेव ने बात की तो ज्यादा कुछ लगा नहीं। लोगों ने कहा कि गुरुदेव! भाइयों में इतनी बात नहीं है। इनकी जड़ें गहरी हैं और झगड़े की जड़ों के रूप में बहिनें हैं। देवरानी और जेठानी में जब तक यह चीज दूर नहीं होती है भाइयों का अलगाव बना रहेगा। गुरुदेव ने एक भाई की साक्षी से बात की। वह देवरानी जो थी उससे बात की तो वह सरलता से तैयार हो गई। जेठानी से बात की तो जेठानी कहने लगी कि म.सा./गुरुदेव! आप कहो तो तेला कर लूं, बेला कर लूं। आप कहें तो अठाई कर लूंगी। आप कहो तो तपस्या कर लूंगी। किंतु देवरानी के मोढ़े पर तो नहीं चढ़ूंगी। देवरानी के दरवाजे पर पैर नहीं रखूंगी। आप चाहो तो बेला करा दो। आप चाहो तो तेला करा दो। आप फरमायेंगे तो तप कर लूंगी। किंतु देवरानी के दरवाजे पर नहीं चढ़ूंगी।

अभीचि कुमार का एक वर्णन आता है जिसने उदायन मुनि से वैर की गांठ बांध ली। वह श्रावक के 12 व्रत की आराधना कर रहा है। संवत्सरी के समय प्रतिक्रमण करते हुए कहता है कि भगवन्! उदायन मुनि को छोड़कर बाकी सारे मुनियों से मैं क्षमा याचना करता हूं। एक गांठ उसके मन में बनी रह गई। एक कसक उसके मन में बनी रह गई। उस गांठ के कारण वह आराधक नहीं बन सका वह विराधक हो गया। सोच सकते हैं कि 12 व्रत की पालना ही नहीं, वह साधु भी बन जाए किंतु यदि उसकी गांठ नहीं खुले तो वह साधु बना हुआ रहेगा लेकिन आराधक नहीं हो पाएगा।

स्कूल में पढ़ने वाला छात्र, छात्र तो होता है। किंतु एक कक्षा में एक साल, दो साल, तीन साल रहता है तो ऐसा नहीं है कि वह छात्र नहीं है। पढ़ाई की बात अलग है। पढ़ाई की बात जब हमारे सामने आती है तो हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि हर वर्ष विद्यार्थी-छात्र को अगली कक्षा में जाना चाहिए। यदि अगली कक्षा में नहीं जा पाता है तो उसे भी अच्छा नहीं लगता है। अरे! तू फेल हो गया? अरे! तू फेल हो गया? उसको भी अच्छा नहीं लगता है। दूसरी जगह भी ऐसी चर्चाएं हो जाया करती हैं। वह विद्यार्थी है किंतु अनुत्तीर्ण विद्यार्थी है। उत्तीर्ण नहीं हो पाया है। हमने इतना समय लगाया पर्युषण की आराधना में, तपस्या में, सामायिक में, पौषध में फिर भी यदि

हमारी गांठें बनी रहे तो हम छात्र तो बने रहेंगे पर उत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे। तो यह पढ़ाई कितनी कारगर हो पाएगी? प्रत्येक विद्यार्थी या उसका अभिभावक, यह चाहेंगे कि उत्तीर्ण हो जाए। वैसे ही चाहे साधु हो, चाहे श्रावक हो; उसके मन में आराधना की ललक होनी चाहिए कि मैं आराधक बनूं। आराधक बनेगा वह मोक्ष में जाएगा। विराधक बनने वाला संसार में भटकेगा।

अब हमें निर्णय करना है कि हमें आराधक की श्रेणी को प्राप्त करना है या विराधक की श्रेणी में जाना है। विराधक का बैज लेकर घूमना चाहेंगे या आराधक का बैज लेकर घूमना चाहेंगे? आराधना को वरना चाहेंगे या विराधना को? हम आराधना की श्रेणी को वरना चाहेंगे। आराधक के रूप में उत्तीर्ण होना चाहेंगे। मुक्ति के शाश्वत सुख की प्राप्ति की आकांक्षा है तो हमें अपने आपको आराधक बनाना चाहिए। आराधना के शिखर पर हमें आरूढ़ होना चाहिए और उसके लिए एक ही मार्ग है कि सारी बीती हुई बातों को हम समाप्त कर दें। बीती हुई बातें चाहे कितनी भी भीतर में कष्टदायी रही होंगी किंतु एक दिन तो उन्हें हमें भूलना ही पड़ेगा। जब तक नहीं भूलेंगे, जब तक उनको निरस्त नहीं करेंगे वह बनी रहेगी। तब तक हमारे संसार की जड़ें बनी रहेंगी। जिसको संसार की जड़ को हरी रखना है उसके लिए उपदेश कारगर नहीं है। उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नहीं है। किंतु जो संसार की जड़ को हरी नहीं रखना चाहते हैं और मुक्ति की दिशा में प्रयाण करना चाहते हैं– मुक्ति की दिशा में गतिशील होना चाहते हैं उनके लिए एक ही बात है कि वे अपनी उपशमना करें। अपने दिल को हलका करें। अपने दिल को साफ-सुथरा करें और जो कुछ भी हो गया है किसी के साथ, किसी के द्वारा– उन सब बातों को निरस्त करें। 'मिच्छा मि दुक्कड़ं' कहते हुए हम क्षमा याचना का सही स्वरूप उपस्थित करेंगे तो हम अवश्यमेव आराधक बनेंगे। आराधना के शिखर पर आरूढ़ होंगे और हम मुक्ति को वरेंगे। चाहे एक भव, दो भव, चार भव, पांच भव, सात भव और अधिकतम 15 भवों में हम मुक्ति को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। ऐसी आराधना की श्रेणी में/शिखर पर आरूढ़ होने के लिए कटिबद्ध बनें और हमारे भीतर उस प्रकार की शक्ति जगे कि हम अपने भीतर के सारे वैर को समाप्त कर दें। अपने आप को धन्य बना लें। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूं।

04 सितम्बर, 2019
(संवत्सरी पर्व)